महाकवि यशःकीर्ति विरचित

चंदप्पह-चरिउ

(अपभ्रंश-भाषा का महत्वपूर्ण चरित-काव्य)

सम्पादक

डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर डी. लिट्.
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर
विश्वविद्यालय, नागपुर

वीरसेवा मन्दिर ट्रस्ट प्रकाशन

ग्रन्थमाला-सम्पादक व नियामक

डॉ० दरबारीलाल कोठिया
मानद मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

चंदप्पह-चरिउ (चन्द्रप्रभ-चरितम्)

रचयिता . महाकवि यश कीर्ति

सम्पादक
डॉ० भागचन्द्र जैन भास्कर
अध्यक्ष, पालि-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर

ट्रस्ट-संस्थापक
आचार्य जुगलकिशोर मुख्तार 'युगवीर'

प्रकाशक
मंत्री, वीर सेवा-मन्दिर-ट्रस्ट,
C/o पं बंशीधर व्याकरणाचार्य,
बीना (सागर), म. प्र

प्रथम संस्करण 1986

~~मूल्य : बीस रुपये~~
परिवर्धित

प्राप्ति स्थान
व्यवस्थापक, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट,
बी 32/13 बी. नरिया,
वाराणसी–5, (उ०प्र०)

मुद्रक : **शीतल प्रिन्टर्स**, फिल्म कालोनी, जयपुर–3

प्रकाशकीय

1985 मे 'भाग्य और पुरुषार्थ एक नया अनुचिन्तन' को प्रकाशित करते हुए उसके प्रकाशकीय मे हमने लिखा था कि आगामी वर्ष के प्रकाशनो मे प्रस्तुत 'भाग्य और पुरुषार्थ एक नया अनुचिन्तन' के अतिरिक्त निम्न प्रकाशन भी हैं—

1 सम्यग्ज्ञान-चिन्तामणि ' डॉ प पन्नालाल जैन साहित्याचार्य
2 यापनीय सघ और उसका साहित्य डॉ कुसुम पटोरिया
3 देवागम-हिन्दी पद्यानुवाद आचार्य विद्यासागर
4 चदप्पह-चरिउ डॉ भागचन्द्र जैन, भास्कर
5. पत्र-परीक्षा आ विद्यानन्द . सम्पादन—डॉ दरबारीलाल कोठिया
6 समन्तभद्र-ग्रन्थावली सकलन—डॉ गोकुलचन्द्र जैन

इन ग्रन्थो मे प्रथम और तृतीय न. के ग्रन्थ प्रकाशित होकर पाठको के समक्ष आ गये है। पचम और षष्ठ नम्बर के ग्रन्थ छप तो गये हैं किन्तु उनकी प्रस्तावनादि सामग्री अवशेष है। मेरे बनारस मे स्थिर न रहने के कारण द्वितीय सख्यक ग्रन्थ अब तक प्रेस मे नही दिया जा सका।

आज प्रसन्नता है कि चतुर्थ सख्यक 'चदप्पह-चरिउ' ग्रन्थ छपकर सामने आ रहा है। इसके रचयिता महाकवि यश कीर्ति "महाकइजसकित्तिविरइए · · " समाप्तिपुष्पिका वाक्य, सन्धि 11, कडवक 29, पृ 168) हैं। यह अपभ्र श भाषा का चरित-महाकाव्य ग्रन्थ है। इसमे महाकवि ने लोकप्रिय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का चरित बडे सुन्दर ढग से गुम्फित किया है। अपभ्र श-भाषा प्राकृत की उत्तर कालीन और हिन्दी की जन्मदात्री तत्कालीन लोक-भाषा है। इस भाषा मे स्वयम्भू, पुष्पदन्त आदि जैन कवियो ने कथा-साहित्य का सृजन करके उसे जन सामान्य की प्रिय भाषा बनाया है।

इसके सुयोग्य सम्पादक डॉ भागचन्द्र जैन, भास्कर हैं, जिन्होने इसका सम्पादन बडी योग्यता, परिश्रम और लगन के साथ किया है। उन्होने इस भाष्य का वैशिष्ट्य अपनी अंग्रेजी और हिन्दी मे लिखी प्रस्तावनाओ मे प्रतिपादित किया है तथा पूरे ग्रन्थ का हिन्दी सार, महत्वपूर्ण शब्द-सूची आदि देकर ग्रन्थ को अनुसन्धित्सुओ एव जन-सामान्य के योग्य बना दिया है। उन्हे इसके प्रकाशन मे अनेक कठिनाइयाँ झेलनी पडी हैं। उनके लगातार बाहर रहने के कारण मुद्रण की अशुद्धियां भी रह गई है और प्रकाशन मे विलब भी हुआ है। उन्हे हम शुभाशीर्वाद के साथ धन्यवाद देते है। आशा है हिन्दी-प्रेमी इस कृति को समादृत करेंगे।

बीना (सागर), म० प्र०
15 अगस्त, 1986

डॉ० दरबारीलाल कोठिया
मानद मंत्री, वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट

समर्पण

मस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श एव हिन्दी—
साहित्य के मर्मज्ञ मनीषि-
विद्वान साहित्यकार,
'अनेकान्त' के मूर्धन्य सपादक
स्वर्गीय पण्डित परमानन्द शास्त्री
को सादर समर्पित

विषय - सूची

प्रथम सधि

विषय	पृष्ठ
भ चन्द्र प्रभु के गुणो के वर्णन की प्रतिज्ञा	1
सज्जन-दुर्जन वर्णन	1
रत्न सचय नगर का वर्णन	2
कनकप्रभ राजा एव कनकमाला का सौन्दर्य वर्णन	3
पद्मनाथ का जन्म वर्णन	3
कीचड मे फसे बैल को देखकर कनकप्रभ को वैराग्य उत्पत्ति	4
ससार की ग्रसारता	4
पद्मनाभ का राज्याभिषेक ग्रौर कनकप्रभ का श्रीधर मुनि के पास दीक्षा धारण ।	5

द्वितीय सन्धि

श्रीधर मुनि के ग्रागमन की सूचना	6
उद्यान की महिमा ग्रौर श्रीधर मुनि को वहा बैठे देखना	6
पद्मनाभ द्वारा मुनि स्तुति	7
श्रावक के पचाणुव्रतो का उपदेश	8
सुगन्धि देश एव श्रीपुर नगर का वर्णन ।	8
श्रीषेण राजा का वर्णन	8
श्रीषेण की रानी श्रीकान्ता का सौन्दर्य वर्णन ग्रौर उसकी खेद-खिन्नता का कारण पूछना	9
चारण ऋद्धि मुनियो का ग्रागमन	10
मुनिराज द्वारा धर्मोपदेश	11
राजा को पुत्रजन्म का ज्ञान ग्रौर सागारधर्म का पालन	11
गुणव्रत शिक्षाव्रतो का वर्णन	11

श्रीकान्ता का गर्भाहरण 12
श्रीधर्म नामक पुत्र का जन्म
प्रभावती के साथ विवाह फिर
राज्याभिषेक 12

तृतीय सन्धि

श्रीषेण को वैराग्योत्पत्ति 13
ससारी का वर्णन 14
पुत्र की शिक्षा दीक्षा 14
श्रीधर्म का राज्याभिषेक, दिग्विजय, मुक्ति 15
घातकी खण्डवर्ती अलकादेश तथा कोशला नगरी का वर्णन 16
राजा अजितेजय, रानी रजित सेना तथा पुत्र
अजितसेन का वर्णन 17
अजितसेन का राज्याभिषेक 18
पुत्र का अपहरण तथा राजा का विलाप 19
तपोभूषण मुनि का आगमन और पुत्र के अपहरण का वृत्तान्त 20

चतुर्थ सन्धि

अजितसेन का दिग्विजय वर्णन तथा श्रावक व्रत ग्रहण 21–28

पञ्चम सन्धि

अजितसेन का दिग्विजय प्रयाण
वस तऋतु, कामकेलि, वैराग्य तथा स्वर्गगमन वर्णन 29–35

षष्ठ सन्धि

पद्नभ द्वारा गणराज को वश मे करना तथा पृथ्वीपाल के
दूत का आगमन 36
दूत का कथन 37
स्वर्णनाभ युवराज द्वारा उत्तर 37
पद्मनाभ का कथन 38
पुरुभूति मत्री तथा युवराज की वार्ता 39

रात की रंगरेलियों का वर्णन 39
युद्ध वर्णन 40–41
वैराग्य वर्णन 41
बारकषाय एवं सोलहकारण भावना 42–43
अनुत्तर विमान गमन 44–45

सप्तम सन्धि

पूर्व देश का वर्णन 46
चन्द्रपुरी नगरी, महासेन एवं लक्ष्मणा का वर्णन 47
गर्भ पूर्व का वर्णन 48
स्वर्ग का वर्णन 49–50

अष्टम सन्धि

सुमेरु पर्वत पर जाना, चन्द्रपुरी नगरी वापिस आना एवं जन्मकल्याणक महोत्सव का वर्णन 50–58

नवम सन्धि

दीक्षाकल्याण महोत्सव वर्णन 59–67

दशम सन्धि

केवलज्ञान कल्याण वर्णन 68–73

एकादश सन्धि

धर्मप्रवचन एवं निर्वाणकल्याणक महोत्सव वर्णन 74–88

Introduction

The present Apabhran.a text of the Candappahacariu (CPC) critically edited for the first time is based on the material from the following Manuscripts —

MS KA (क)

It was received, with thanks, from late Pt Paramanand Shastri, the well-known scholar of Jain literature in 1974 It has folios 6 , the first being written on only one side It measures 27 C M X 12 C M , lines per page about 12, letters in each line about 50, margin right and left 3 C M , top 2 C M and bottom 1½ C M Handwriting is beautiful and uniform One particular sign with red ink spot is made in the middle of each page The Ms starts with the Granthasankhyā It has eleven Sandhis (Sargas) and all the Sandhis end with ' Iya siri Candappahacarie Mahākai Jasakitti viraie sandhi samatto " From it's colophon we understand that the MS was completed in Samvat 1530 (1493 A D) the 5th of the bright fortnight of Phālagun on a request made by Sidhapāla, the son of Kumvar Singh belonging to Humbaḍkula The copy was made down by Brahmavisa belonging to Gangawāl Gotra The MS indicates the following ascetic genealogy of the author —Prabhācandra—Padmanandi—Jinacandra—Bhuvanakīrti The peculiarities of the Ms are as follows —

1. It has Na in beginning but in middle the joint NNa becomes NNAU, such as Nisannu, Visannau
2. The use of ya and i in place of i and ya respectively
3. There is no difference between va and ba.
4. The use of ccha in place of ttha

MS KA (ख)

This Ms belongs to Amera Shastra Bhandar preserved by the Jain Vidyā Sansthān, Mahāviraji, Jaipur. Folios are 117, size 26 CM X 11 C M , lines per page 9, letters per line about 40, margin

right and left 2 C.M. The colophon throws the light that the MS. was copied down in Sambat 1583 (1526 A D.) on Wednesday, the 3rd of the bright fortnight of Āṣāḍa at Campāvatī Nagarī during the reign of Rāṇā Sangrām. It was written at the instance of Maṇḍalāchārya Dharmachandra, the co disciple of Abhayachandra who has been referred to in the manuscript of Nāyakumāracariu It was written for a layman of the Khandelawāla family Sahagotri The spiritual line of teachers is as follows:—Kundakundacharyāmnāya—Padmanandī—Śruta candra—Jinacandra— Prabhācandra— Mandalācārya Dharamacandra

The peculiarities of the MS are as follows:—

1. Nasal Na (ण) occurs instead of Na throughout
2. Ya in place of i (इ)—Yasruti
3. Hu instead of ho
4. Anusvāra tendencies
5. The portions which are left out in the Ka MS. are available here

MS GA (ग)

The MS Ga belongs to Amer Shastra Bhandara, Jaipur It has folios 120, size 25 C M X 12 C M, lines per page vary from 10 to 11, letters in each line about 35, margin right and left 3 C M, top and bottom 2 C.M, Ghattā and number of verses are written in red ink. It bears glosses on the margin The Ms begins with "Oma Namaḥ Si dhebhyaḥ ' Its colophon indicates that the Ms. was completed in Samvat 1603 (1546 A D) on Saturday, the 10th of the Bright fortnight of Śrāvaṇa during the reign of Rāva Śuritāna, the son of Hāḍā Couhānavanshī Sūryamāla It was written for a layman of the Khandelawalānvayi Saha Vothitha The peculiarities of the MS are as follows.—

1. It is based perhaps on the MS Kha.
2. a (अ) and i (इ) are used in place of ya (Yasruti).
3. a, ya, u and ma are used in place of va.
4. Anusvāra.
5. Glosses on the margin.

MS GHA (घ)

This Ms also belongs to Amer Shastra Bhandar, Jaipur which is kept with the Jain Vidya Sansthan, Shrimahaviraji. It bears folios 108, size 27 C M, lines per page 10, letters per line about 33, margin all 2-2 C M It ends with the colophon which informs that the MS was completed in Samvat 1611 (1554 A D) on Thursday, the 5th of the date fortnight of Chaitra at Alhadpur in the Mallinath temple It was copied down by a disciple of Dharmachandra belonging to Khandelavālānvayī popalyagotra The peculiarties of the MS are as follows —

1 The uses of Yasruti and ekāra
2 Use of vakāra
3 Use of Hu
4 Anusvāra
5 Glosses in the margin
6 Similarties with the Ms Kha

1 PRINCIPLES OF TEXT CONSTITUTION

The following principles in present editing work have been adopted with all considerations —

1, The proposed edition of the Candappahacariu is mainly based on the MS Ka which is the oldest one Other Mss are utilized for justifying the readings in the text and the readings are mentioned accordingly in the footnotes.
2 Na (न) has been changed into N_a (ण) initially, medially and in a conjunct group
3 Va and ba have been used according to Sanskrit or varnacular usages
4 Ccha(च्छ) and ttha (त्थ) are included according to the meaning
5 Anusvāra has been sometimes ignored
6 U (उ) is retained.

2 THE AUTHOR AND HIS PATRON

The history of Jain tradition indicates that there have b en a number of Ācharyas by name of Yaśahkirti such as the author of Candappahacariu, author of Pāndavapurāṇa (Samvat 1497), disciple of Ratnakirti (Samvat 1693), the Bhattarak of Jorahat, branch (17th C,A D), the Bha of Mathuragaccha (18th C AD.), Vijayasena's

disciple, the disciple of Vimalakīrti, disciple of Rāmakīrti and so on Of these, the controversy exists with the first two Yaśaḥkīrtis who are quite independent personalities in my opinion. On the basis of literary evidence it can be said that the author of the CPC belongs to the period of Siddhapāla who may be placed around 1173 A D. Secondly, the poet has himself said as Puskaraganī He must have been, therefore, from Puṣkara area of Ajmer (Rajasthan)

The poet has remembered his predecessors like Kundakunda, Samantabhadra, Akalanka, Jinasena, Siddhasena with all honour of appreciation The author of the present epic is silent about his biographical details It is, therefore, difficult to fix any certain period of his existence However, it can be decided approximately on other grounds The oldest Ms of the CPC is available of Samv 1530 He cannot, therefore, be placed beyond this period, i e 1473 A D. The poet has, of course, indicated at the concluding part (Puṣpikā) that he had composed the proposed work at the instance of Sidhapāla the son of Kumarasinh belonging to Humbadakula Siddhapāla must be onnected with Cālukya king Kumārapāla The poet has also referred in his eulogy (Prasasti) to the name of a village Ummattagāma of Gujarat state. As we kn w, the last period of Kumārpāla is V Sam 1230 (1173 A D) Therefore, Siddhapāla can easily be placed around this period

Yasahkīrti appears to have a great influence of Vīranandī's Candraprabhacaritam which belongs to the 11th Century A D This point has been elebroted in detail in the Hindi Introduction to the CPC On these grounds it can be infursed that Yasahkīrti of the CPC should have been earlier than that of Yaṣḥkīrti of Pāṇḍavpurāna Consequently, his existence can be proved in the 13th Century A D Śrīdhar, Madankīrti, Bhāvasen Traivedya, Āsādhara, Narendrakīrti, Arhaddāsa etc might have been his contemperory scholars.

3 CONTENTS OF CANDAPPAHACARIU

The subject matter of the CPC. is to narrate the seven Bhavas of Candraprabha, the eighth Tīrthankar of Jain tradition It is based on the Padmapurāṇa, Harivansapurāṇa and Uttarpurāṇa in general and Candraprabhacaritam of Vīranandi in Particular. The Mahākāvya is divided into eleven Sandhis

1. The auther, to begin with, directs salution to Chandraprabha and then Pañca Parameṣṭhis with an oath to write an epic CPC. He then refers respectfully to a numbur of Āchāryas like Kundakunda, Samantabhadra, Akalanka, Devanandī, jinasen and Siddhasen He discussed traditionally the qualities and defects of a gentle man and malicious person respectively, and then started the story of the Tīrthankara

In the second Dhātakīkhand Dwīpa, there is a country Mangalāvatī by name. There lived Kanakaprabha king with his queen Svarnamālā and prince Padmanābha One day Kanakaprabhā, conceived the transiency of world as soon as he happened to vasualise an old bullock fallen in mud then renounced the world by coronating his son to his kingdom

2. While Padmanābha was seated in the inner assembly, the door-keeper left an exciting news that Srīdhar, a Jain Muni came down to the city and consequently, the garden flowered untimely The king with a great enthuism visitted the place, got the sermon from him and enquired about his own past births Śrīdhar described them and said "There is a city Śrīpur by name in the west Videh Its king Śrīsena and queen Śrīkāntā were not happy as they had no issues The reason was that looking to a pregnant lady, Śrīkāntā prayed that she should not have any child This Nidāna has been put to an end and now the time is nearer when she would be begeting a nice child " The queen got accordingly pregnancy and gave birth to a son Śrīdharma by name. He was afterwards married with princess Prabhāvatī

3 Śrisena handed over the kingdom to Śrīdharma and became Muni Śrīdharma then proceeded to attain victory over rullers and came back to the city with a great success He also finally renounced the world, died and became Śrīdharadeva by name in the Saudharma Svarga Śrīdhara then took a birth to Ajitasenā, the queen of Ajitañjaya and got name Ajitasena

4 One day Ajitasena was unfortunately planderred and thrown away in Manoramā lake by Caṇḍaruci Ajitasena somehow reached to the bank of Parusā forest and then climbed to Añjanagiri There he had to fight with Hiranyadeva who did so just to test his courage and power He then appeared and requested for having his cooper-

ation at any critical moment. Narrating an event occurred in previous birth he stated that you were a king of Śrīpur where a quarrel had started between Śaśi and Sūrya Śaśi had stolen the wealth of Sūrya You rested with a justice, managed to get return the wealth to Sūrya and declared capital punishment to Śaśi Śaśi has been by the name of Caṇḍaruci who had thrown you in the lake and Sūrya by name of Hiraṇyadeva, myself.

Prince Ajitasena then came out of the forest and entered into the country Ariñjaya. At the same time, its king Jayavarmā had decided to have an engagement of his daughter Śasiprabhā with king Mahendra, but acknowledging the fact from astrologers that Mahendra had a short span of life, he relinguished the idea Hence, the battle started between Jayavarmā and Mahendra Ajitasena supported Jayavarmā and defeated Mahendra

Another sub-story starts from this point There is situated a city Ādityapur by name in south of Vijayārdha mountain. Dharaṇīdhvaja was its king. One day Priyadharma Brahmacārī reached to him and said that his life would be extinguished by such a person who was married to Śasiprabhā Dharaṇīdhvaja then asked Jayavarmā to marry his daughter with him. Jayavarmā refused to do so and hence war started between them. Prince Ajitasena jumped in between. He remembered immidiately Hiraṇyadeva who helped him all the while Both together defeated Dharanīdhavaja Consequently as a token of gratefulness, Jayavarmā arranged the marriage of his daughter Śasiprabhā with Ajitasena. Subsequently, Ajitasena came back to his father who handed over his responsibility to him Meanwhile, Ajitañjaya met with Svayamprabha Tīrthaṅkara who preached him the conception of Dharma and Karma.

5 After returned to Ayodhyā from a successful military operations against all the kings, Ajitasena was greatly and affectionately welcomed by the people. In morning while he was seated in the Sabhābhavan, a report reached to him that an elphant had killed a person. Having been disguished with the event he relinquished the worldliness, accepted Jinadīkṣā, died and took birth in the sixteenth heaven Acyuta.

6. Concluding his talk Śrīdhara Muni said that from Acyuta heaven you usherred into abdomen of Suvarnamālā, the queen of

Kanakaprabha and reborn as prince Padmanabha He also said that this can be varified if after ten days an elephant comes to you leaving his own group The incident accordingly occurred and the king capture the elephant Vanakeli One day Prathvipala conveyed a massage to him that had he did not release the elephant within thirty days, he would have to face the battle Padmanabha opted the second alternate Prathvipala was defeated, Padmanabha then gave up the worldliness, accepted Jinadīksā, passed away and took birth in Vaijayanta heaven

7–8 From this Sandhi, the story of Tīrthankara Candraprabha is started Mahāsen was a king of Candrapurī During seventh month of pregenency period, queen Laksmanā saw the sixteen dreams and begot a son Chandraprabha by name who was taken away by Devas to Sumeru for the Abhiseka

9 The story moves fastly Candraprabha was very brilliant, industrious, couragious and powerful He was married and coronated at the appropriate time One day an old man reached to him with a request to save his life and then became invisible He was, as a matter of fact, Dharmarucideva who instructed and diverted the mind o Candraprabha to the spiritual life Consequently, Chandraprabha handed over his kingdom to son Varacandra and renounced the world

10–11 The tenth Sandhi describes the way of spiritual life, penance and meditaion of Candraprabha who attained finally Kevalihood The eleventh Sandhi submits the detailed account of the Samavasarana and Atisayas and penance At the last, the Tīrthankara attained Nirvāna from Sammedācala in the month of Bhādrapada The men and Devas celebrated the Moksakalyānaka with a great zeal

4 CRITICAL REMARKS

Yaśahkīrti's CPC is mainly based on the Candraprabhacaritam of Mahākavi Vīranandi Both the epics run on parallel lines with slight changes regarding the arrangement of Sandhis and Sargas Vīranandi divided his work into eighteen Sargas whereas Yaśahkīrti completed his CPC in eleven Sandhis On our critical study, we easily observe that Yashkirti has arranged the story in more systame-

tic and impressive way, though with fast movement This point has been dealt with in detail in Hindi introduction to the CPC.

Yaṣahkīrti has enriched his work with vast informations and inherited from other earlier works directly or indirectly For poetic imgines, the author of the CPC appears to have immense impect of Kālidāsa, Bhavabhūti, Māgha and Śrīharsa, in addition to Somadeva and Viranandi The religious and philosophical impect can also be observed from the works of Ācharya Kundakunda, Umāsvāmī, Samantabhadra, Siddhasena, Akalanka, Jinasena and so on.

The CPC is undoubtedly an eminent epic written in Apabhransa. All the Puspikās refer to the author as Mahākavi Yasaḥkīrti who ha followed all the norms and objects of Mahākāvya as directed by Sanskrit Acharyas He utilized his radiance to make the story more popular with applying all the Rases, Alankāras and other specific characteristics For instance, in the context of amusement of Ajitasena and others, the poet has utilized his geniusness the seasons for Śrangārarasa, the battles for Vīrarasa and the introduction to Ta'tvas for Shāntaras The Karunarasa and Vātsalyarasa can also be seen at the time of distress and childish pranks respectively He also appears to have a view that the inclusion of Viśmitarasa and Adhyātmarasa (11 28) should be made to the Rasasankyā.

Practically all the Alankāras like Yamak, Upamā, Rūpak, Utpreksā, Ślesa, Visesokti etc have been used in natural way in the work The Mādhurya, Oja and Prasāda Gunas have also their due place in the epic So far as concerned with metres, the poet has used Padhaḍiyā, Adillada, Trotaka, Tripadī, Mātrik, Dohak, D .ru-vak, Ghat'ā etc according to the contexts

The socio-cultural material is not very much used in the work The poet, of course, followed Ācharya Kundakunda in context of Guṇavratas by mentioning Dikparimāṇa, Bhogopabhogaparimāṇa and Anarthadaṇḍa He also payed an honour to the Kundakunda tradition by accepting the inclusion of Sāmāyika, Proṣadhopavāsa and Sallekhanā and also to Somadeva by replacing Atithisamvibhāga to Dāna into Śikṣāvratas.

The Candappahacariu is written in Pāscimī Apabhransa which has a credit to originate the Rajasthani language/dilect Its main peculiarities can be seen through out the entire work as follows.

1 A अ) becomes U (उ —Puharu.

2 Initial A (अ) is retained—Acchai.

3 Availability of e (ए) and (ऍ) in short and long vowel

4 E (ए) becomes i (इ)

5 Anusvāra and Anunāsikatā

6 Use of Hi, him, hum (हि, हिं, हु)

This is the brief introduction to the present edition of the Candappahacariu. The detailed account can be studied through the Hindi introduction The importance of the present work lies with the linguistic standpoint which may be useful to decide the different stages of the dilectical forms of Hindi or say Rajasthani

The editing work was completed in 1978 on the basis of two MSS In subsequent years two more MSS Were utilized for deciding the readings On its complition the question was to get it published It is a pleasure for me to record my sense of gratitudes to Professor Darwari Lal Kothia, my teacher, who has shown keen interest in getting it published from the Vir Seva Mandir Trust He has a great zeal to enrich and publish the Jain literāture I, therefore, dedicate the present work to him as a token of honour

A vast Apabhransa literature is still waiting for publication The scholars should come forward to edit the unpublished work and the institutions should take Keen interest in in this regard it is a matter of pleasure that the Ministry of Education, Government of India has menifested its inclination in making available easily this lliteralare

I should mention here at the last that the printing of the Candappahacariu was completed in October, 1985 The English intoduction was only remained In November 1985, I have to attend the Assembly of world's Religions at New Jersy, U S. A and hence I could not write Introduction in time The fault is thus on my part for which I make an appology As soon as I went through the printed text, I found that a number of printing mistakes have been occured there in The main reason is that the correction made in the proofs were not inserted properly by the Press However, I am sorry for the inconvinience caused.

New Extension Are. — Bhagchandra Jain Bhaskar
Sadar, Nagpur-440001 — Head of the Department of Pali & Prakrit,
Dt 14-4-86 — Nagpur University, Nāgpur

प्रस्तावना

1. जैन चरित काव्य-परम्परा

जम्बूसामि चरिउ एक पौराणिक अपभ्रंश चरित महाकाव्य है। यह पौराणिक चरित काव्य परम्परा जैन साहित्य मे प्राकृत आगम ग्रन्थो से प्रारम्भ होती है। जैनाचार्यों ने शलाका महापुरुषो पर प्रारम्भिक रचनाए कीं। ये रचनाए सक्षिप्त पर सामग्री बहुल थी। तिलोयपण्णत्ति, कल्पसूत्र आदि मे जो कुछ भी चरितो का आकलन किया गया है वह महाकाव्यत्व की दृष्टि से खरा नही उतरता। इसलिए उसे आद्य परम्परा का रूप माना जा सकता है। इसके बीजो को भी खोजना चाहे तो आचारांग, सूत्रकृताग आदि आगम ग्रन्थो मे वीर स्तुति के रूप मे द्रष्टव्य हैं जहा यथारूप की प्रस्तुति की गई है।

धीरे-धीरे कल्पनात्मक तत्त्व का विकास हुआ और चरित काव्यो का आकार बढने लगा। चरित नायको का आधार लेकर धार्मिक तत्त्वो को उपस्थित करना ही प्रमुख लक्ष्य था। ससार की स्थिति का यथार्थ चित्रणकर पाप-पुण्य की प्रकृति का लेखा-जोखा करना तथा भेदविज्ञान होने पर वैराग्य भावना भाना और उसे दृढतर बनाये रखने के लिए कर्मफल योजना को एक अ ग के रूप मे स्वीकार कर लेना उस लक्ष्य की पूर्ति का साधन बना लिया गया। सामाजिक तत्त्वो तथा मूल्यो की उपेक्षा कवि कभी कर नही सकता। उन्हे वह अवातर कथाओ के माध्यम से प्रस्तुत करता है। पर हाँ, कही-कही लोक तत्वो की बहुतायत हो जाने से कथा-प्रवाह मे शैथिल्य अवश्य आ जाता है।

जैन चरित काव्यो का एक अपना ढाचा है। शास्त्रीय नियमो के अनुसार वे महाकाव्यो की श्रेणि मे तो आ ही जाते हैं पर उनकी विशेषताओ को उदरस्थ कर उनपर जैन सस्कृति को आरोपितकर चरित लिखना-लिखाना जैनाचार्यों की एक अपनी विशेषता रही है। स्तुति, पूर्व कवियो का स्मरण, सज्जन-दुर्जन चर्चा, देश-नगर आदि का वर्णन, नगर के बाह्योद्यान मे मुनि का पहुँचना और उनके उपदेश श्रवण के लिए राजा तथा प्रजा का जाना तथा अन्त मे राजा को वैराग्य हो जाना ये ऐसे तत्त्व हैं जो सभी जैन चरित काव्य मे मिलते हैं। इसी के साथ विद्याधर,

यक्ष, राक्षस, गन्धर्व आदि दिव्य पात्रों के माध्यम से कथा मे रोचकता लाना, प्रेम, मिलन, दूतप्रेषण, युद्ध, विवाह, उपदेश, पूर्वभव, कर्मफल आदि तत्त्वो से कथा तत्त्व को विकसित करना तथा अन्त मे तपस्या के माध्यम से निर्वाण प्राप्ति का चित्रण करना चरित काव्यो की अन्तिम परिणति रही है । इस दृष्टि से पौराणिकता और धार्मिकता का यहां सुन्दर समन्वय हुआ है ।

2 चन्द्रप्रभ चरित पर निर्मित साहित्य

जैनाचार्यो ने इस ढांचे पर पौराणिक आख्यानो का भरपूर उपयोग कर लगभग हर भारतीय भाषा मे साहित्य सृजन किया है । इन आख्यानो का उपयोग जैन साहित्य के क्षेत्र मे करीब पाचवी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ । कदाचित् विमल सूरि (वि स 530) प्राकृत के प्रथम कवि थे जिन्होने इस परम्परा का प्रवर्तन 'पउमचरियम्' के माध्यम से किया । उत्तरकाल मे रामायण और महाभारत के आख्यानो पर अनेक महाकाव्य लिखे गये ।

इनके अतिरिक्त त्रेसठ शलाका महापुरुष-विषयक पौराणिक महाकाव्य उपलब्ध होते है । जिनसेन (सन् 763–843) का आदिपुराण और गुणभद्र का उत्तर पुराण (समाप्ति काल सन् 908) इस सन्दर्भ मे मानक काव्य रहे है । श्रीचन्द्र का पुराणसार (वि स 1080), दामनन्दी का पुराणसार सग्रह (लगभग 12वी शती), मुनि मल्लिषेण का महापुराण (शक स 969), आशाधर का त्रिषष्टिस्मृति शास्त्र (वि स 1292), हेमचन्द्र का त्रिषष्टिशलाका महापुरुष चरित (वि स 1261-28), अमरचन्द्र सूरि का चतुर्विशतिजिनेन्द्र सक्षिप्त चरित (सन् 1238 के पूर्व), पद्म सुन्दर का रायमल्लाभ्युदय (वि स, 1622), मेघ विजय उपाध्याय का लघु त्रिषष्टिशलाका पुरुषचरित (वि स 1760) आदि कुछ ऐसी सस्कृत रचनाए हैं जिनमे भ चन्द्रप्रभ का चरित निबद्ध किया गया है । प्राकृत मे भी शीलाचार्य का चउप्पन्न महापुरिस चरिय (वि स 925) और आम्रकवि (12वीं शती) का चउप्पन्न महापुरिस चरिय प्रसिद्ध ग्रन्थ माने जाते है । इनमे चन्द्रप्रभ स्वामी का चरित अत्यन्त सक्षिप्त मे उपलब्ध होता है ।

कुछ स्वतन्त्र काव्य लिखे गये है जिनमे चन्द्रप्रभ का चरित विस्तार से आकलित हुआ है । ऐसी रचनाओ मे वीर सूरि (स 1138), जिनेश्वर सूरि (स 1175) यशोदेव अपरनाम धनदेव (स 1178), हरिभद्र सूरि (12–13वी शती), व जिनवर्धन सूरि (स 1461), द्वारा लिखित प्राकृत चन्दप्पह चरियम् विशेष उल्लेखनीय है । सस्कृत प्राकृत उभय मिश्र भाषा मे भी चन्द्रप्रभ पर एक काव्य मिलता है जिसे देवेन्द्रगणि ने स 1264 मे लिखा था ।

चन्द्रप्रभ पर कुछ संस्कृत काव्य भी उपलब्ध हैं । प्रथम काव्य आचार्य वीर-नन्दि (11वीं शती का प्रारम्भ) कृत चन्द्रप्रभ महाकाव्य है जिसे यश कीर्ति ने अपने चन्दप्पह चरिउ महाकाव्य का आधार बनाया है । दूसरी रचना असग कवि (स 1045 के लगभग) कृत का उल्लेख मिलता है । तीसरी रचना देवेन्द्र सूरि (स 1260) की है जिसका उत्तर भाग नाटक शैली मे लिखा गया है । चौथी रचना सर्वानन्द सूरि (स 1302) की 6141 श्लोक प्रमाण है जो अभी तक अप्रकाशित है । पचम कृति भट्टारक शुभचन्द्रकृत (16–17वीं शती) बारह सर्गात्मक है । अन्य कवियो द्वारा लिखित उक्त काव्य के जो उल्लेख मिलते है उनमे पण्डिताचार्य, आचलिकगच्छ के एक सूरि, प शिवाभिराम (17वीं शती) तथा दामोदर (स 1727) के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं ।

अपभ्र श मे चन्द्रप्रभ पर अभी तक कुल तीन कृतियां ज्ञात हैं । प्रथम कृति भ यश कीर्ति की है जिसकी प्रतिया आमेर शास्त्र भण्डर जयपुर, दि जैन पाटोदी मन्दिर जयपुर, सरस्वती भवन नागौर व राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान चित्तौड-गढ मे सुरक्षित हे । इसी की एक प्रति स्व प परामानन्द जी के पास भी रही है । दूसरी कृति कवि दामोदर की है जिसकी प्रतिया ए प सरस्वती भवन ब्यावर मे है । तथा तीसरी कृति कवि श्रीचन्द्र की है जिसकी प्रति कोटडियो का दि जैन, मन्दिर, डूगरपुर मे रखी हुई है । ये सभी ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित हैं । इनमे चदप्पह चरिउ प्रथमत सपादित होकर प्रकाश मे आ रहा है ।

3 संपादन परिचय

प्रति परिचय

यश कीर्ति द्वारा रचित इस "चदप्पह चरिउ" के सपादन मे निम्नलिखित प्रतियो का उपयोग किया गया है—

1 'क' प्रति

यह प्रति श्री स्व प परमानन्द शास्त्री, दिल्ली के सौजन्य से प्राप्त हुई थी । प्रति मे कुल 67 पत्र है जिनमे प्रथम पत्र एक ओर लिखा गया है । आकार 27 से मी. × 12 से मी पक्तियां प्रति पृष्ठ 12, अक्षर प्रति पंक्ति प्राय 50, हाशिया दोनो पार्श्वों मे 3 से मी, ऊपर 2 से मी और नीचे $1\frac{1}{2}$ से मी । लिखावट समान और सुन्दर है । प्रति के मध्य मे पांच पक्तियों के बीच एक विशिष्ट आकार का चिन्ह

जिनरत्नकोश पृ 119

बना हुआ है और छूटी हुई जगह मे लाल स्याही से बड़ा शून्य रख दिया गया है। पत्र की दूसरी ओर दोनो ओर के हाशियो मे भी लाल स्याही से इसी प्रकार बड़ा शून्य बना दिया गया है। इससे प्रति अधिक सुन्दर दिखने लगी। घत्ता और पद्य क्रमाक भी लाल स्याही से लिखा हुआ है।

प्रति का प्रारम्भ 'नम सर्व्वनाय' मे होता है। कुल ग्यारह सधियाँ है और प्रत्येक सधि के अन्त मे "इय सिरि चदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरहिए" ' 'सधी समत्तो" लिखा है। हर सधि के अन्त मे ग्रन्थ सख्या भी लिखी हुई है।

प्रति के अन्त मे प्रशस्ति इस प्रकार है—

सवत् 1530 वर्षे फाल्गुण सुदि 5 भरणि नक्षत्रे श्री मूलसघे बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे भट्टारक श्री कु दकु दाचार्यान्वये, तस्यानुक्रमेण भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवान् तत्पट्टे भट्टारक श्री पद्मनदिदेवान्, तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवान्, तत्पट्टे भट्टारक श्री जिनचन्द्रदेवान्, तत्सिस्य मुनि श्री भुवनकीर्ति देवान्, तत्सिस्य ब्र बीसा, खण्डेलवालान्वये गगवालगोत्रे स साधू भार्या नउखी, तस्य पुत्र डालू, चाचा पीपा, द्वितीयक सा आसू, तस्य भार्या दामा, तस्य पुत्र डीडा, तस्य भार्या हेमी, तृतीइक सा लाखा, भार्या गाभा, तस्य पुत्र ताल्हू, फल्हू, इद स्वास्त्र चद्रप्रभ चरित्र दामा ब्रह्म वीसा योग्य कर्म्मक्षय निमित घटापित, (स्वहस्तेन दत्त। श्री चद्र प्रभ चैत्यालये लिखी। सा कुमरीमहा निधानालु।

याहश पुस्तक दृष्ट्वा ताहश लिखित मया।
यदि सुद्धमसुद्ध वा मम दोसो न दीयते ॥
भग्न पृष्टिक ग्रीवा वद्धदृष्टि अधोमुख।
कुष्टेन लिखित सा च पत्रेन प्रतिपालिता ॥
तैलरक्ष जले रक्ष रक्षेसि थलबधन।
पर हस्ते न दातव्य, एव वदति पुस्तकम् ॥ चिर जीवात्
पडित देवा लिखित।

इस प्रशस्ति से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

1 यह प्रति स 1530 मे फाल्गुन सुदी 5 भरणि नक्षत्र मे चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे लिखी गई। इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

मूलसघ, बलात्कारगण, सरस्वतीगच्छ, कु दकु दाचार्यान्वय—

भ प्रभाचन्द्र
|
भ पद्मनन्दि
|

भ शुभचन्द्र
|
भ जिनचन्द्र
|
भ भुवनकीर्ति

2 महाकवि ने यह ग्रन्थ हुबडकुल भूषण कु वरसिंह के सुपुत्र सिद्धपाल के अनुरोध पर रचा।

3 भुवनकीर्ति के शिष्य ब्रह्म वीसा खडेलवालान्वय मे गगवाल गोत्री थे। उनकी श्रावक शिष्य परम्परा मे ताल्हू, फल्हू ने इस 'चन्द्रप्रभ चरित्र' को वीसा के कर्मक्षय निमित्त लिखवाकर अपने हाथो से ही प्रदान किया। इस श्रावक परिवार का वक्ष इस प्रकार है—

सा सामू–भार्या नउखी
|
सा डालू
|
आसू–भार्या दामा
|
डीडा–भार्या हेमी
|
लाखाभार्या गागा

(1) लाल्लू

(11) फलहू

इस प्रति की निम्नलिखित विशेषताए द्रष्टव्य हैं—

1 आदि 'न' का प्राय सुरक्षित रहना। नकार बहुला होना।

2 मध्यवर्ती एव पदान्त असयुक्त तथा क्वचित् सयुक्त 'न्न' के स्थान पर 'ण' का प्रयोग होना, जैसे कण, विसण्णु, जिण आदि।

3 मध्यवर्ती सयुक्त 'न्न' के स्थान पर प्राय 'ण्ण' का प्रयोग होना, जैसे णिसण्णिउ, अण्णु, सपवण्णु।

4 'इ' के स्थान पर 'य' श्रुति का तथा 'य' श्रुति के स्थान पर 'इ' का प्रयोग मिलना।

5 'ब' के स्थान पर ब तथा 'ब' के स्थान पर 'ब' का प्रयोग करना। इसमे बकार का प्रयोग अधिक हुआ है।

6 'व' के स्थान पर कहीं-कहीं 'म' का प्रयोग मिलना ।

7 'त्थ' के स्थान पर 'च्छ' का प्रयोग–सत्थु > सच्छु ।

2 'ख' प्रति

यह प्रति श्री ग्रामेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की है । इसमे कुल 117 पत्र है । ग्राकार 26 से मी × 11 से मी है । हाशिया दोनो पार्श्वों मे तथा ऊपर नीचे 2 से मी , प्रत्येक पत्र मे 9 पक्तिया ग्रौर प्रत्येक पक्ति मे प्राय 40 ग्रक्षर है, ग्रक्षर सुन्दर ग्रौर स्पष्ट है । लाल स्याही से घत्ता, पद्य सख्या तथा सधि समाप्ति सूचक पक्ति लिखी गई है ।

इस प्रति का प्रारम्भ 'ॐ नमो वीतरागाय' से हुग्रा है । ग्रन्तिम प्रशस्ति ग्रधूरी है, जो इस प्रकार है—

सवतु 1583 वर्षे ग्राषाढ सुदी बुद्धवासरे पुष्यनक्षत्रे राणा श्री सग्राम राज्ये चपावती नगरे राव श्री रामचन्द्र प्रतापे श्री मूलसघे, नद्याम्नाये बलात्कारगणे सरस्वतीगच्छे श्री कु दकु दाचार्यान्वियेन भट्टारक श्री पद्मनदीदेवास्तत्पट्टे भ श्री श्रुतचन्द्रदेवास्तत्पट्टे भ श्री जिनचद्रदेवा स्तत्पट्टे भ प्रतापचन्द्रदेव तत्शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र सदुपदेशात् खण्डेलवालान्वये साहगोत्रे सा काधिल' भार्या कावलदे तत्पुत्रा सा गूजर, द्वितीय मा राधौ, तृतीय मा वाच्छा, सा राधौ भार्या रयणादि, तत्पुत्रा चत्वार प्र सा रामदास, तत्भार्या रायवाडे, द्वि सा साथू, भार्या हरिखमदे, तत्पुत्री द्वौ सापासा भार्या पाटमदे, द्वितीय गूजरि तत्पुत्र हरराज सा ग्रामा भार्या ग्रहकारदे, तृतीय सा दासा, तद्भार्या दाडिमदे, तत्पुत्रो प्र भीखसी, तत्भार्या बलदे, तत्पुत्रौ नानू-दादू, द्वितीय धर्मसी, तद्भार्या धारादे, चतुर्थ सा घाटम तद्भार्या घाटमदे' तत्पुत्रौ द्वौ देवसी, तद्भार्या देवलदे ।

इस ग्रधूरी प्रशस्ति से निम्नलिखित बातो की जानकारी मिलती है—

1, इस प्रति का लेखन सा 1583 ग्राषाढ सुदी 3 बुधवार को पुष्य नक्षत्र मे मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के सद्उपदेश से राणा सग्राम के राज्य मे चपावती नगरी मे राव रामचन्द्र के काल मे सपन्न हुग्रा ।

2 इसके ग्रनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

मूलसघ-नद्याम्नाय–बलात्कारगण–सरस्वतीगच्छ—

कुन्दकुन्दाचार्याम्नाय

|

भ. पद्मनन्दि देव
|
भ श्रुतचन्द्र देव
|
भ जिनचन्द्र देव
|
भ. प्रभाचन्द्र देव
|
मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र

मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के आम्नाय मे खण्डेलवालान्वयी साहगोत्र था जिसका वशवृक्ष इस प्रकार है—
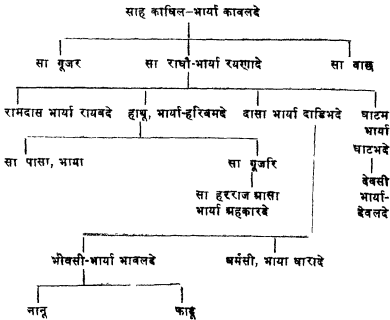
इस प्रति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

1. आद्यवर्ती 'न' सुरक्षित है पर कहीं-कहीं उसे 'ण' भी कर दिया गया है। णकार प्रवृत्ति अधिक मिलती है।

2 मध्यवर्ती सयुक्त 'न्न' भी सुरक्षित है पर इसके भी अपवाद मिल जाते हैं।

3 कुल मिलाकार इसमे णकार प्रवृत्ति अधिक है।

4 'इ' के स्थान पर य श्रुति का प्रयोग अधिक हुआ है।

5 शब्दात अथवा मध्यवर्ती 'हो' के स्थान पर 'हु' का प्रयोग अधिक हुआ है।

6 कुछ पद्यांश जो 'क' प्रति मे छूट गये है, यहा मिल जाते हैं।

7 'ह' के स्थान पर प्राय 'य' तथा ब के स्थान पर व मिलता है।

8 अनुस्वार बहुलता तथा व के स्थान पर ब का प्रयोग अधिक है। पाठान्तर मे इसे हमने छोड दिया है।

'ग' प्रति

यह भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की प्रति है। इसमे कुल 120 पन्ने हैं जिनमे प्रथम और अन्तिम पत्र एक ओर लिखा हुआ है। आकार 25 से मी × 12 से मी पंक्तिया प्रतिपृष्ठ 10–11 तथा अक्षत्र प्रति पंक्ति लगभग 35, हाशिया दोनो पार्श्वों मे 3–3 से मी तथा ऊपर–नीचे 2–2 से मी है। लिखावट सुन्दर और समान है। घत्ता और पद सख्या मे लाल स्याही का प्रयोग हुआ है। लिखने के बाद प्रति को किसी सफेद पदार्थ से काफी सुधारा गया है। हाशियो मे जहा कही कठिन शब्दो के अर्थ भी द्योतित किये गये हैं।

प्रति का प्रारम्भ "सिधि" "ऊ नम' सिद्धेभ्य" से इस प्रकार हुआ है। अन्तिम प्रशस्ति इस प्रकार है—

सवत् 1603 वर्षे शाके 1468 षष्ठयाब्दयो मध्ये प्रमाथिनाम सवत्सरे दक्षणायने मासनौ वर्ष ग्तौ महामाग्ल्य श्रावणमासे शुक्लपक्षे दसम्या तिथौ शनिवारे घटीप्परत एका 11 दश्या तिथौ मूलनक्षत्रे घटी 39 विकुभ नामयोगे घटी 9 परत प्रीत्यनामयोगे, मध्यान्हवेलाया, वृदावतीठाणात् हाडा चौहाणान्वये, राव श्री सूर्यामल, तत्पुत्र राव श्री सुरीताण राज्य पवर्तते। अथ जबूदीते सरस्वतीगच्छे श्री कुदकुदाचार्यान्वये तदगच्छे तदाम्नाये श्रीनत्पट्टे भटारीग श्री पद्मनन्दी देवा तत्पटे भ श्री शुभचन्द्र देवा तत्पटे भ श्रीजिनचन्द्र देवा तत्पटे भ श्री प्रभाचन्द्र देवा तत्शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये, जीवदयाव्रत पालणा सह श्री वोट्टीथान्याती गगवालान्वये साह वोट्टीथा भाया डोडी तयो पुत्र प्रथम जिणदास भार्या नेमी, द्वितीय भार्या लाछी, तृतीय भार्या गुजरी द्वितीय साहु मेला, भार्या ल्हौककना, तयो पुत्र प्रथम उदा द्वितीय भोज्या। गगवाल साहु बोहीथा तस्य गृहे भार्या डोडी तयो पुत्र साह। जीणदास भार्या गुर्जरी, तयो पुत्र प्रथम नीनीगाद, भार्या

नारंगवा, द्वितीय जालय कर्मक्षयार्थे लिखाइत्त वहुगुजरी। इदं चंदप्रभा सम्पूर्णं समाप्त । वाइयो ल्हीवीखा उपदेश दातव्य । जोसी गैया । ततपुत्र जोसी लिखित । ज्योसी गणेस । इद चंदप्रभ शास्त्र ।।........

इस प्रशस्ति से निम्नलिखित जानकारी मिलती है—

1 यह प्रति सवत् 1603 मे श्रवणमासीय शुक्ल पक्ष की दशमी तिथि की मध्यान्ह वेला मे समाप्त हुई। इस समय हाडा चौहाणवशी सूर्यमल के पुत्र राव सुरीताण का राज्य था।

2 इसके अनुसार गुरु पम्परा इस प्रकार है—

कुन्दकुन्दाचार्य
|
भ पद्मनन्दि देव
|
भ शुभचन्द्र देव
|
भ जिनचन्द्र देव
|
भ प्रभाचन्द्र देव
|
मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र देव

3 मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य खण्डेलवालान्वयी साह वोहीथ की वंश परम्परा इस प्रकार है
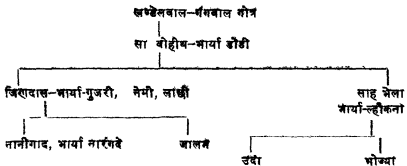
4 इस प्रति की निम्नलिखित विशेषताए' द्रष्टव्य हैं—

1 इस प्रति का आधार 'ख' प्रति रहा होगा । विशेषता यह है कि इसे किसी विद्वान ने बाद मे सुधारा है और जो सुधार हुआ है वह प्रायः ठीक है ।

2 अ तथा इ के स्थान पर प्राय य श्रुति का प्रयोग हुआ है ।

3. व के स्थान पर अ, य, उ तथा म भी किया गया है ।

4. शब्दो मे इकार का प्रयोग अधिक हुआ है ।

5 अनुस्वार बहुल है ।

6 यत्र तत्र शब्दार्थ भी दिये गये हैं हाशियो मे ।

'घ' प्रति

यह भी आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर की प्रति है जो आज जैन विद्या संस्थान, महावीर जी के ग्रन्थ भण्डार मे सुरक्षित है । इसमे कुल पन्ने 108 हैं जिनमे प्रथम पत्र एक ओर लिखा हुआ है । आकार 27 से मी × 11 से मी । पक्तियां प्रति पृष्ठ 10 तथा अक्षर प्रति पक्ति लगभग 33 है । हाशिया चारो पार्श्वों मे 2–2 से मी है लिखावट सुन्दर और समान है, घत्ता और पद सख्या लाल स्याही से अकित हैं । इस प्रति को भी यथावश्यक किसी सफेद पदार्थ से सुधारा गया है । हाशिये मे जहा कही कठिन शब्दार्थ भी लिख दिये गये है ।

प्रति का प्रारम्भ "ॐ नमो वीतरागाय" से हुआ है । अन्तिम प्रशस्ति लिपिकार की इस प्रकार है—

ॐ नम सवत् 1611 वर्षे चैत्र वदि 5 बिसपतिवारे स्वातिनक्षत्रे अल्हादपुर नगरे श्री मल्लिनाथ चैत्यालये श्री मूलसघे कुन्दकुन्दा (?) म्नाये बलात्कारगणे सरस्वती गच्छे श्री कुन्कुन्दाचार्यान्वये भट्टारक श्री पद्मनन्दि देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री शुभचन्द्रदेवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री जिणचन्द्र देवा स्तत्पट्टे भट्टारक श्री प्रभाचन्द्र देवास्तत् शिष्य मण्डलाचार्य श्री धर्मचन्द्र देवास्तदाम्नाये खण्डेलवालान्वये पोपल्य गोत्रे सभाला तद्भार्या पुसिरि तत्पुत्र व्रतारि प्रथम पुत्र सानह, द्वितीय णामल तृतीय सकान्हा, चतुर्थ सजालपन तद्भार्या नोलादे तत्पुत्र सहेम भार्या हीरादे सरणामल भार्या रईदे, द्वितीय गुजरि तत्पुत्रे चय प्रथम पुसमसमताद्युति अरहूाचिति विरदा समला भार्या व्रतिद्या तत्पुत्र तेजपाल भार्याद्विय प्रथम भवनदे द्वितीय सकतादे तत्पुत्र विरजा प्रेमराज अरट्टा भार्या अकरदे ।

यह प्रशस्ति अधूरी, अस्पष्ट और भाषागत गल्तियो से आपूर है । फिर भी जो कुछ जानकारी मिलती है, वह इस प्रकार है—

1 यह प्रति स 1611 में चैत्रवदि 5 बृहस्पतिवार को आल्हादपुर नगर वर्ती श्री मल्लिनाथ चैत्यालय मे समाप्त हुई।

2 इसके अनुसार गुरु परम्परा इस प्रकार है—

कुन्दकुन्दाचार्य
|
पद्मनन्दि देव
|
शुभचन्द्र देव
|
जिणचन्द्र देव
|
प्रभाचन्द्र देव
|
मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र

3 मण्डलाचार्य धर्मचन्द्र के शिष्य खण्डेलवालान्वयी पोपल्य गोत्री किसी विद्वान ने यह प्रतिलिपि की। प्रशस्ति कदाचित् बाद मे जोड़ी गई है। अधूरी होने से लिपिकार का नाम अज्ञात है।

4 इस प्रति की विशेषताए इस प्रकार हैं—

1 प्राय यश्रुति का उपयोग हुआ है। एकार भी मिलता है।

2 व का प्रयोग अधिक हैं।

3 अनुस्वार बहुल है।

4 'हु' का प्रयोग अधिक हुआ है।

5 हाशियो मे शब्दार्थ जहाँ कहीं दे दिये गये हैं।

6 'ख' प्रति से यह प्रति अधिक मिलती है।

पाठ संपादन की पद्धति

1 प्रस्तुत ग्रन्थ का संपादन पूर्वोक्त चार प्रतियों के आधार पर किया गया हैं। उनमे 'क' प्रति प्राचीनतम और कदाचित् सुन्दर व शुद्धतम है। अत इसी को सामान्यत आदर्श प्रति के रूप में स्वीकार किया गया है। जहा कहीं पाठ को निश्चित करने के लिए 'ख', 'ग' अथवा 'घ' प्रति को भी आदर्श मान लिया गया है।

2 आदि 'न' को 'ण' कर दिया गया है।

3. मध्यवर्ती 'न' की सुरक्षा, पर कहीं-कहीं उसके स्थान पर 'ण' की भी स्वीकृति।

4 यथावश्यक व के स्थान पर ब तथा ब के स्थान पर व का प्रयोग।

5 य श्रुति एव व श्रुति के प्रयोग मे एकरूपता नहीं।

6. यथास्थान 'उ' का प्रयोग सुरक्षित रखा गया है।

7 शब्दो मे विद्यमान इकार की स्वीकृति।

8 तृतिया एव सप्तमी विभक्तियो के कारक प्रत्ययो तथा पूर्व कालिक कृदन्त शब्दो मे इ तथा ए को स्वीकार किया गया है।

9 ख तथा ग प्रति अनुस्वार बहुला हैं। क प्रति मे आगत अनुस्वरों को भी स्वीकार किया है।

4 ग्रन्थकार परिचय

यश कीर्ति नाम के अनेक आचार्य हुए है–

1 चन्द्रप्पह चरिउ के रचयिता
2 पाण्डव पुराण के रचयिता (वि स 1497)
3. रत्नकीर्ति के शिष्य (वि स 1613 मे स्वर्गवास)
4 पद्मनन्दि के शिष्य जोरहट शाखा के भट्टारक (17वी शती)
5 पद्मनन्दि के शिष्य माथुरगच्छ के भट्टारक (18वी शती)
6 विजयसेन के शिष्य
7 विमल कीर्ति के शिष्य
8 रामकीर्ति के शिष्य (19वीं शती)–ईडर शाखा के भट्टारक

यश कीर्ति नाम के इन आचार्यों के बीच प्रस्तुत ग्रन्थ के रचयिता कौन है, यह प्रथम दो आचार्गों के बीच विवाद का विषय हैं। ग्रन्थकार ने ग्रन्थ के किसी भी भाग में न तो कोई विशेष परिचय दिया है और न ही ग्रन्थ रचना काल का उल्लेख किया है अत. उनकी स्थिति के विषय मे निश्चित रूप से कहा जाना कठिन हो गया है।

चंदप्पह चरिउ की अद्यावधि उपलब्ध प्रतियों मे सं 1530 की लिखी प्राचीनतम प्रति हमारे सामने है। इसलिए इतना निष्कर्ष तो निकाला ही जा सकता है कि कवि वि स 1530 के पूर्व हुए होंगे।

कवि ने अपने एक मात्र ग्रन्थ चदप्पह चरिउ मे आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र अकलक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन के नाम पूर्ववर्ती आचार्यों के रूप मे उल्लिखित किया है। अत. इस आधार पर उनका समय जिनसेन के बाद का होना चाहिए। पर यह कालावधि बडी लम्बी प्रतीत होती है।

पाण्डव पुराण के रचयिता भट्टारक यश.कीर्ति काष्ठासघीय माथुर गच्छ तथा पुष्कर गण के भट्टारक गुणकीर्ति के लघुभ्राता और पट्टधर थे, यह उनकी हरिवश पुराण की प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है। ये ग्वालियर के शासक तोमरवशीय राजा डू गरसिंह के समकालीन है। महाकवि रइधू ने इन्हें अपने गुरु के रूप मे उल्लिखित किया है। परन्तु आश्चर्य है कि 'चदप्पह चरिउ' मे इस प्रकार का कोई उल्लेख नही मिलता। अत यह निष्कर्ष निकालना स्वाभाविक-सा लगता है कि चदप्पहचरिउ के रचयिता और पाण्डव पुराण के रचयिता मे व्यक्तित्व भेद होना चाहिए।[1] दोनो ग्रन्थों की पुष्पिकाओ मे भी अन्तर दिखाई देता है। पाण्डव पुराण के कर्त्ता ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख भी नही किया। इतना ही नही, भाषा प्राञ्जल्य की दृष्टि से भी चदप्पह चरिउ और पाण्डव पुराण के कर्त्ताओ को पृथक्-पृथक् माना जा सकता है।

महाकवि यश कीर्ति ने अपने ग्रन्थ की रचना हुवड कुल भूषण कुमरसिंह के पुत्र सिद्धपाल के अनुरोध पर की है। यह ग्रन्थ की प्रत्येक पुष्पिका से पता चलता है।

इय सिरि चदप्पह चरिउ महाकइ जसकित्ति विरइए महाभव्व-सिद्धपाल-सवण भूसणे सिरि चन्दप्पह सामिणि वण गमणो एयारहमो नाम सधी परिच्छेओ सम्मत्तो।

सिद्धपाल का सम्बन्ध चालुक्यवशीय राजा कुमारपाल से सम्भावित है। कवि ने ग्रन्थ की अन्तिम प्रशस्ति मे गुर्जर देश के 'उम्मत्तगाम' का उल्लेख भी किया है। अत कवि का समय कुमारपाल के बाद का तो निश्चित हो ही जाता है। कुमारपाल का अन्तिम समय वि स 1230 (ई सन् 1173) है। पश्चिमी चालुक्यवश का यह अन्तिम समय था। सिद्धपाल इन्ही के वश के रहे होंगे। प्रशस्ति का भाग यह है—

गुज्जरदेसहं उम्मत्तगामु, तहि छड्डा सुअ हुअ दोण णामु।
सिद्धउ तो णदणु भव्ववधु, जिणधम्म भारि जें दिण्णखधु।

---

1. परमानन्द शास्त्री, जैन ग्रन्थ प्रशस्ति सग्रह, पृ. 80–81

तहु हुम्र जिहउ वहुदेवभव्वु, जें धम्मकज्जि विवकलिउ दव्वु ।
तहु लहु जायउ सिरि कुमारसिंहु, कलिकाल करिंदहो हणण सीहु ।
तहो हुम्र सजायउ सिद्धपालु, जिणपुज्जदाण-गुणगण रमालु ।
तहो उवरेहि इह कियउ गथु, हउ णमु णमि किंपिवि सत्थु गथु ।

जहा तक जन्म स्थान का प्रश्न है, कवि ने यद्यपि इसका स्पष्ट उल्लेख नहीं किया है पर पुष्कर गणी होने के कारण उसे अजमेर के आसपास का होना चाहिए ।

यशःकीर्ति के 'चंदप्पह चरिउ' पर वीरनन्दि के चन्द्रप्रभ चरितम् का पर्याप्त प्रभाव दिखाई देता है । वीरनन्दि का समय विक्रम का ग्यारहवी शताब्दी का पूर्वार्ध माना जाना चाहिए । यद्यपि उन्होने अपनी एक मात्र कृति 'चन्द्रप्रभचरितम्' मे न अपने विषय मे कुछ लिखा है और न ग्रन्थ रचनाकाल का ही उल्लेख किया है । आचार्य वादिराज ने अपने पार्श्वनाथ चरित शक स 947 सन् 1025 तथा नेमिचन्द्र सिद्धान्त चक्रवर्ती ने अपने कर्मकाण्ड मे वीरनन्दि का उल्लेख किया ।

अत इन प्रमाणो के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि 'चन्दप्पह चरिउ' के रचयिता यश कीर्ति पाण्डव पुराण के रचयिता यश कीर्ति के पूर्ववर्ती होगे और उनका समय लगभग 13 वीं शताब्दी माना जा सकता है ।

पूर्ववर्ती और समकालीन कवि

जैसा हम पहले कह चुके हैं, कवि ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों मे आचार्य कुन्दकुन्द, समन्तभद्र, अकलक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन का उल्लेख किया है । ये आचार्य अत्यन्त प्रसिद्ध आचार्य हैं अत इनके विषय मे लिखने की आवश्यकता नही । हाँ, यहा यह अवश्य उल्लेखनीय है कि यश.कीर्ति ने समन्तभद्र के जीवन मे घटने वाली उस घटना का उल्लेख बडी श्रद्धा के साथ किया है जब आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का स्तवन करने पर शिव पिण्डि फट गई और उसमे चन्द्रप्रभ की भव्य मूर्ति प्रकट हुई ।

कवि के समकालीन आचार्यों मे श्रीधर मदनकीर्ति, भावसेन त्रैवेद्य, आशाधर, नरेन्द्रकीर्ति, व अर्हद्दास के नामो का उल्लेख किया जा सकता है । इनमे कुछ आचार्य यश कीर्ति के कुछ पूर्ववर्ती और कुछ परवर्ती भी हो हकते हैं ।

5 कथावस्तु

प्रस्तुत ग्रन्थ का अभिधेय अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का जीवनवृत्त है । चन्द्र-

प्रभ की कथावस्तु का आधार पद्मपुराण हरिवंश पुराण और उत्तर पुराण (महा-पुराण) मे उपलब्ध कथा है जिसे महाकवि ने अपनी प्रतिभा से पल्लवित किया है। पद्मपुराण और हरिवंश की अपेक्षा उत्तरपुराण मे कथा का विस्तार अधिक मिलता है। उत्तरपुराण के चतुःपचाशतम् पर्व (पृष्ठ 44 से पृष्ठ 65 तक) में चन्द्रप्रभ का जीवन चरित अंकित किया गया है। उत्तरकालीन कवियो ने अपनी रचनायें इसी ग्रन्थ पर आधारित रखी हैं।

यश कीर्ति के चदप्पह चरिउ पर वीरनन्दि के चंदप्रभचरितम् का प्रभाव अधिक है। इस तथ्य को हम साराश के माध्यम से देख सकते हैं। चदप्पह चरिउ ग्यारह सधियो मे विभक्त है।

1 प्रथम सधि

प्रारम्भ मे महाकवि यश कीर्ति ने चन्द्रप्रभस्वामी को नमस्कार किया और त्रैकालिक परमेष्ठियो को प्रणामकर 'चदप्पह चरिउ' की रचना करने की प्रतिज्ञा की। इसके बाद चदप्पह चरिउ की रचना-पृष्ठभूमि को बताते हुए आचार्य कुन्दकुन्द समन्तभद्र, अकलक, देवनन्दि, जिनसेन और सिद्धसेन को पूर्वाचार्यों के नामो के रूप मे उल्लिखित किया। तदनन्तर सज्जन-दुर्जन के गुण-दोषो का वर्णन करते हुए कथा का प्रारम्भ किया है।

द्वितीय धातकीखण्ड द्वीप मे पूर्व विदेह मे मगलावती नामक देश है। उसमे रत्नसचय (मणिसचउ) नामका नगर है। इस नगर का प्रशासक कनकप्रभ नामक राजा था। और उसकी स्वर्णमाला नामकी महिषि थी। उनके पुत्र का नाम पद्मनाभ था। कनकप्रभ बडी दूरदर्शिता पूर्वक राज्य करता रहा। एक दिन कीचड मे फसे बूढे बैल को देखकर उसे वैराग्य हो गया। फलत उसका मन ससार की क्षणभगुरता से भर गया और पद्मनाभ को राज्याभिषिक्त करके स्वय ने श्रीधर मुनि से जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

2 द्वितीय सधि

एक दिन पद्मनाभ राजसभा मे बैठा था। इतने मे ही द्वारपाल ने वनमाली के आने का समाचार दिया। उसने बताया कि नगर के बाह्योद्यान मे श्रीधर नामक जैन मुनि पधारे हुए हैं। उनके प्रताप से सारा उद्यान पुष्पित हो गया है। राजा पद्मनाभ यह समाचार सुनकर प्रसन्न हो गया और सपरिकर मुनि के दर्शन करने चल पड़ा। उद्यान मे पहुचकर मुनि को भक्ति भाव से प्रणाम किया और 'शुभधर्म' का

लक्षण पूछा । मुनि ने शुभ धर्म अर्थात् श्रावक धर्म का प्रतिपादन करते हुए बारह व्रतों तथा अष्ट मूलगुणों के परिपालन की आवश्यकता बताई ।

इसके बाद पद्मनाभ के पूछने पर मुनि श्रीधर ने उसके भवान्तर का वर्णन किया ।

तृतीय द्वीप पुष्करार्ध के पूर्व मे स्थित मेरु (पूर्व मन्दर) के पश्चिम विदेह मे शीतोदा नामक नदी के उत्तरी तट पर सुगन्धि नाम का देश है । यह देश ग्राम शोभा से विभूषित है । इस देश मे श्रीपुर नामक नगर है जो परिखा तथा कामनियो से सुशोभित है । इस नगर के राजा श्रीषेण तथा रानी श्रीकान्ता का जीवन अधूरा सा लगता था ।

एक दिन रानी ने छत पर से कुछ धनिको के बालको को गेंद खेलते हुए देखा । तब से उसके मन मे पुत्र प्राप्ति की आकाक्षा जागी । यह बात उसकी सखी ने राजा को बता दी । राजा ने समझाया कि तीर्थंकर सुपार्श्वनाथ के समय अनेक केवलज्ञानी और अवधिज्ञानी मुनि हैं । उनमे इसका कारण और उपाय पूछेंगे ।

इतने मे वनमाली ने आकाश से एक चारण ऋद्धिधारी मुनि को आते हुए देखने की बात कही । राजा ने उनके पास जाकर वन्दना की तथा पूछा कि उसका मन ससार से विरक्त क्यो नही हो रहा है ? मुनि ने इसका कारण जानकर कहा कि पुत्र-प्राप्ति के बिना तुम्हारा मन शान्त नही होगा । पुत्र-प्राप्ति भी जल्दी ही होगी । अभी तक पुत्र न होने का एक कारण था ।

तुम्हारी यह पत्नी श्रीकान्ता पूर्वजन्म मे उसी नगर के वणिक् देवागद तथा उनकी पत्नी श्री की सुपुत्री सुनन्दा थी । उसने अपनी तरुणावस्था मे किसी गर्भालस तरुणी को देखकर निदान बाधा कि उसे इस प्रकार का दुख सहन न करना पड़े । उसी का यह फल है । अब जल्दी ही यह पुत्रवती होगी । राजा ने श्रावक व्रत ग्रहण किये तथा आष्टान्हिका-नन्दीश्वर पूजा की । फिर कुछ दिनो बाद रानी ने गर्भ धारण किया । बाद मे पुत्र जन्म हुआ जिसका नाम श्रीधर्म (श्रीवर्म) रखा गया । पुत्र बडा पराक्रमी और सर्वगुण सपन्न था । तरुण होने पर राजाने उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया तथा उसका विवाह प्रभावती राजकुमारी से कर दिया ।

तृतीय सधि

एक दिन उल्कापात देखकर श्रीषेण को वैराग्य हो गया । संसार की असारता का चिन्तन करते हुए उसने पुत्र को सम्बोधित किया और यह समझाया

कि उसे राज्य किस प्रकार चलाना चाहिए। इस सदर्भ मे राजनीति को प्रस्तुत किया गया है। राज्य सचालन मे गुप्तचर प्रमुख अग हैं। किसी को भी अकारण कष्ट मत दो। कभी विधर्मी न बनो, कामी न बनो। अधिक कर ग्रहण न करो। मन्त्रियो से सलाह लेकर काम करो। बाद मे श्रीषेण ने श्रीप्रभ मुनि से जिनदीक्षा ग्रहण की और वे ससार से मुक्त हो गये।

इधर श्रीधर्म (श्रीवर्म) दिग्विजय के लिए निकला। उस समय अनुकूल वायु चल रही थी राजा की चतुरगणी सेना शत्रु राजाओ के मन को आतंकित करने वाली थी। कुछ राजा शरणाकांक्षी होकर भेट देने आये। जिन्होने युद्ध किया वे मृत्युमुख मे पहुचे। माडलिक और द्वीपिक राजा उनके अनुयायी हो गये। दिग्विजय कर श्रीधर्म समुद्र तट का आनन्द लेते हुए अपने नगर श्रीपुर वापिस आ गया और सासारिक भोगो मे आसक्त हो गया।

एक दिन शरत्कालीन मेघ को देखकर ससार की क्षणभगुरता का आभास हो गया। फलत उसने अपने पुत्र श्रीकान्त को राज्य भार सौंप दिया और स्वयं ने श्रीप्रभ से दिगम्बर दीक्षा ले ली। तपश्चरण करते हुए वे सौधर्म स्वर्ग मे श्रीधर नामक देव हुए।

इसके बाद श्रीधर्म से सम्बद्ध कथा का सूत्र सचालन होता है। द्वितीय द्वीप धातकीखण्ड की दक्षिण दिशा मे एक इषुकार गिरि है जिसके पूर्व 'अलका' नामक देश है। सरोवरो के लिए वह देश प्रसिद्ध है। अलका देश मे कौशल नाम की एक सुन्दर नगरी है जो अत्यन्त वैभवशाली है। उसका राजा अजितजय और उसकी पत्नी अजितसेना थी। उनके श्रीधर का जीव अजितसेन नामक पुत्र हुआ। अजित-सेन बाल्यावस्था से ही सर्वकलाओ मे निपुण था। गुणवान पुत्र को पाकर कौन प्रसन्न नही होता ?

एक दिन की बात है कि चण्डरुचि नामक कुख्यात असुर,जो राजकुमार का पूर्व जन्म का वैरी था, राजसभा मे आया और सारी सभा को मूर्छित कर युवराज को हर ले गया। चेतना आने पर दम्पति हृदय विदारक विलाप करते हैं। यहा करुण रस प्रधान वर्णन मिलता है। कुछ समय बाद तपोभूषण नामक चारण मुनि आये और उन्होने बताया कि तुम्हारा पुत्र सकुशल वापिस आ जायगा। चिन्ता मत करो। राजा प्रसन्न होकर पूर्ववत् काम करने लगा।

चतुर्थ सधि

क्रोधी चण्डरुचि असुर ने अजितसेन को मनोरम नामक सरोबर मे फेंक

दिया । वह मगर-मच्छ से जूझता हुआ किनारे आ गया । पास ही 'परुपा' नाम की गहन अटवी थी । उसमे उमने प्रवेश किया । थोडी ही देर बाद अंजण गिरि शिखर दिखा । उस पर वह चढ गया । वहा पहुचते ही उसे एक आमिष पिण्ड सदृश नेत्र वाला क्रोधी पुरुष दिखाई दिया । उसने अजितसेन को ललकारा । बाद मे दोनो में भीषण युद्ध हुआ । अन्त मे अजितसेन ने अपने दोनो हाथो से उसे ऊपर उठाकर ज्यो ही उसे फेका, उसने अपना दिव्य रूप प्रगट कर दिया । उसने कहा कि उसका वास्तविक नाम हिरण्य है । वह उत्तम ऋद्धि-सपन्न देव है । जिन मन्दिर के दर्शन करते हुए यहा क्रीडा करने के लिए चला आया । अपना रूप बदल कर तुम्हारे साहस की परीक्षा की । अब जब भी मेरी आवश्यकता प्रतीत हो, स्मरण कर लेना ।

हाँ पूर्व जन्म की भी बात बताये देता हूँ । पिछले तीसरे जन्म मे तुम सुगन्धि नामक देश के श्रीपुर नामक नगर के राजा थे । वहा नगर मे दो गृहस्थ किसान थे-शशि और सूर्य । शशि ने सूर्य के घर सेंध लगाकर सारा धन चुरा लिया । तुमने उसका पता लगाकर धन वापिस दिला दिया और सूर्य को फासी की सजा द दी । वही शशि चण्डरुचि नामक असुर हुआ और मै ही पहले सूर्य था । चण्ड-रुचि ही तुम्हे हरकर सरोवर मे फेक गया । मै तुम्हारा मित्र हूं । इतना कहकर वह सूर्य अदृश्य हो गया ।

राजकुमार बाद मे बडी सरलता पूर्वक अटवी से बाहर आ गया । आगे उसने अरिंजय नामक देश म प्रवेश किया जहा राजा जयवर्मा अपनी महिषी चन्द्र-मुखी जयश्री के साथ राज्य करता था । उनकी शशिप्रभा कन्या थी जिसका विवाह महेन्द्र राजा के साथ निश्चित हो गया । परन्तु निमित्त ज्ञानियो से उसकी अल्पायु का पता हो जान पर यह निश्चय छोड दिया गया । फलत महेन्द्र के साथ युद्ध छिड गया । इधर अजितसेन उस देश मे पहुच गया और सघर्ष महेन्द्र से हो गया । चतुरगणी सेना के साथ अकेले अजितसेन का युद्ध दर्शनीय था । अजितसेन ने अपनी वीरता से महेन्द्र की सेना को पराजित किया । इस प्रसग मे वीर रस का सुन्दर प्रयोग हुआ है । महेन्द्र को पराजित करने पर राजकुमार कुछ समय जयवर्मा का अतिथि रहा । बाद मे शशिप्रभा का सम्बन्ध अजितसेन के साथ कर दिया गया । इस प्रसग मे विप्रलम्भ श्रृङ्गार रस का प्रयोग द्रष्टव्य है ।

इसके बाद उपकथा प्रारम्भ होती है । विजयार्ध पर्वत के दक्षिण मे आदित्य-पुर (रविपुर) नगर है । वहा धरणीध्वज नाम का राजा राज्य करता था । वह विद्याधरो का स्वामी था । एक दिन राजसभा मे उन्होने प्रियधर्म ब्रह्मचारी के

दर्शन किये। ब्रह्मचारी ने कहा, यद्यपि वे योगी और निर्मोही हैं पर मुनि से तुम्हारे विषय मे जो वृत्तान्त सुना है उसे तुम्हे बताना चाहता हूँ।

अरिंजय नामक देश मे एक विपुल नामक नगर है। वहा का प्रशासक जय वर्मा है। उसकी मृगनयनी पुत्री शशिप्रभा का जिसके भी साथ सम्बन्ध होगा वह तुम्हारा प्राणघातक होगा। यह जानकर धरणीध्वज चिंतित हो गया। फिर भी अपने मनोभाव को गुप्त रखकर उद्धत नामक दूत को जयवर्मा के पास भेजा, यह सदेश लेकर कि या तो वह शशिप्रभा का सम्बन्ध उसके साथ कर दे अन्यथा युद्ध के लिए तैयार रहे। जयवर्मा ने युद्ध को स्वीकार कर लिया। यह बात अजितसेन को भी बता दी गई। फलत धरणीध्वज का युद्ध जयवर्मा के साथ प्रारम्भ हो गया। इधर अजितसेन ने हिरण्य देव का स्मरण किया। स्मरण करते ही हिरण्य देव दिव्यास्त्रो से सुसज्जित रथ लेकर उपस्थित हो गया। हिरण्य ने सारथी बनाकर अजितसेन का साथ दिया अजितसेन के साथ विद्याधरो का घनघोर युद्ध हुआ। राजकुमार की प्रचण्ड शक्ति उन्हे असह्य हो गयी। उसके विविध अस्त्र-शस्त्रो ने धरणीध्वज की शक्ति को छिन्न-भिन्न कर दिया। अन्त मे अमोघ शक्ति का प्रहार कर धरणीध्वज की जीवन लीला भी उसने समाप्त कर दी। जयवर्मा की विजय हो गई अजितसेन ने हिरण्य को विदाई दी। विजय यात्रा प्रारम्भ हुई और शशिप्रभा का सम्बन्ध अजितसेन के साथ हो गया। इसके बाद अजितसेन अपने माता-पिता से भेट करने के लिए अपने नगर की ओर चल पडा। अजितसेन के पिता ने अपने पुत्र का आगमन सुनकर बडे उत्सव के साथ उसका नगर प्रवेश कराया।

इसके बाद अजितसेन चक्रवर्ती को चौदह रत्न (चक्र, खड्ग, छत्र, चर्म, दण्ड काकणी, चूडामणी, गज, अश्व, शक्ति, पुरोहित, शिल्प, गृहपति और शशिप्रभा) तथा नव निधिया (पाण्डुक, पिङ्गल, काल, शख, पद्म, महाकाल' माणव, नैसर्प और सर्वरत्न) प्राप्त हुई। इसके बाद अजितजय ने अजितसेन का पट्टाभिषेक किया।

इसी बीच स्वयप्रभ नामक तीर्थंकर राजधानी मे पधारे। यह जानकर अजितजय अपने पुत्र अजितसेन के साथ उनकी वन्दना करने के लिए घर से चल पडा। उनके पास पहुचकर अजितजय ने प्रणाम किया और तीर्थंकर से जिज्ञासा प्रकट की कि जीव शुभाशुभ कार्मों से कैसे बध जाता है और फिर उनसे कैसे मुक्त हो जाता है। उत्तर मे उन्होंने कहा कि मिथ्यात्व, प्रमाद कषाय और योग ये पाच कर्मबन्ध के कारण है। इन कारणो को दूर करने का उपाय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र का सम्यक् परिपालन है। इस प्रसग मे जैन धर्म का अच्छा

वर्णन किया गया है । अजितंजय धर्म और कर्म का इतना सुन्दर विवेचन सुनकर ससार से विरक्त हो गया और राज्य भार अजितसेन को सौंप दिया । अजितसेन ने भी श्रावक व्रत ग्रहण किये ।

पचम संधि

इसके बाद अजितसेन दिग्विजय के लिए निकल पडा । चौदह रत्न और नव निधिया उसके साथ थी । प्रभुशक्ति मन्त्रशक्ति और उत्साह शक्तियो से वह सनद्ध था । पराक्रम और वात्सल्य का वह धनी था । चक्रवर्ती का सारा वैभव उसके पास था । सेना, नाट्य, निधि, रत्न, भोजन, आसन, सेज, पात्र, पुर और वाहन ये दस भोग थे । म्लेच्छखड और आर्यखण्ड को जीतकर वह षड्खण्डाधिपति बन गया । अजितसेन का पराक्रम अप्रतिहत था ।

दिग्विजय करके अजितसेन सम्राट् अयोध्या वापिस पहुच गया । नगर को इस शुभ अवसर पर खूब सजाया गया । तरुणियो की भावभगिमायें इस समय विचित्र हो रही थी । राजप्रासाद मे अजितसेन का स्वागत किया गया समागत राजे-महाराजे वापिस चले गये ।

इसके बाद ऋतुराज वसन्त का आगमन हुआ । युवक-युवतियो को नया वातावरण मिला । इस प्रसग मे प्रकृति वर्णन शृङ्गार रस की समरसता को उत्पन्न करता है । अन्त पुर मे पहुच कर शशिप्रभा के साथ अजितसेन का प्रेमालाप और उसके सदर्भ मे भी इसी प्रकार का मनोहारी वर्णन दृष्टव्य है ।

इस अवसर पर अजितसेन ने वन विहार यात्रा करने का निश्चय किया । पुरवासी भी उनके साथ चल पडे । सभी ने जलाशय मे स्नान किया । काम क्रीडा और जल क्रीडा का बहुत अच्छा वर्णन कवि ने यहाँ प्रस्तुत किया है । जल क्रीड़ा करते-करते सूर्यास्त हो गया । बाद मे चन्द्रोदय भी हो गया । कमल विकसित हुए । कुमुदनी पर भौरे मडराने लगे । रात्रि का प्रहर बीत गया । रागी युवक अपनी प्रेमिकाओ के साथ एकान्त स्थान मे चले गये । रत्नोत्सव बढने पर अजितसेन ने भी शशिप्रभा के साथ सपर्क किया । कवि की कल्पनाये यहाँ उल्लेखनीय बन पडी है ।

प्रात काल होने पर दैनिक क्रियाओं से निवृत्त होकर अजितसेन अपने 'सर्वावसर' नामक सभा भवन मे पहुचा उस समय वहां आये हुए गजराज को उसने देखा । यह गजराज युद्ध के अभ्यास के लिए प्रस्तुत किया गया था । संयोग की बात है, उस हाथी ने एक असहाय व्यक्ति को सूड से उठाकर नीचे पटक दिया । वह मर

गया । यह देखकर अजितसेन को ससार से वैराग्य हो गया । ससार की क्षणभगुरता का इस प्रसंग मे अच्छा चित्रण हुआ है ।

इसी अवसर पर वनपाल से अजितसेन को पता चला कि गुणप्रभ आचार्य शिवकर नामक उद्यान मे पधारे हुए हैं । अजितसेन धर्म चर्चा के लिए उनके दर्शनार्थ उद्यान पहुचे । विचार-चर्चा करते हुए अजितसेन ने जिनदीक्षा लेने का संकल्प प्रकट किया । गुणप्रभ ने स्वीकृति दे दी । फलत जितशत्रु को राज्य भार सोप कर अजितसेन ने जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । वे घोर तपश्चरण करने लगे । महाव्रतो और समितियो का निरतिचार पालन करने लगे । बारह अनुप्रेक्षाओ का चिन्तन, परीषहो का सहन, समुचित चारित्रो का परिपालन करते हुए अजितसेन की शुभ लेश्याओ मे निखार आ गया । शुभ ध्यान करते हुए समाधिमरण पूर्वक प्राणो का त्याग किया । इसके बाद वे अच्युत नामक सोलहवे स्वर्ग मे जाकर अच्युत स्वर्ग मे इन्द्र हुआ ।

षष्ठ संधि

श्रीधर मुनि ने अपनी बात पूरी करते हुए कहा कि तुम आयु समाप्त करने पर अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर मणिसचयपुर मे कनकप्रभ की महिषि सुवर्णमाला की कुक्षि से पद्मनाभ नामक राजकुमार हुए हो । पद्मनाभ श्रीधर मुनि के वचन (भवान्तर परम्परा) सुनकर रोमाञ्चित हो गया । विश्वस्त हो जाने के लिए श्रीधर मुनि ने यह भी कहा कि आज से दस दिन बाद एक मदोन्मत्त हाथी अपन झुण्ड को छोडकर तुम्हारे नगर की ओर आयेगा । उसे देखकर तुम्हे विश्वास हो जायगा और सारी बातो की सचाई का आभास हो जायगा ।

पद्मनाभ मुनिवर को प्रणामकर राजधानी वापिस आ गया ठीक दसवें दिन कोलाहल शुरू हो गया और बताया गया कि पद्मनाभ ने लोगो को शान्त किया और अपनी प्रतिभा, बल और बुद्धि से उसे वश मे कर लिया । पुरवासी प्रसन्न हो गये । उस हाथी का नाम 'वनकेलि' रखा गया ।

एक दिन की बात है, राजा पद्मनाभ की सभा में राजा पृथ्वीपाल का दूत आया और उसने कहा कि यह 'वनकेलि' हाथी पृथ्वीपाल को सप्रणाम वापिस कर दीजिए अन्यथा समर्थ की तैयारी कर लीजिए । युवराज स्वर्णनाभ ने दूत को उत्तर दिया और कहा कि क्षमा और नीति के कारण तुम्हें बचाया जा रहा है अन्यथा मेरे पिता पद्मनाभ पृथ्वीपाल को कभी बचाने न देते । दूत ने क्रोधित होकर पुन. अपनी बात दोहरायी । सारी सभा उसके कथन पर क्षुब्ध हो उठी । पर पद्मनाभ ने उसे शान्त कर दूत को विदा किया ।

इसके पश्चात् पद्मनाभ ने अपने मन्त्रिमण्डल से विचार-विमर्श किया। और कहा कि पृथ्वीपाल को मेरी राय मे दण्डित किया जाना चाहिए। मन्त्री पुरुभूत ने पृथ्वीपाल के साथ साम नीति का आश्रय लेने की सलाह दी पर स्वर्णनाभ युवराज ने उसे दण्ड देने के विचार का भरपूर अनुमोदन किया। युवराज के मन्तव्य को सदस्यो का समर्थन मिला। तब यह निश्चय किया गया कि दूत को यह कहकर बिदा कर दिया जाय कि "आज से तीसवे दिन निश्चय ही मैं आपको हाथी दूगा, या फिर युद्ध करूगा"।

इसके बाद पद्मनाभ भीमरथ आदि मित्र राजाओ के साथ पृथ्वीपाल से युद्ध करने के लिए उसके नगर की ओर चल पडा। इस प्रसग मे कवि ने सेना-प्रयाण का काव्यात्मक वर्णन प्रस्तुत किया है। सेना ने जलवाहिनी नदी पर पडाव डाला। विश्रामकर वह वहा से आगे बढी।

आगे पद्मनाभ ने एक मणिकूट पर्वत देखा वह किन्नारियो का क्रीडा स्थल था। सभी दृष्टियो से वह रमणीक था। पद्मनाभ की सेना वहा ठहर गई। बाजार, तम्बू, भोजनालय आदि की व्यवस्था वहा पहले से ही हो गई थी। सभी ने यहा विश्राम किया।

प्रात काल होते ही युद्ध की भेरी बज उठी। पद्मनाभ, स्वर्णनाभ आदि सभी योद्धा युद्ध करने चल पडे। इधर पृथ्वीपाल भी अपनी सेना के साथ रणक्षेत्र मे कूद पडा। दोनो ओर से घमासान युद्ध हुआ। अन्त मे पद्मनाभ ने पृथ्वीपाल को अपने वज्रमुष्टि नामक अस्त्र से चूर-चूर कर डाला। यह देखकर पृथ्वीपाल की सेना भाग खडी हुई।

इसके बाद किसी सेवक ने पद्मनाभ के समक्ष पृथ्वीपाल का कटा हुआ सिर लाकर रख दिया। उसे देखते ही पद्मनाभ को वैराग्य उत्पन्न हो गया। वह ससार की असारता का चिन्तन करने लगा। बाद मे स्वर्णनाभ को राज्य भार सौंपकर स्वय ससार से निवृत्त हो गया। श्रीधर मुनि के पास जाकर उस जिनदीक्षा ग्रहण कर ली। तेरह प्रकार के चरित्र का पालन करते हुए सोलह कारण भावनाओ का परि-पालन करने लगा। दर्शन विशुद्धि, विनयसम्पन्नता आदि सोलह कारण भावनाए तीर्थंकर प्राप्ति के मूल कारण है। अन्त मे तपस्या करते हुए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तप की आराधना की। और फिर शरीर छोडकर वे अनुत्तर वैजयन्त स्वर्ग मे चले गये। वहा पद्मनाभ अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु तीसरे सागर प्रमाण थी।

सप्तम संधि

इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र मे एक पूर्व देश है जो धन-धान्य से परिपूर्ण है। उस देश की राजधानी का नाम चन्द्रपुरी है। उसके राजा का नाम महासेन और महिषी का नाम लक्ष्मणा है। महासेन के विषयासक्त हो जाने से अधीनस्थ राज्य स्वतन्त्र होने लगे। यह जानकर महासेन का प्रमाद दूर हुआ और वह दिग्विजय के लिए निकल पडा। अपने बाहुबल से अ ग, कलिंग, पाचाल, उद्र, चेदि, आंध्र द्रविड, लाट, कश्मीर आदि राज्यो को विजित कर स्वदेश वापिस आ गया। इसके बाद साम्राज्य सुख भोगते हुए लक्ष्मणा ने गर्भ धारण किया। छह माह तक उनके घर रत्नो की वृष्टि हुई। उसके उपरान्त एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर मे लक्ष्मणा ने सोलह स्वप्न देखे। महासेन ने उनके फल को स्पष्ट किया।

अष्टम सधि

लक्ष्मणा का प्रसूति-काल जैसे-जैसे समीप आता गया, जंभाई, आलस आदि गर्भचिन्ह स्पष्टतर होते गये। उसका चन्द्रपान का दोहद भी पूरा हुआ। इसके बाद पौष कृष्णा एकादशी के दिन लक्ष्मणा ने एक सुन्दर पुत्र को जन्म दिया। दिव्य पुष्पो की वर्षा हुई। कल्पवासी, ज्योतिषी, भवनवासी और व्यतर देवो की निवास भूमियो पर दुन्दुभियाँ वजने लगी, सिंहनाद होने लगे। सभी देव तीर्थंकर के जन्म स्थान चन्द्रपुरी चल पडे। इसके बाद इन्द्राणी ने प्रसूतिगृह मे प्रवेश किया। वहा एक सद्योत्पन्न बालक को रखकर वह जिन भगवान को उठा लाई। सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने जिन बालक को हाथो मे लेकर ऐरावत हाथी पर चढा लिया। देवियां मगलगान करने लगी। भेरियां बजने लगी। सुमेरु पर्वत की पाण्डुक शिला पर स्थित सिंहासन पर जिन बालक को बैठाया। सुमेरु से लेकर क्षीरसागर तक खडी देव पंक्ति ने बालक का अभिषेक किया। फिर चन्द्र की कांति के समान कान्ति संपन्न होने से बालक का नाम चन्द्रप्रभ रखागया। सभी ने उनकी स्तुति की। बाद मे उन्हे चन्द्रपुरी वापिस ले गये। और वहा उन्होने जन्माभिषेक महोत्सव मनाया।

नवम सधि

धीरे-धीरे जिन बालक चन्द्रप्रभ बडा होने लगा। उनका स्वभाव चपल था और क्रीडाये मनोरजक थीं। बाल्यावस्था मे हाथी, घोडो की सवारी की। बाल्य-काल समाप्त होने पर राजा महासेन ने चन्द्रप्रभ का विवाह सस्कार किया और बाद मे पट्टबधन किया। उन्होने राज्य शासन चलाया। सभी प्रसन्न रहे। उस समय अकाल मरण नहीं हुआ और न छह ईतियो से जनपद को कभी नहीं हुई।

एक दिन अत्यधिक वृद्ध व्यक्ति लाठी के सहारे आया। कहने लगा, नाथ!

बचाइये,बचाइये । आज मृत्यु देवता मुझे उठा ले जायगा । यह कहकर वह अदृश्य हो गया । सभासदो के पूछने पर अपने अवधिज्ञान से तीर्थंकर ने बताया कि वह धर्मरुचि नामक देव था । विक्रिया के बल से वह वृद्ध बन गया था । फलत तीर्थंकर का मन सासारिक भोगो से विरक्त हो गया । ससार असार है । हर प्राणी को स्वकृत कर्मों का फल भोगना पडता है । अत अब मे इन कर्मों की निर्जरा करूगा । इतने मे इन्द्र अपने परिकर के साथ आया और उन्हे 'विमल' शिविका मे बैठाया और 'सकलतु' वन मे ले गया । वहा वे अपने पुत्र वरचन्द्र को राज्यभार सौपकर तप करने लगे । पच मुष्टियो से केश लु चन कर उन्हे क्षीरसमुद्र मे प्रवाहित कर दिया गया । फिर सभी ने मिलकर भगवान का दीक्षाकल्याणक महोत्सव मनाया ।

दसम सधि

महाव्रतो और समितियो का पालन करते हुए मूलगुणो व उत्तरगुणो का निरतिचार पूर्वक आचरण किया । वे छयालीस दोष रहित भोजन करते थे । परिषहो को सहन करते थे । उपवास समाप्त होने पर राजा सोमदत्त के घर उनकी पारणा हुई । अन्तरग-बाह्य शत्रुओ को समाप्त किया । कर्म प्रकृतियो को क्षीण करते हुए उसी सकलतु वन मे पहुचे जहा उन्होने जिनदीक्षा ली थी । नागवृक्ष के नीचे आसन लगाकर वे बैठ गये । और शुक्लध्यान का अवलम्बन कर ज्ञानावरण, दर्शनावरण, मोहनीय और अन्तराय कर्मों का विनाश कर केवलज्ञान प्राप्त कर लिया । भगवान का समवरण 8½ योजन विस्तृत था । उसकी गन्धकुटी मे भगवान विराजमान हुए । सभी जीव उनके समवरण मे धर्मोपदेश सुनने के लिए एकत्रित होते थे ।

एकादशम सधि

इसके पश्चात्, दिव्य ध्वनि प्रारम्भ हुई । भगवान् ने जीवादि सप्त तत्त्वो का सांगोपाग विवेचन किया । जीव भव्य-अभव्य अथवा त्रस और स्थावर के भेद से दो प्रकार का है । अन्य तत्त्वो का भी उन्होने इसी प्रकार विवेचन किया । वे जहा विहार करते थे, उसके 200 योजन तक सुभिक्ष हो जाता था । उनका शरीर छाया रहित था । तथा कवलाहार और उपसर्ग से अछूता था । उनके पलक निष्पलक थे । वे चौदह अतिशयो से सुशोभित थे । आठ प्रातिहार्यों से युक्त थे । उनका धर्म परिवार इस प्रकार था--

गणधर	93
पूर्वधारी	200000
उपाध्याय	200400

अवधिज्ञानी	8000
केवली	10000
विक्रियाऋद्धिधारी साधु	14000
मनःपर्ययज्ञानी	8000
वादी	7600
आर्यिकाएँ	180000
सम्यग्दृष्टि श्रावक	300000
श्राविकाएँ	500000

भगवान चन्द्रप्रभ पृथ्वी पर विहार करते रहे। बाद मे सम्मेदाचल पर्वत के शिखर पर जाकर विराजमान हो गये। वहा उन्होने एक मास पर्यन्त विहार का परित्याग कर मुनि सघ के साथ प्रतिमायोग धारण किया। फिर भाद्रपद शुक्ला सप्तमी को शुक्ल ध्यान के द्वारा समस्त पापो का विनाश कर मुक्ति प्राप्ति की। इसके बाद देवताओ ने अगुरु चन्दन आदि से उनका अन्तिम सस्कार किया और मोक्ष कल्याणक उत्सव मना कर अपने-अपने स्थान चले गये।

6. पूर्ववर्ती कवियों का प्रभाव

यश कीर्ति के चदप्पहचरिउ का उपजीव्य वीरनन्दि का चन्द्रप्रभ चरित रहा है। उत्तरपुराण के कथानक से जो साम्य और वैषम्य 'चन्द्रप्रभ चरितम्' मे देखा जाता है वही साम्य और वैषम्य चन्दप्पह चरिउ मे भी उपलब्ध है।

तीनो ग्रन्थो मे कथानक, भवसख्या, आयु, नाम और धर्म परिवार सख्या समान है। जो वैषम्य है वह अन्तर्कथाओ के कुछ सदर्भों मे। चन्द्रप्रभचरितम् के कथानक, नाम आदि मे तो कोई भेद नही, भेद है उत्तर पुराणगत नामो मे। इसे चन्द्रप्रभचरितम् के सपादकीय वक्तव्य मे श्री प अमृतलाल शास्त्री ने उल्लेख किया है। अत. मुझे यहां उसे दुहराने की आवश्यकता नही है।

वीरनन्दि ने अपने महाकाव्य की कथावस्तु को जिस प्रकार से विभाजित किया है उससे कही अधिक वैज्ञानिक दृष्टि यश कीर्ति की रही है जिसे हम इस प्रकार देख सकते हैं—

चन्द्रप्रभचरितम् (सस्कृत)	चन्दप्पहचरिउ (अपभ्र श)
सर्ग	संधि
1 पद्मनाभ का पट्टाभिषेक	1. पद्मनाभ का पट्टाभिषेक

2	श्रीधर से भवान्तर पूछना और श्रीपुर नगर वापिस आना	2	भवान्तर, श्रीषेण की पत्नी श्रीकान्ता को 'श्रीधर्म' नामक पुत्र की प्राप्ति, उसका प्रभावती से विवाह
3	भवान्तर कथन, पुत्र प्राप्ति न होने का कारण, पुत्र 'श्री वर्मा का उत्पन्न होना ।		
4	राजकुमार श्रीवर्मा के गुणो का वर्णन, विवाह, श्रीषेण का वैराग्य, श्रीप्रभ से जिनदीक्षा श्रीवर्मा की दिग्विजय यात्रा, वैराग्य, श्रीकान्त को राज्यभार, जिनदीक्षा, सौधर्म स्वर्ग मे गमन ।		श्रीषेण द्वारा श्रीधर्म का पट्टाभिषेक 3 श्रीषेण का वैराग्य, जिनदीक्षा, श्रीवर्मा की दिग्विजय यात्रा वैराग्य, जिनदीक्षा, सौधर्म स्वर्ग मे गमन ।
5	अलका देश का कौशल नगर, अजितसेन का हरण, तपोभूषण द्वारा सम्बोधन ।		अजितसेन का हरण, तपोभूषण द्वारा सम्बोधन ।
6	अजितसेम का हिरण्य देव के साथ युद्ध, महेन्द्र से युद्ध, जयवर्मा से मित्रता, धरणीध्वज से युद्ध शशिप्रभा (जयवर्मा की पुत्री) के साथ परिणय, स्वपुर प्रवेश	4	अजितसेम का हिरण्य के साथ युद्ध, शशिप्रभा के साथ सबन्ध, स्वपुर प्रवेश
7	अजितसेन का चक्रवर्ती होना, अजितजय का वैराग्य, जिनदीक्षा, अजितसेन की दिग्विजय यात्रा, स्वपुर प्रवेश, राज्योपभोग		अजितंजय का वैराग्य, अजितसेन का पट्टाभिषेक, अजितसेन द्वारा श्रावक व्रत ग्रहण (चद्रप्रभ चरितम् का 7 56 तक का विषय)
8	वसन्त वर्णन, वन विहार, जलकेलि	5	अजिनसेन द्वारा अनागार धर्म का परिपालन,
9	उपवन यात्रा, जलकेलि		अच्युत स्वर्ग मे गमन, (चद्रप्रभ चरितम् का 11 72 तक का विषय)
10	सायकाल वर्णन, रात्रि-क्रीडा वर्णन, शय्यात्याग		

11 अजितसेन का वैराग्य, जितशत्रु को राज्यभार समर्पण, जिनदीक्षा, अच्युत स्वर्ग गमन, वहा रत्नसञ्चयपुर मे कनकमाला के गर्भ से पद्मनाभ के रूप मे उत्पत्ति, गजप्रवेश, वन क्रीडा	6 पद्मनाभ का अच्युत स्वर्ग मे गमन
12 पद्मनाभ और पृथ्वीपाल के युद्ध की पृष्ठभूमि, मन्त्रियो के साथ चर्चा	
13 पृथ्वीपाल से पद्मनाभ के युद्ध का प्रसग, सेना प्रयाण, 'जलवाहिनी' नदी पर विश्राम	
14 सेना वर्णन, भटो के साथ सग्राम विमर्श	
15 पृथ्वीपाल के साथ युद्ध वर्णन, वैराग्य, जिनदीक्षा, अनुत्तर स्वर्ग गमन	7 तीर्थंकर का गर्भ कल्याणक महोत्सव
16 चन्द्रपुरी वर्णन, महासेन राजा और लक्ष्मण, महारानी के गर्भ मे चन्द्रप्रभ का प्रवेश	8 जन्म कल्याणक महोत्सव 9 दीक्षा कल्याणक महोत्सव
17 चन्द्रप्रभ का जन्माभिषेक, राज्यभार, धर्मरूचि से भेट, वैराग्य, जिनदीक्षा, कल्याण, कैवल्यलाभ, समवशरण वर्णन	10 केवलज्ञान कल्याणक महोत्सव
18. तीर्थंकर द्वारा धर्म-प्रवचन, सप्त तत्त्व विवेचन, अतिशय वर्णन, धर्म परिकर, सम्मेद शिखर से मुक्ति प्राप्ति	11 धर्म प्रवचन निर्वाण महोत्सव

सर्गों और सन्धियो की इस तुलना से यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि यश - कीर्ति ने सन्धि विभाजन मे अपनी मौलिकता का प्रदर्शन किया है। महाकवि ने वीरनन्दि के समान श्रृङ्गारिक वर्णन अधिक न करके तीर्थंकर के चरित वर्णन पर अधिक ध्यान दिया है। यही कारण है कि वीरनन्दि ने जिस वर्णन मे लगभग दस सर्ग लगाये हैं वहाँ यश कीर्ति ने उसे दो सधियो मे ही समेट लिया है। इसी प्रकार

यश कीर्ति ने हर कल्याणक के लिए पृथक्-पृथक् सन्धि का नियोजन किया है जबकि वीरनन्दि ऐसा नही कर सके ।

इसके बावजूद, यश कीर्ति पर वीरनन्दि का निश्चित ही बहुत अधिक प्रभाव रहा है । लगता है, वीरनन्दि के चन्द्रप्रभचरितम् को सामने रखकर यश कीर्ति ने अपने ग्रन्थ की रचना की है । प्रकृति वर्णन, युद्ध व श्रागारिक वर्णन के प्रसग मे तो कही-कही यश कीर्ति ने भाव और भाषा, दोनो को वीरनन्दि से ग्रहण किया है ।

हम समूचे कथा भाग की तुलना सक्षेप मे इस प्रकार कर सकते हैं—

प्रथम सधि

	चन्दप्पहचरिउ	चन्द्रप्रभचरितम्
1		1 6
2–3	सज्जन-दुर्जन वर्णन	1 10 सज्जन-दुर्जन वर्णन कम है ।
4–6	मगलावती देश का वर्णन (कल्पनाए समान)	1 11–21
7–8	रत्नसचयपुर का वर्णन	1 22–28
9–10	कनकप्रभ राजा तथा कनक माला का वर्णन (गर्भावस्था का वर्णन अधिक है तथा पद्मनाभ का वर्णन कम है)	1 39,53–57
11	पद्मनाभ का वर्णन है ।	58–63 गर्भावस्था का वर्णन है ही नही ।
12	बैल को मरते देख कनकप्रभ को वैराग्योत्पत्ति	64–65 कनकप्रभ का वैराग्य
13–14	ससार की असारता	67–77 ससार चिन्तन
15–16	पद्मनाभ का राज्याभिषेक और कनकप्रभ का श्रीधर मुनि के पास जाकर दीक्षा लेना	78–85 एक जैसा

द्वितीय संधि

	वनपाल द्वारा श्रीधर मुनि के आगमन की सूचना । यहा मुनि-राज के गुणो की प्रशसा बहुत कम है ।	2 1–23 सूचना, मुनिराज की गुण वर्णन अधिक है ।

2	उद्यान की महिमा और श्रीधर मुनि को वहां बैठे देखना	2 23–36 उद्यान का सुन्दर वर्णन ।
3	पद्मनाभ द्वारा मुनि की स्तुति	2 37–43 कल्पनात्मक वर्णन
4–6	श्रावक व्रतो का वर्णन । यहा साम-यिकता अधिक है, दार्शनिकता कम है ।	2 44–110 आत्मा की अस्तित्व सिद्धि का दार्शनिक विवेचन
7	सुगन्धि देश का वर्णन	2 111–124 कल्पनात्मक वर्णन
8	उसमे श्रीपुर नगर का वर्णन	2 124–143 आलकारिक वर्णन
9	श्रीषेण राजा का वर्णन	3 1–13 श्रीषेण का वर्णन
10-11	श्रीषेण की राज्ञी श्रीकान्ता का सौन्दर्य वर्णन और उसकी खेद-खिन्नता का कारण	3 14–26 वही
12-13	सखि द्वारा स्पष्टीकरण और राजा द्वारा सान्त्वना	3 27–41 वही
14	उद्यान तथा वसत ऋतु का वर्णन तथा मुनिराज का आगमन	3 42–44
15	श्रीकाता का पूर्व जन्म वृत्तान्त	3 45–55
16	राजा को पुत्र-जन्म का ज्ञान और सागार धर्म का पालन । पच व्रतो मे कुछ विशेषता है ।	3 56–58
17	गुण व्रत-शिक्षा व्रत	इसने इनका वर्णन नही किया ।
18	श्रीकान्ता का गर्भाहरण	3 59–68 हाँ
19	श्रीधर्म नामक पुत्र का जन्म । प्रभावती के साथ उसका विवाह, फिर राज्याभिषेक	3 69–76 पुत्र का नाम श्रीवर्मा

तृतीय सधि

1	श्रीषेण की वैराग्योत्पत्ति	4 18–32
2–4	ससारी का वर्णन	
5	पुत्र की शिक्षा दीक्षा । इसमे गंभीरता नहीं ।	4 33–43 राजनीतिक शिक्षा । यहां गम्भीरता अधिक है ।
6–9	श्रीधर्म का राज्याभिषेक, दिग्विजय, मुक्ति	4 44–78 विषय वही

10	धातकी खण्डवर्ती अलका देश तथा उसकी कोशला नगरी का वर्णन	5,1–22 कल्पनाए अच्छी हैं। कुछ का उपयोग वदप्पह चरिउ मे भी हुआ है।
11	राजा अजितजय, रानी अजित-सेना तथा पुत्र अजितसेन का वर्णन	5 23–40
12	अजितसेन का राज्याभिषेक	5 41–49
13–14	पुत्र का अपहरण और राजा का विलाप	5 56 विलाप। यहा मार्मिकता अधिक है
15–16	तपोभूषण मुनि का आगमन और पुत्र के अपहरण की कथा का निर्देशन	5 57–91 वही

चतुर्थ सधि

1–21	अजितसेन का दिग्विजय वर्णन तथा श्रावक व्रत ग्रहण	सर्ग षष्ठ तथा सप्तम के 52 श्लोक तक का विषय

पचम सधि

1–16	अजितसेन का दिग्विजय प्रयाण, बसत ऋतु, कामकेलि, वैराग्य तथा स्वर्ग-गमन वर्णन। यहा आलकारिकता दृष्टव्य है।	यहा तक का विषय वर्णन 11 73 तक समाप्त

षष्ठ सधि

1-2	पद्मनाभ द्वारा गजराज को वश मे किया जाना, तथा पृथ्वीपाल के दूत का आगमन	11 74–92
3	दूत का कथन	12 2–25
4	स्वर्णनाभ युवराज का उत्तर, यहा व्यावहारिकता कम है।	12 26–54
5	पद्मनाभ का कथन	12 55–58

6–8	पुरुभूति और युवराज के तर्क। पृथ्वीपाल से युद्ध के संदर्भ में भवभूति का नाम नहीं। कथा प्रवाह अधिक है।	11 67–111 यहा नीति का वर्णन स्पष्टव्य है। तेरहवा सर्ग समाप्त।
10–11	रात की रगरेलियो का वर्णन	चौदहवां सर्ग समाप्त। यहा यह वर्णन नही है।
12–14	युद्ध वर्णन	
15	वैराग्य वर्णन	
18–25	क्रोध, मान, माया, लोभ तथा सोलह कारण भावना	यह वर्णन चन्द्रप्रभ मे नहीं। यहा पन्द्रहवा सर्ग समाप्त।
26	अनुत्तर बिमान गमन	

सप्तम संधि

1–2	पूर्व देश का वर्णन	16 1–10
3–4	चन्द्रपुरी नगरी का वर्णन	
5–6	महासेन का वर्णन	यहा दिग्विजय का वर्णन नही है।
7–8	लक्ष्मणा का वर्णन	
9–10	गर्भ पूर्व का वर्णन। यहाँ सुर-लोक के आनन्द का वर्णन अधिक है।	
11–17		सोलहवां सर्ग समाप्त

अष्टम संधि

1–24	सुमेरु पर्वत पर जाना तथा चन्द्र-पुरी नगरी मे अभिषेक कर वापिस आना, जन्म कल्याणक महोत्सव	17 1–44 पर समाप्त

नवम संधि

1–07	दीक्षा कल्याणक महोत्सव	इसका वर्णन नाम मात्र है,

दसवीं संधि

1–17 केवल ज्ञान कल्याणक महोत्सव सत्रहवां सर्ग समाप्त

ग्यारहवीं संधि

1–29 धर्म प्रवचन तथा निर्वाण महोत्सव अठारहवां सर्ग समाप्त

इस तुलनात्मक अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि यश कीर्ति ने कथा प्रवाह को द्रुतगति से बढ़ाया पर समयानुसार उसका निर्वाह भी अपनी प्रतिभा और क्षमता के आधार पर किया। जहां आवश्यक हुआ वहां उन्होने वीरनन्दि से भी अधिक विषय वस्तु का वर्णन किया है। इसमे कभी-कभी बडी सुन्दर कल्पनाए भी दिखाई दे जाती हैं। वसत वर्णन, सौन्दर्य वर्णन जैसे प्रसगो पर यश कीर्ति ने अपनी प्रतिभा का अच्छा प्रदर्शन किया है।

वीरनन्दि के अतिरिक्त महाकवि यश कीर्ति पर कुन्दकुन्दाचार्य, उमास्वामी, पूज्यपाद, अकलक, जिनसेन आदि जैनाचार्यों का तथा कालिदास, भारवि, माघ आदि जैनेतर कवियो का भी प्रभाव दिखाई देता है। पुर प्रवेश तथा सेना-प्रयाण वर्णन मे काम क्रीडा का प्रसग कालिदास, माघ आदि महाकवियो की वर्णन-परम्परा का स्मरण करा देता है। यहा इतना अवश्य दृष्टव्य है कि यश कीर्ति ने अपनी प्रतिभा समय और शक्ति को श्रृङ्गारिक वर्णन मे न लगाकर सभी रसो का समान रूप से प्रयोग किया है। जैन धर्म का विवेचन करते समय भी उन्होंने जैन दर्शन की गम्भीरता को प्रकट न कर सीधा-साधा वर्णन किया है। उदाहरणार्थ वीरनन्दि ने द्वितीय सर्ग मे आत्मा और परमात्मा का दर्शनिक विवेचन किया पर यश कीर्ति ने उसके स्थान पर श्रावक व्रतो को प्रस्तुत किया है। ऐसे प्रसगो मे भाषा भी बोझिल नहीं हुई है।

7 चंदप्पहचरिउ का महाकाव्यत्व

काव्य कवि की अन्तश्चेतना का निष्यन्द है। वह अनुभूति के खरल मे घिसकर शब्दो के माध्यम से रसात्मकता के साथ अभिव्यक्त होता है। यह अभिव्यक्ति चाहे गद्य मे हो या पद्य मे, सर्वत्र कवि का जीवन दर्शन तथा दृष्टि उसमे प्रतिबिम्बित होती रहती है। पद्य विधा मे यह प्रतिबिम्बन महाकाव्य, खण्डकाव्य तथा मुक्तक काव्य के रूप मे होती है। महाकाव्य को ही प्रबन्ध काव्य कहा जाता है जिसमे

पुराण और चरित, दोनो प्रकार की धाराए मिलती है इनमे अन्तर यह है कि प्रबध मे अलौकिकता, आवान्तर कथानको तथा पौराणिक रूढियो को जो विस्तार दिया जाता है वह चरित काव्यो मे नही मिलती। चरित काव्यो में तो सक्षिप्त शैली का उपयोग अधिक होता है। कडवको की सख्या भी अपेक्षाकृत कम रहा करती है। लोक तत्त्वो का विशेष उपयोग भी इसमे किया जाता है। धार्मिक, साम्प्रदायिक तथा उपदेशात्मक दृष्टिकोण इन कथा काव्यो की भूमिका मे मुख्य रहता है।

कवि इन काव्यो मे धार्मिक, सामाजिक और ऐतिहासिक तत्त्वो का आलेखन करता है। साथ ही काव्यात्मक रूढ़ियो का भी परिपालन करता चलता है। जहा देश नगर, हाट के वर्णन मे कवि आत्मविभोर हो जाता है वही स्वयवर और काम-केलि, मे वह रसासक्त हृदय को उडेल देता है। युद्ध के वर्णन मे सम्भावित-असभावित तत्त्वो को दर किनारे रखकर नायक की वीरता की चरमोत्कर्षता को कवि अपने काव्य मे पहुचा देता है। पारिवारिक जीवन मे मान्य सामाजिक उत्सवो को भी वह पर्याप्त स्थान देता चलता है। इन सारे प्रसगो मे आठो-नवो रस यथा-स्थान प्रवाहित होते हुए दिखाई देते रहते हैं। पारम्परिक और नये उपमानो के साथ रूपक, उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलकारो का प्रयोग भी साथ-साथ चलता रहता है।

यश कीर्ति का चदप्पहचरिउ इन सारी दृष्टियो से एक रसात्मक सुन्दर काव्य सिद्ध होता है। कवि की दृष्टि यद्यपि अपने आराध्य तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित को उद्घाटित करने की रही है पर उसने आनुषगिक रूप से जीवन के मर्म को समझाते हुए जैनधर्म के प्रमुख सिद्धान्तो को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। जिन्दगी के मर्म स्थलो को भावुकता से सहलाते हुए कथानायक के जीवन प्रसगो को उपस्थित करता चला जाता है। कथा को अनावश्यक विस्तार देने मे भी वह विश्वास नही करता।

यश कीर्ति ने स्वय को हर पुष्पिका वाक्य मे 'महाकवि' कहा है। इस कथन से सम्भवत कवि का यही भाव रहा होगा कि उसके काव्य को महाकाव्य कहा जाना चाहिए। ग्रन्थ के अन्तरावलोकन से उनका कथन प्रमाणित हो जाता है। प्रस्तुत ग्रन्थ मे महाकाव्य के प्रायः सभी लक्षण मिल जाते हैं। चौदहवी शती के आचार्य विश्वनाथ के समय तक महाकाव्य की परिभाषा लगभग स्थिर हो चुकी थी। उन्होने साहित्य दर्पण में महाकाव्य का निम्नलिखित स्वरूप बताया है—

जो सर्गबद्ध हो वह महाकाव्य है। उस काव्य का नायक देवता होना चाहिए अथवा अच्छे वश का क्षत्रिय, जिसमें धीरोदात्त आदि गुण हो अथवा वश मे उत्पन्न अनेक राजा भी उस काव्य के नायक हो सकते हैं। ऐसे महाकाव्य मे शृङ्गार, वीर,

और शान्त रस मे से एक रस प्रधान होता है तथा अन्य रस गौण रूप से वर्णित होते है। उसमे नाटक की समस्त सधिया होती है। महाकाव्य की कथा किसी ऐसे महान् व्यक्ति पर आश्रित होती है जो लोक प्रसिद्ध अथवा इतिहास प्रसिद्ध व्यक्ति हो। धर्म, अर्थ, नमस्कारादि आशीर्वचन, या वस्तु का निर्देश होता है। महाकाव्य मे कही-कही खलो की निन्दा और सज्जनो के गुणो की प्रशसा रहती है। एक सर्ग मे एक ही वृत्त की प्रधानता रहती है। परन्तु सर्ग के अन्त मे वृत्त भिन्न हो जाता है। सर्ग न बहुत छोटे और न बहुत लम्बे हो। उनकी सख्या आठ से अधिक होती है। सर्ग के अन्त मे आगामी कथा का सकेत मिलना चाहिए। उसमे सन्ध्या, सूर्य, रजनी चन्द्र, प्रदोष, अन्धकार, दिन, प्रात काल, मध्यान्ह, मृगया, शैल, ऋतु, वन, सागर, सभोग, विप्रलम्भ, मुनि, स्वर्ग, यज्ञ, युद्ध, यात्रा, विवाह, मन्त्र, पुत्र, और अम्युदय आदि का सागोपांग वर्णन होता है। इस प्रकार के प्रबन्ध काव्य का नाम कवि, चरित अथवा चरित नायक के नाम पर आधारित होता है। कही-कही इससे भिन्न नाम भी हो सकता है। सर्गों का नाम कथा पर आश्रित होना चहिए।[1]

महाकाव्य की उपर्युक्त परिभाषा 'चन्दप्पहचरिउ' पर पूर्णत घटित होती है। यह एक नायक प्रधान, सर्गबद्ध, शान्त रस प्रधान, ग्यारह सधियो (सर्गों) मे निबद्ध, प्रकृति आदि के वर्णन से सयोजित, चरित नायक पर आधारित महाकाव्य है। तीर्थंकर चन्द्रप्रभ के चरित का वर्णन करना ही महाकवि का मुख्य अभिधेय रहा है।

इसमे चन्द्रप्रभ तीर्थंकर के परम्परागत सात भवो का वर्णन किया गया है– 1 श्रीधर्म (श्रीवर्मा), 2 श्रीधर देव, 3 अजितसेन, 4 अच्युतेन्द्र, 5 पद्मनाभ, 6 वैजयन्तेश्वर, और 7 चन्द्रप्रभ। इस प्रसग मे धातकीखण्ड आदि द्वीपो, तथा मगलावती, रत्नसजयपुर, कोशल आदि नगरो का वर्णन किया गया है। चन्द्रप्रभ को नायक बनाकर उनके चरम उत्कर्ष को उनके जन्म मे बताया गया है चन्द्रप्रभ की जन्म-जन्मान्तर की पत्नियो—सुवर्णमाला, श्रीकान्ता, अजितसेन आदि को नायिकाओ के रूप मे प्रस्तुत किया गया है।

1 अलकार, रस और छन्द योजना—चदप्पहचरिउ रस सिद्ध काव्य है। इसमे ऋतुओ मे विशेष रूप से वसन्त ऋतु का वर्णन किया गया है। अजितसेन की क्रीडा के वर्णन-प्रसग मे ऋतुओ का विशेष आधार लिया गया है इन्ही प्रसगो मे श्रृङ्गार रस का भी अच्छा प्रयोग हुआ है। श्रीवर्मा और अजितसेन की दिग्विजय

---

1 साहित्य दर्पण, विश्वनाथकृत

यात्राओं तथा, महेन्द्र, पृथ्वीपाल आदि राजाओ के साथ उनके युद्ध प्रसगो पर वीररस का सुन्दर प्रयोग हुआ है । ससार चिन्तन और जीवादि तत्त्वो के विवेचन के सदर्भ मे शान्तरस का आधार लिया गया है । प्रस्तुत कृति का यही मुख्य रस है अजितजय का पुत्र शोक करुणरस के लिए तथा चन्द्रप्रभ की बाल लीला वात्सल्य रस के लिए उद्धृत की जा सकती है ।

अलकारो में शब्द और अर्थ, दोनो प्रकार के अलकारों का उपयोग किया गया है । शब्दालकारो मे अनुप्रास और यमक तथा अर्थालकारों मे उपमा, रूपक, उत्प्रेक्षा, भ्रान्तिमान, अपह्नुति, श्लेष, अप्रस्तुत प्रशसा, विशेषोक्ति, अर्थान्तरन्यास, ससृष्टि, सकर, समासोक्ति, दृष्टान्त आदि अलकारो का सुन्दर सयोजन हुआ है ।

छन्द-योजना की दृष्टि से यह ग्रन्थ वैविध्य लिये हुए अधिक नही है । फिर भी उसका सयोजन मनोहारी हुआ है मात्रिक समवृत्तो मे पद्धडिया, अडिल्लह, त्रोटनक और पादाकुलिक, वर्णिक समवृत्तो मे त्रिपदी, मात्रिक, विषम वृत्तो मे गाथा, दोहउ, तथा ध्रुवक और घत्ता का प्रयोग विशेष रूप से किया गया है कवि ने इन वृत्तो का प्रयोग विषय और सदर्भ के अनुकूल किया है । माधुर्य, प्रसाद और ओज गुणो का भी मणि-काञ्चन सयोग हुआ है ।

चन्दप्पहचरिउ मे ग्यारह सन्धिया है जिनमे कुल पद्य और उनकी श्लोक सख्या (ग्रन्थ सख्या) इस प्रकार है—

सन्धि	पद्य (कडवक)	श्लोक (ग्रन्थ) सख्या
प्रथम	16	162
द्वितीय	19	193
तृतीय	16	165
चतुर्थ	21	214
पचम	16	173
षष्ठ	26	248
सप्तम	17	160
अष्टम	24	264
नवम	24	234
दशम	17	192
एकादशम्	29	300
कुल	225	2305

सन्धि की रचना कडवक छन्दो से होती है और कडवक छन्दों का समुदाय होता है। इन छन्दो मे प्रमुख छन्द चार हैं—पद्धडिका, अडिल्ल, वदनक और पारणक। हर सन्धि घत्ता से समाप्त होती है जिसे धुवा, धुवक या छड्डणिया भी कहा जाता है। यह घत्ता षट्पदी, चतुष्पदी या द्विपदी होता है। इसके भी अनेक भेद-प्रभेद होते है। घत्ता की अन्तिम मात्रा ह्रस्व हो या दीर्घ, इसका कोई निश्चित नियम नही है। कडवक मे कुल आठ यमक या सोलह पक्तियो का होना आवश्यक माना जाता है पर उत्तरकाल मे यह नियम शिथिल होता हुआ दिखाई देता है। यश कीर्ति के चन्दप्पहचरिउ मे भी इस नियम का पालन नही हुआ। सन्धि के प्रारभ मे आने वाले छन्दो को धुवक कहा जाता है। चन्दप्पहचरिउ मे भी ऐसे धुवक मिलते है परन्तु उस परिमाण मे नही जिस परिमाण मे पुष्पदन्त ने दिये है।

9 धार्मिक और सामाजिक संदर्भ

इन सन्धियो मे परम्परानुसार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक विवेचन यथास्थान किया गया है। दो सस्थानो पर ग्र म वर्णन भी मिलता है। जैन धर्म के विवेचन की दृष्टि से तो यह ग्रन्थ एक अच्छा सग्रह ग्रन्थ है। गुणव्रतो के प्रसग मे कवि ने दिक्परिमाण, भोगोपभोगपरिमाण और अनर्थदण्ड व्रतो का उल्लेख कर आचार्य कु दकु द का अनुकरण किया है। कु दकु द द्वारा ही मान्य शिक्षा-व्रतो मे सामायिक, प्रोषधोपवास और सल्लेखना को तो स्वीकार किया है पर सोमदेव का अनुकरण यश कीर्ति ने अतिथि सविभाग के स्थान पर दान को रख कर किया है (2 6)। अष्टमूल गुणो का उल्लेख अवश्य आया है पर उनको गिनाया नही गया है। उत्तर गुणो अथवा शीलव्रतो के रूप मे इन व्रतो का विभाजन किया गया है। मुनि आचार का भी सक्षिप्त वर्णन मिलता है। इन सारे सदर्भों मे मुझे कोई विशेषता नही दिखी, इसलिए हम उसका पृथक् विवरण नही दे रहे है।

10 भाषा और व्याकरण

चदप्पहचरिउ अपभ्र श का काव्य ग्रन्थ है। अपभ्र श पद भ्रष्ट अर्थात् बिगडे शब्दो का प्रतीक है। ये ऐसे विकृत शब्द होते थे जो लोक भाषा मे प्रचलित थे और जिन्हे शिष्ट प्रयोग की सफल श्रेणी मे नही गिना जाता था। ये शब्द सस्कृत व्याकरण से भ्रष्ट और देशज रहते थे। अपभ्र श शब्द का सर्व प्रथम प्रयोग यद्यपि भर्तृहरि के अनुसार व्याडि ने किया है पर उनका ग्रन्थ उपलब्ध नही होता। उपलब्ध ग्रन्थकारो मे पतजलि (150 A-D) का नामोल्लेख किया जा सकता है जिन्होने महाभाष्य मे इस शब्द को अपभ्रष्ट के अर्थ मे प्रयुक्त किया है और साथ ही

संस्कृत गौ शब्द के अपभ्रष्ट रूप गावी, गोणी, गोता आदि दिये हैं। भरत (ईसा की तृतीय शताब्दी) ने प्राकृत को जाति भाषा मानकर उसे समान शब्द, विभ्रष्ट और देशीगत के रूप मे विभक्त किया है। इसी प्रसंग मे उन्होने सस्कृत को आर्य भाषा माना है जो व्याकरण से परिष्कृत है। जाति भाषा का तात्पर्य उनकी दृष्टि मे ऐसी भाषा से है जो सर्व साधारण जन समाज मे प्रचलित थी और जिसका कोई व्याकरण नही था। भरत ने ऐसी भाषा को उकार बहुला कहा है जो पश्चिम मे प्रचलित थी। और इसी तरह एकार वाली भाषा पूर्व मे प्रयुक्त होती थी। इसके बाद भामह (ई की छठी शती) ने अपभ्र श को सस्कृत और प्राकृत के साथ पृथक् रूप मे गिनाया और दण्डी ने इन तीनो मे मिश्र भेद को और जोड दिया। राजशेखर ने तो अपभ्र श के कुछ नियम भी बना दिये। उनके अनुसार परिचारको को अपभ्र श ही बोलना चाहिए। उन्होंने यह भी लिखा कि मरुभूमि, राजपूताना और पजाब के कवि अपभ्र श का विशेष प्रयोग करते हैं जिसमे टकार, ककार और भकार अधिक होता है। इसी तरह अन्य आलकारिको और वैयाकरणों ने अपभ्र श को समुचित स्थान दिया है। नाटकों मे तो उसका प्रयोग बहुलता से हुआ ही है। दण्डी ने उसे आभीरी भी कहा है। नमिसाधु ने भी उसका समर्थन किया है। यहा आभीरी का तात्पर्य ग्राम्य भाषा से है।

अपभ्र श भाषा-विकास की कथा को द्योतित करती है। वह मध्यकालीन प्राकृत की अन्तिम अवस्था है। बुद्ध और महावीर ने प्राकृत मे ही अपना उपदेश दिया। उन्होंने उसे सस्कृत मे अनुदित करने की अनुमति नही दी। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि प्राकृत एक समृद्ध जनभाषा के रूप मे उस समय प्रचलित थी। इसी भाषा का उत्तरकालीन विकसित रूप अशोक के उत्तर-पश्चिम, गिरनार,, गगा यमुना तथा महानदी के बीचवर्ती प्रदेश और दक्षिण मे प्राप्त अभिलेखो मे पाया जाता है। निय प्राकृत का भी उल्लेख इस सदर्भ मे किया जाना आवश्यक है जिसमे खरोष्ठी लिपि मे लिखित धम्मपद उपलब्ध हुआ है। इन भाषाओ से इतना तो स्पष्ट ही है कि प्राकृत एक जाति भाषा के रूप मे समग्र देश मे फैली हुई थी। सस्कृत तो एक विशिष्ट वर्ग की भाषा थी जिसे कवियो और साहित्यकारो ने सवारा था। बुद्ध और महावीर ही प्रथम महापुरुष हुए हैं जिन्होने सर्वप्रथम जनबोली को अपनाया। इसका जनरूप वेदो मे भी खोजा जा सकता है।

अपभ्र श को साधारणत तीन भेदो मे विभक्त किया जाता है–1 पूर्वी अपभ्र श अथवा मागधी अपभ्र श जिससे प वगला, उडिया, भोजपुरी मैथिली आदि भाषाए निकली हैं। 2 दक्षिणी अपभ्र श, और 3. पश्चिमी अपभ्र श जिसे नागर अपभ्र श भी कहा जाता है। वैसे तो अपभ्र श के सैकडो भेद हो सकते है पर मूलत. तीन भेद

ही माने गये हैं—नागर, ब्राचड और उपनागर। नागर (शौरसेनी) अपभ्रंश से ही राजस्थानी, और गुजराती भाषाओं का जन्म हुआ है। इसी तरह अन्य भेदों के विषय मे कहा जाये तो यह भाषा वैज्ञानिक तथ्य स्पष्ट हो जायेगा कि महाराष्ट्री अपभ्रंश से मराठी, मागधी से बगला, बिहारी, आसामी, उड़िया और ब्राचड सेसिन्धी का जन्म हुआ है। उनमे नागर अपभ्रंश मे अधिक साहित्य लिखा जाता रहा है। चद-प्पहचरिउ भी इसी मे लिखा गया है। पूर्वी-पश्चिमी हिन्दी के भेदो के आधार पर भी इस तथ्य की पुष्टि हो जाती है।

अपभ्रंश मे स्वर और व्यञ्जन के सदर्भ मे निम्नलिखित प्रमुख विशेषताए दृष्टव्य हैं—

1 ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ स्वर की वृद्धि।
2 ह्रस्व वर्णों का प्रचुर प्रयोग है। अन्त्य स्वर भी ह्रस्व हो जाते हैं।
3 यश्रुति का प्रयोग अधिक है।
4 प्राकृत की सामान्य प्रवृत्तिया स्थिर रही।
5 य के स्थान पर ज का प्रचुर प्रयोग
6 ञ का अभाव

7 दन्त्य न का प्राय अभाव है। उसके स्थान पर ण हो जाता है विशेषत उत्तर-पश्चिमी और प्राच्य क्षेत्र मे प्राय न और ण दोनो हैं।

8 प्राच्य प्रदेश मे व को ब उच्चारण करने की प्रवृत्ति अधिक है। इसके विपरीत पश्चिम मे वकार बहुलता है।

चदप्पहचरिउ वस्तुत भाषा की दृष्टि से भी एक उच्चकोटि का अपभ्रंश काव्य ग्रन्थ सिद्ध होता है। भाषिक अध्ययन करने पर इसमे प्रयुक्त भाषा और उसका व्याकरण सक्षेप मे इस प्रकार है—

प्रयुक्त स्वर—अ, आ, इ, ई, उ, ऊ, ए, ओ,
अनुस्वार एव ँ अनुनासिक।
प्रयुक्त व्यञ्जन—क्, ख्, ग्, घ्
च्, छ्, ज्, झ्,
ट्, ठ्, ड्, ढ्, ण्,
त्, थ्, द्, ध्, न्
प्, फ्, ब्, भ्, म्
य्, व्, र्, ल्, स्, ह

भाषा विज्ञान की दृष्टि से इन्हे हम इस प्रकार विभाजित कर सकते हैं—

(1) खण्डात्मक स्वनिम

(i) स्वर

1 जिह्वावा का व्यवहृत भाग—

(i) अग्र स्वर—इ, ई, ए
(ii) पश्च स्वर—आ, उ, ऊ, ओ
(iii) मध्य स्वर—अ

2 जिह्वावा के व्यवहृट भाग की ऊचाई—

(i) सवृत—इ, ई, उ, ऊ
(ii) अर्ध सवृत—ए, ओ
(iii) अर्ध विवृत—अ
(iv) विवृत आ

3 ओष्ठ की स्थिति—

(i) वर्तुलित—ओ, ऊ,
(ii) अवर्तुलित—इ, ई, ए

मात्राकाल और कोमल तालु की दृष्टि से चदप्पहचरिउ के स्वरो को तीन भागो मे विभाजित किया जा सकता है—

मूल स्वर—(i) ह्रस्व–अ, इ, उ, ह्रस्व ए और ह्रस्व ओ
(ii) दीर्घ–आ, ई, ऊ, ए, ओ
(iii) सयुक्त स्वर–अइ, अउ, एइ, एउ
(iv) अनुनासिक स्वर–अनुनासिकता प्राय सभी स्वरो के साथ उपलब्ध है।

इन स्वरो के लघुतम युग्म शब्द की प्रत्येक स्थिति मे मिल जाते हैं। इनके उपस्वनिम भी खोजे जा सकते हैं। इनमे बलाघात शून्य स्वर को ह्रस्व करने की विशेष प्रवृत्ति देखी जाती है। इसलिए अन्त्य स्वर ह्रस्व हो जाते हैं।

स्वर विकार

1 अ > इ = कारणि, उप्पत्ति
अ > उ = परिमलु, सम्मुहु
अ > ए = बेल्लि

2 आ > अ = कता, तह, चमर, अप्प, अम्ब
आ > उ = विणु, पुणु, णरवरु
आ > ऊ = विणू
आ > ओ = तहो

3 इ > अ = सिरस
इ > उ = उच्छु
इ > ए = जे, ते

4 ई > आ = आरिस
ई > इ = कित्ति, नइ, रयणि

5 उ > अ = मउड
उ > इ = पुरिस
उ > ई = धीय
उ > ओ = पोग्गल

5 ऊ > उ = पुव्व, मुहुत्त, बहु
ऊ > ए = नेउर
ऊ > ओ = थोर

6 ऋ > अ = पमरिय
ऋ > इ = अमिय, किमि
ऋ > उ – पुहवि
ऋ > ए – गेह
ऋ > रि – रिद्धि
ऋ > अरि – उब्भरिय

7 ए > इ – पचेंदिय

8 ऐ > ए – केलास
ए > अइ – दइव

9 औ > उ – अण्णुण्ण
औ > ए – करेमि

10 ओ > औ – जोव्वणु

11 ह्रस्व स्वर की दीर्घीकरण प्रवृत्ति—सिही, सीस

12 दीर्घ स्वर का ह्रस्वीकरण—अच्छेरअ, परिक्खा, रज्ज

13 ह्रस्व स्वर का अनुस्वारत्व—दसण, असु

14 स्वर लोप

(i) आदि स्वरलोप—हउ हेट्ठिल

(ii) मध्य स्वरलोप—उदिट्ठ

(iii) अन्त्य स्वरलोप—सहावें

15 आदि स्वरागम—इत्थि

16 स्वर भक्ति—आयरिय, किलेस

17 स्वर व्यत्यय—अच्छरिय, वभचरिय

18 स्वरगम—इच्छु/उच्छु, पेक्खिवि, मेल्लिवि ।

संयुक्त स्वर

(i) (अइ) दइअ, अइस

(ii) (अउ) पउर

(iii) (एइ) देइ, लेइ

(iv) (एउ) नेउर

अनुनासिक स्वर

(अँ) भउहँ

(इँ) तहिँ, तुम्हहिँ, सइँ

(उँ) सपत्तउँ, चउहुँ

अनुस्वार स्वर—अनुस्वार के पूर्ववर्ती स्वर प्राय अनुनासिक होते हैं । वर्ग के सभी अन्तिम वर्ण अनुस्वार मे परिवर्तित हो गये । अनुस्वार कही कही बहुवचन का भी द्योतक है । निरनुनासिकता की प्रवृत्ति भी द्रष्टव्य है—जैसे–तीसा, सीह ।

(अ) पयगु, जहु

(इ) तहि, एहि, भणइ

(उ) तणउ, मुहु

स्वर लोप

आदि स्वर लोप—हउ, वलग्ग

मध्य स्वर लोप—पडिलिउ

अन्त्य स्वर लोप—एउ

स्वराघात—गइ, कित्ति, विश्रास । अन्त्याक्षरो पर प्राय बलाघात नहीं रहता ।

व्यञ्जन परिवर्तन और विकार—यश्रुति का प्रयोग विशेष हुआ है । पर व श्रुति का अधिक प्रयोग नही हुआ ।

क > य = लोय, मयरद, अणेय

ख > ह = पमुह, सुह-दुह, साहा

ग > य = कालायरु, सायार, अणुराय

घ > ह = मेह

च > य = वयणाइ, च > अ = लोअण

छ > ञ – अपभ्रंश मे इसका अभाव है ।

ज > य = तेयमडलि

7 ट > ड = कोडि, फाडु, अडविहि, सुहड

8 ठ > ढ = मढ, कीढ

ड > ल = कील

ण – णकार प्रवृत्ति अधिक है ।

9 त > य = निग्गय, इयर, मीलिय, अमय

त > ड = पडिहारु

10 थ > ह = तह, मिहुण, थ > ढ = पढम, थ > ठ = मठिहु

11 द > य = केयार, द > उ = पउमनाहु

12 ध > ह = निहाण, सिरिहरु

13 न > ण = वणवालहो, आणद । यह प्रवृत्ति अधिक है ।

14 प > व = उवरि, तव, रूव, दीव

15 फ > व = गुह

16 भ > ह = चदप्पहु

17 म > व = सवण

य > ज = जस, सजोयवि, जोइ

य > इ = अक्खइ, कोइल

19 र > ड = ढ आविउ

र > •लोप = पउ (प्रिय)

20 व > उ = देउ, भाउ

व > अ = तिहुअण

व > य = तिहुयण

व > म = एमइँ

21 ष > छ = छग्गुण

22 श > ह = दह, श > स = दस

23 पुरोगामी समीकरण—कम्म, धम्म

24 पश्चगामी समीकरण—अग्गि, जोग्ग

संयुक्त व्यञ्जन-परिवर्तन

क्त् > त् = मुत्ता, क्त > त्त = रत्तउ
क्ष् > क्ख् = रक्खरा, उक्खित्त
क्ष् > ख्=खतव्वु, खणि, खरीवहि
ज्ञ् > न्=नाणावरण, ज्ञ=ण्ण = विण्णाण
त्य् > च्च् = सच्च
त्स् > च्छ् = वच्छ, उच्छाह
द्य > ज्ज = उज्जोय
ध्य्, ध्व् > ज्झ = मज्झाण
द्र > द् = समतभद्द
[illegible] ट्ठ = दिट्ठ
ष्ठ > ट्ठ = परमेट्ठिए
ष्ण > ण्ह = उण्ह, ष्ण > ण्ह=तन्हा
ष्क > क्ख = पुक्खरद्ध
स्व > स = सहाव
श्री > सिरि = सिरिफल
स्म > म=विभिय
स्त > थ = थम

(2) अधिखण्डात्मक स्वनिम–इसके अन्तर्गत अनुनासिकता, विवृति, सुरलहर, तथा बलाघात आते हैं। चदप्पहचरिउ मे इनमे प्रथम दो के उदाहरण खोजे जा सकते है।

कारक रूप

संज्ञाएं—चदप्पहचरिउ के संज्ञा कारक रूपों का अध्ययन करने पर निम्न-लिखित प्रत्ययो का पता चलता है इनमे मुख्यत प्रथमा, षष्ठी और सप्तमी विभक्तिया शेष रह गई। उकार बहुला प्रकृति है। निर्विभक्तिक पुल्लिग अकारान्त प्रयोग अधिक मिलते हैं।

	एकवचन	बहुवचन
1	उ, ओ (कम मिलता है)	०
2	उ, ०	०
3	ए, एँ, ण	हिं

4 सु, स्सु हो ०	हुं
5 हु, हे	हुँ
6 सु, स्सु, हो	ह
7 इ, ए	हिं

पुल्लिग इकारान्त तथा उकारान्त आदि और स्त्रीलिंग के इकारान्त, उकारान्त आदि के रूप-प्रत्यय कुछ परिवर्तनों के साथ इसी प्रकार लगाये गये हैं।

सर्वनाम

एकवचन	बहुवचन
1 हु,ऊँ, तुम, सो, इहु	जे, मे
2 मइँ, त, तुम, मम	जाइँ, ताइँ, अम्हे
3 मइँ, तेरा, जेरा	अम्हारिहिं, अम्हेहि
5 मइ, ममाहि	अम्हाहितो
6 मज्झु, मम, मोर, तोर तव, तहो, जासु, मम	तुम्हहँ, अम्हहँ, अम्हारा तारा, जारा
7 अम्हम्मि, मए	अम्हासु, ममेसु
8 सबोधन-तुम	

विशेषरा और अव्यय—

1 (i) परिमाणवाचक विशेषरा—जोवडु, तेवडु, केवडु, एवडु
 (ii) गुणवाचक विशेषरा—एहड, जेहड, अम्हारिस, तेहु, एहु, जेहु
 (iii) रीतिवाचक—जेम, केम, जिह, किह

2, अव्यय–(i) स्थानवाचक—एत्थु, जेत्थु, तेत्थु, केत्थु, इह, कह, कहिं, एत्तहिं,
 (ii) समयवचक—जा, जाम, ताम, जाव, ताव,
 (iii) रीतिवाचक—अह, जह, किह, जेम, तेम
 (iv) सबंधवाचक—सहुँ

संख्या वाचक शब्द—

एक्कु, दो, विण्णि, तिउ, तिण्णि चउ, पच, छ, सत्त, अट्ठ, नव, दस, दह, एयारेह, बारह, तेरह, चउदस, पण्णारह, सोलह, सत्तारह, अट्ठारह, वीस, बावीस, पणवीस, अडवीम, तीस, तेतीस, पचास, सउसठ्ठ, बाहत्तरि, पचासी, सय, सहस, लक्ख, कोडि, कोडाकोडि।

संख्या वाचक विशेषण

पढमु, बीयउ, बीऊ, तइउ, चउत्थो, पचमो, छट्ठो, छहो, सत्तमो, अट्ठमो, नवमो, दसमो, दहमो, एयारहमो ।

तद्धितप्रत्यय—अल्ल, आल, आवण, इक्क, इण, इल, उल्ल, एर,

क्रिया रूप

क्रिया रूपो मे वर्तमान और भविष्य वाचक रूप अधिक मिलते हैं । भूतकाल का काम प्राय कृदन्त शब्दो से निकाला गया है । आत्मनेपद और परस्मैपद का भेद भी यहा समाप्त हो गया है । आज्ञार्थक और विध्यर्थक रूप समान हैं । कर्मणि-प्रयोग के रूप भी मिलते है । धातुओ मे अधिक वैविध्य दिखाई नही देता ।

कृदन्त

(i) वर्तमान कृदन्त अंत और माण प्रत्यय जोडकर बनाये गये हैं—जाणंत, पइसत; वट्टमाण, सोहमाण । (ii) भूतकृदन्त मे अ (हुअ, गअ), इअ इउ (मक्खिअ, दिट्ठउ,) तथा इय (कहिय, छडिड्य) प्रत्यय लगते है । (iii) सम्बन्धक कृदन्त–इ (लहि), इउ–(करिउ), इवि (करिवि, पेक्खिवि), ऊण (णमिऊण, मुत्तूण), प्पिणु (करेप्पिणु, मरेप्पिणु), विणु (देविणु) ।

(iv) हेत्वर्थ कृदन्त—गतु, गतूण

(v) विध्यर्थ कृदन्त—करिव्वउ, सहेव्वउं,

आधुनिक भाषाविज्ञान की शेष प्रणालियो के आधार पर भी चंदप्पहचरिउ का भाषिक अध्ययन किया जा सकता है । शब्दसाधक प्रणाली मे पूर्व प्रत्यय, पर प्रत्यय, समास और पुनरुक्ति तथा रूपसाधक प्रणाली मे सज्ञा, विशेषण, लिंगविधान, सर्वनाम, क्रिया, सयुक्तकाल, अव्यय आदि पर विचार किया जाता है । इसी प्रकार रूप स्वनिमिकी और वाक्य विन्यास पर भी चर्चा की जाती है । विस्तार भय से इसे हम फिलहाल यहा छोड दे रहे है ।

पीछे हमने अपभ्र श के भेदो का उल्लेख किया है । उनकी कतिपय विशेषताए चदप्पहचरिउ की भाषा को समझने के लिए यहा उल्लेखनीय हैं । अपभ्र श के भेद क्षेत्रीय आधार पर किये गये हैं । इसलिए विद्वानो ने दक्षिणी, पूर्वी और पश्चिमी ये तीन भेद किये हैं । तगारे के अनुसार ये विशेषताए इस प्रकार हो सकती हैं ।[1]

(1) दक्षिणी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताए

1. यहा ष का छ होता है जबकि अन्यत्र-क्ख या-ख होता है ।

2 यहा अकारान्त पु तृ एकवचन मे एण मिलता है जबकि अन्य त्र यह रूप एकारान्त है।

3 उ पु एक. मे यहा-मि जबकि अन्यत्र-उँ आता है।

4 अन्य ब –न्ति परक होता है जबकि अन्यत्र हिं-परक होता है।

5 साम भवि क्रियापद–स-परक होता है जबकि अन्यत्र-ह-परक, जैसे करिसइ-करिहइ।

(2) पूर्वी अपभ्र श की सामान्य विशेषताए —

(i) क्ष > ख–क्ख = खण, अक्खर

(ii) त्व > तु–त्त = तुहु, तत्त

(iii) द्व > दु = दुआर

(iv) ष, स > श

(v) आदि मे महाप्राण ध्वनिया नही आती।

(vi) निर्विभक्ति सज्ञा पदो का प्रयोग

(3) पश्चिमी अपभ्र श की सामान्य विशेषताए —

1 -हि तथा–हिं दोनो प्रत्यय मिलते हैं।

2 ण और न दोनो मिलते है। पर शब्द के प्रारम्भ मे प्राय ण स्वीकार किया गया है।

3 व और ब की अदला-बदली।

4 अन्त्य स्वर का ह्रस्वीकरण

5 आदि-अनादि स्पर्श व्यजनो का महाप्राण हो जाना।

6 य का ज।

7 स का शेष रहना।

8 मध्यवर्ती क, ग, त, द, च, ज का लोप और ख घ फ भ का प्राय ह हो जाना।

9 म का व मे परिवर्तन।

10 नपु सक लिग की प्राय समाप्ति।

11 कारक विभक्तियो के तीन समूह—(i) प्रथमा, द्वितिया, सम्बोधन, (ii) तृतिया, सप्तमी, और (iii) चतुर्थी, पचमी और षष्ठी।

12 लट् लकार के रूपो मे घिसाव, करउँ, करहु, जैसे रूपो का प्रयोग-बाहुल्य।

13 लोट् लकार मे अ, इ, उकारान्त रूपो का प्रयोग। जैसे कर करि करु।

14 लृट् मे -स-ह-रूप। जैसे करिसइ, करिहइ।

---

1 Historical Grammar of Ahabhransa, 18-19 : हिन्दी के बिकास मे अपभ्र श का योगदान, डॉ नामवरसिंह पृ 52–63

15 भूतकालीन क्रियापद तिङन्त नहीं थे ;

16 तुमुन आदि प्रत्ययो के स्थान पर अरण का प्रयोग ।

17 पूर्वकालिक प्रत्ययो मे–इ,–एप्प-एप्पिणु-एव-एविणु आदि शब्दो का प्रयोग ।

18. स्वार्थिक प्रत्यय उ का प्रयोग बाहुल्य ।

इनमें चंदप्पहुचरिउ की भाषा पश्चिमी अपभ्र श है । राजस्थानी भाषा इससे उद्‌भूत हुई है । इसमे पुरानी राजस्थानी के रूप सरलता पूर्वक देखे जा सकते हैं । कवि भी राजस्थानी ही रहा है इसलिए उसकी भाषा मे ये विशेषताए होना स्वाभाविक है । उदाहरणार्थ—

1 अ को उ हो जाना–पुहरु ।
2. आद्य अ का प्राय सुरक्षित रहना–अच्छइ ।
3 इ का अ अथवा य हो जाना–एत्तिउ ।
4 दीर्घ और ह्रस्व दोनो मे ए, ऐं मिलना ।
5 ए का इ होना–अम्हि, बि ।
6 अनुस्वार और अनुनासिकता ।
7 हिं-हिं, हु के प्रयोगो मे आधिक्य ।

अपभ्र श वस्तुत. हिन्दी का पूर्ववर्ती रूप है जिसे हम भाषा के विकास की सीढियो मे खोज सकते हैं । देशज शब्दो के प्रयोग मे भी इसके रूप सहजता पूर्वक प्राप्त हो सकते हैं । इस भाषा का साहित्य-भण्डार विपुल और समृद्ध रहा है । स्वयभू योगीन्दु और हेमचन्द्र की परम्परा को जीवित रखने वाले अपभ्र श कवियो की प्रतिभा से सैकडो ग्रन्थो का सर्जन हुआ है जो आज भी ग्रन्थ-भण्डारो मे अनदेखे और असुरक्षित–से पडे हुए है । इधर साहित्य और भाषा के विकास मे उसका महत्वपूर्ण योगदान है । शोधार्थी इस दिशा मे भी अब आगे बढ रहे हैं । भाषा विकास की भूली कडियो को खोज निकालने के लिए अपभ्र श साहित्य को प्रकाश मे लाने की महती आवश्यकता है । इससे जनबोली के रूप का क्षेत्रीय प्रयोग प्राचीन साहित्य के अध्ययन से सामने आयेगा और उसके विकास की परिधि अभिव्यक्त हो सकेगी ।

प्रस्तुत ग्रन्थ सन् 1978 मे संपादित होकर तैयार हो गया था । श्रद्धेय गुरुवर डॉ दरबारीलाल कोठिया ने इसे वीर सेवा मन्दिर ट्रस्ट से प्रकाशित करने का विचार

व्यक्त किया जिसे मैंने स्वीकार कर लिया। तदर्थ हम उनकी साहित्यिक लगन के प्रति विनयावनत हैं। इधर शिक्षा और संस्कृति मन्त्रालय ने भी इसके प्रकाशन की ओर रुचि दिखाई है। अपभ्रंश साहित्य के प्रति बढते हुए अनुराग का का यह फल है। इस मूल्यवान् साहित्य के प्रकाशन की ओर हमारा ध्यान अधिक आकृष्ट होना चाहिए।

मुद्रण की अशुद्धियाँ पाठक के लिए खलेगी, यह स्वाभाविक है। कुछ मेरा प्रवास और कुछ प्रेस की असुविधा, दोनो कारणो से मुद्रण पर पूरा ध्यान नही दिया जा सका। अनुनासिक तथा ह्रस्व एकार, ओकार का चिह्न भी नही दिया जा सका। इसका हमे खेद है। विस्तार के भय से अनुवाद को हमने शब्दश न रखकर भावात्मक रखा है।

जयपुर का प्रवास, लगता है, अब समाप्ति की ओर आ रहा है। पारिवारिक परिस्थितियाँ जयपुर छोडने के लिए विवश कर रही हैं। नागपुर से इतनी दूर पारिवारिक उत्तरदायित्व से विमुख-सा होकर रहना न तो सभव है और न उपयुक्त ही। जैन संस्कृति की सेवा के लिए जैन केन्द्र का अधिभार स्वीकार किया था, पर उसका समुचित विकास नही कर सका। हर संस्थान की एक सीमा होती है। साधनो, परिस्थितियो और अन्तर्मन से किये गये प्रयत्नो पर उसका विकास निर्भर-करता है। यह विकास मै सारे प्रयत्न करने के बावजूद नही कर सका, इसका हमे अफसोस है। आशा है समाज इस पर विशेष ध्यान देगा। स्वार्थ का दीमक संस्थान को खाये बिना नहीं रहता। त्याग किये बिना संस्थान का निर्माण नहीं होता। और ईमानदार व्यक्ति को जीवित रहने नही दिया जाता। एसी स्थिति मे प्रेम-सहयोग के बिना किसी भी केन्द्र का समुचित विकास करना सम्भव नही हो पाता।

प्राच्य ग्रन्थो का संपादन-प्रकाशन एक ज्ञान-यज्ञ है। इस ज्ञान-यज्ञ मे जिन्होने भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से हमारा सहयोग किया है, उनके प्रति कृतज्ञता व्यक्त करता हूँ। विशेष रूप से प्रो माधव रणदिवे सातारा का सहयोग उल्लेखनीय है जिन्होने कुछ महत्वपूर्ण सुझाव दिये है। प्रस्तुत ग्रन्थ का प्रकाशन इस प्रवास मे हो गया, यह प्रसन्नता का विषय है।

पी–3, विश्वविद्यालय निवास
जयपुर–302004
न्यू एक्सटेंशन एरिया
सदर नागपुर–440001

दि 12–8–1985

भागचन्द जैन भास्कर
प्रोफेसर एव निदेशक,
जैन अनुशीलन केन्द्र,
राजस्थान विश्वविद्यालय
जयपुर

ॐ णमो सुवदेवदाए

सिरिजसकित्तिविरइउ

चंदप्पहचरिउ

पढमो संधि

(1)

णमिऊण[1] विमल[2] केवललच्छी सव्वगदिण्णपरिरम, ।
लोयालोयपयासं, चदप्पह सामिय सिरसा ।।1।।

तिक्कालवट्टमाणं[3], पच वि परमेट्ठिए तिसुद्धो हू ।
तह णमिऊण[1] भणिस्स, चदप्पहसामिणो चरिय ।।2।।

जिणगिरिगुहणिग्गय[4], सिवपहसगय, सरसइसरिसुहकारिणिय[5] ।
महु होउ पसण्णिय गुणहरवण्णिय[6], तिहुवणजणमणहारिणिय ।।
हु बढकुलणहयलि[7] पुप्फयत, बहु देउ कुमरसिह वि[8] महत[9] ।
तहो सुउ णिम्मलु[10] गुणगणविसालु[11] सुपसिद्धउ पभणइ सिद्धपालु[12] ।।
जसकित्तिविबुह[13] करि तुह्[14] पसाउ, महु पूरहि पाइयकव्वभाउ ।।

---

1 क, ष, नमिऊण.
2. क, बिमल०,
3. क, ख, वड्ढमाण,
4. क, ष, ०निग्गय,
5 ख कारणीय, ष कारणिय,
6. गुणहिर०,
7 क ष ०नहयलि,
8 क बि,
9 ख कुमरसिहहो (?) वे महत,
10. ख णिम्मल,
11. क. ० बिसालु,
12. =शांतोदांत इत्यर्थः,
13 घ ० विबुह०,
14 ष. तुहु ,

त णिसुणिवि[1] सो भासेइ-मदु, पगलु तोडेइ केम चदु ॥
इह सुइ बहु गणहर णाणवत, जिणवयण[2] रसायणु वित्थरत ॥
गणिकु दकु दवच्छल्लगुणु,[3], को वण्णिउ [4] सक्कइ इयरु[5] जणु[6] ॥
कलिकालि जेण मसिलिहिउ णामु, सइ[7] दिट्ठउ केवलऽणत धामु ॥
णामि[8] समतभद्द वि मुणिदु, अइणिम्मलु ण[9] पुण्णिमहिं[10] चदु ॥
जिउ[11] रजिउ राया रुद्दकोडि[12], जिणथुत्तिमित्ति[13] सिवपिंडिफोडि ॥
णीहरिउ[14] बिबु चदप्पहासु उज्जोय तउ फुडु दसदिसासु ॥
अकलकु णाइ[15] पच्चक्खु णाणु,[16] जिं तारादेविहि[17] दलिउ[18] माणु ॥
उज्जालिउ सासणु जय पसिद्ध[19], णिद्धाडिवि[20] वल्लिय सयलबुद्ध ॥
सिरिदेवणदि मुणि[21] बहु पहाउ, जसु णाम गहणि णासेइ[22] पाउ ॥
जसु पुज्जिय अबाईए पाय, सभरणमित्ति तक्खणि[23] ण आय ॥
जिणमेण सिद्धसेण वि[24] भयत, परवाइदप्पभजणकयत ॥
इय पमुहहँ जाहि वाणीविलासु,[25] तहि[26] अम्हह कह होई[27] पयासु ॥

घत्ता— जहि [28] थुणइ[29] फणीसरु,बहुजीहाहरु, अह सहसक्खु णिरिक्खइ[30] ।
तहि परु जिणचरणइ, सिवसुहकरणइ, किह सथुणइ सभिक्खइ[31] ॥1॥

1 क घ निसुणिवि,
2 क जिणबयण०,
3 क, ख घ गुणू,
4. क ख घ ०वण्णाण,
5 क ख घ इयर,
6 क ख घ जण,
7 ख घ सइ,
8 क ख घ नामि,
9 क ख घ अइनिम्मलु न,
10 ख पुणमहिं (?)
11 ख घ जि,
12 = शिवकोटि इत्यर्थ,
13 जिनस्तुतिमात्रेण
14 क. ख नीहरिउ,
15 क नाइ, ख घ नाइ,
16 क ख घ नाणु
17 क ख देविहि,
18 घ मलिउ,
19, ख. घ पसिद्ध,
20 क निद्धाडेवि, ख. घ निद्धाडिवि,
21 क ख घ नासेइ,
22 ख घ. तक्खणि,
23 क ख बि
24 क बाणी०
25 ख घ तहिं अम्हह,
26 ग. होइ, घ होही,
27 ख घ जहिं,
28 ख ग थुणई,
29 क ख. घ निरिक्खइ
30 ख. घ. तहिं,
31 ख घ करणइ
32 वाछयतीत्यर्थं

(2)

पुणु तह वि करेव्वउ कम्मझाणु, ज जिणभासिउ भव्वजलहि[1] जाणु ।
अब्भत्थमि सज्जणगुणमहत, परदोसगहणि मूई हवत ।।
ससि कवलिज्जइ सिही सुएण[2], तहो मुहि[3] वरिसइ[4] धारा[+] सएण ।
छिण्णउ घट्ठउ दट्ठउ जणेण, चदणु तं वासइ सोरहेण ।
जइ कड्ढिउ महिउ सो दुद्धरसु[5], तो णेहु णहवइ जइवइ विरसु[6] ।
जइ मुत्ताहलु विद्धउ जणेण, तो हवइ गुणालउ तक्खणेण ।
जइ सिल अप्फालिय सुहुमवासु, तो अइउज्जलु हुइ सुक्खफासु ।
जइ खडिउ ताडिउ दाहु दिण्णु, तहा मेम्मि* जियाइ ण जाउ अण्णु ।
जइ[7] णिक्कारणु दुज्जणे णडिउ सज्जणु तहा वि गुणणिव्वडिउ ।

घत्ता–जो सपइ दोसपरहु असेस, अणुहुत वि गुण वित्थरइ ।
परकारणि देहु, वहुय सणेहु, लीलए[8] तिणु जिम परिहरइ ।।2।।

(3)

दुज्जणु पुणु इ गालह[9] सरिसु दुद्धं पोइउ कालउ फरसु ।
सम्माणिउ[10] उत्तिउ[11] उल्लइ[12], धिउ तत्तउ जलविदुहि जलइ[13] ।

---

1 ख घ जलहि ।
2 राहुणा इत्यर्थ ।
3 क ख ग मणहि ।
4. क ख वरिसइ कुत्रचित 'व' इत्यस्य स्थाने 'ब', 'व' इत्यस्य स्थाने 'ब' वा प्राप्तम् । सदर्भानुसारेण तन्नियत कृतम् । अतएव इत प्रभृति एषा पाठान्तराणा प्रथक्त्वेन उल्लेख न कृतम् । तथैव 'न' इत्यस्यापि स्थाने 'ण' पाठभेदो न दत्तोऽत्र ।
5 क ख घ. दुद्धरसू ।
6 क ख घ विस्सू ।
7. क जय
8 ख घ लीलइ,
+1 – ख घ धाराम,
*क ख ग ताहेमि ।
9 ख घ इगालह ।
10 घ सम्माणिउ ।
11 घ उन्निउ ।
12 क ख उल्लइ ।
13 क. ख जलई ।

मुणि दोसु णियच्छइ पिसुणजणु[1], रयणि दिणेसु जह घूयगणु ।
मच्छियकाया[2] तह पिसुणजणु, तहि[4] अहि लसति जहि होइ वणु ।
इय बहु अउ णिक्कारणु[5] पिसुणु, महु पुणु पडित्तणु कवणु गुणु[6] ।
लक्खणु महु अ गि वि कहु वि णत्थि, अच्छउ[7] ज थक्कउ सद्द सत्थि ।
छंदउ ण उ कासु वि मँइ कयउ, णिरलंकारहु इहु भउ गयउ ।
सत्तक्कउ मइ[7] भोयणु मुणिउ, अहियाणउ गुरुदेवहो सुणिउ ।
विग्गहु[8] महु परबुद्धिए समाणु, सघि वि सहु[9] मूढत्ति पहाणु ।
तहु वि हु मई[10] घिट्ठत्त गुणेण, अइजिणभत्तिय[11] गहलिय मणेण ।
आरभिय कह मूढत्तणेण, अवगण्णिय दुज्जणहासएण ।
जे णिरु धम्मिय ते इह सरतु, जे पडिय ते दूरेण थतु ।
घत्ता—सकइत्तणमाणें, गव्वुत्ताणे, तहु[12] जिणचरिउ[13] कहिज्जइ ।
इह कारणि भवियहँ, भवदुहतवियहँ धम्मझाणु रइज्जइ ॥3॥

(4)

दो दो रवि ससि विप्फुरियदीउ, इत्यत्थि पसिद्धउ जबुदीउ ।
सुद्दसण तसु मज्झत्थ मेरु । जिणपुज्ज[14] कज्जि[15] फुल्लिय णमेरू ।
जोयण सहु सकिउ जासु कदु, सहसूणु[16] लक्खु[22] उड्ढउ सकदु ॥
जोयण दस सहसिहि जो विसालु, सव्वह गिरिरायहृ[19] सामि सालु ।
सासउ णिक्कवु सुवण्णमउ, बहु बिहरममाण सुवण्णमउ ॥
परिणय दिग्गइ पायडिय सारु, विक्खित्त पवण णिज्झरउ सारु ॥

---

1 क, ख ०जण 2 मक्षिकानां काया, मक्षिका काश्च का वा
3. क. ख. घ ०गण, रत्न सूर्ययोरुपरि दोष करोति
4. घ. तहि 5 क ख. घ ०पिसुण
6. क. ख भण, घ गुण 7 ख घ अच्छउ
8. घ मइ 9 =कलह इत्यर्थोऽपि
10 घ सहु 11 घ. अइ
12. क.ख ग ०भत्तिए 13. घ णवि
14 चंदप्रभस्य 15 ख पुज्जि
16. शब्दोऽय नास्ति 17. क. सहसूण
18. ख लक्ख 19 क ग गिरिरायहृ

मणिकूड तेय जिय रवि किरणु, मणिसिलतलि वागर किय किरणु[1] ।
सुरतरु मडवि वीस मिय सुरु, वणयरकुलसेविय ताउ सुरु[2] ।
मयणहियषसुरहिय दिसासु, सुररा सुप्पाइ य सुरइ[3] सासु ।
मदारगलियमयरदवासु, पुञ्झिणहि सपज्जइ तित्थुवासु ।

घत्ता—सोलह जिण हम्महि[4], चउदिसुरम्महि[5], जो मंडिउ चउण्हाण सिलु ।
चउवण्ण वित्थारहि[6], चउसुरणियरिहि[7], जहि[8] वदिउ जिणण्हवणु जलु ॥

(5)

तउ पुव्वहि[9] पुव्वविदेहु अत्थि, जहि होंत भविय सिवणयरपथि ।
तव यरणि तुरगमि आरुहेवि[10], रयणत्तउ दिट्ठु[11] सबलु करेवि ।
ता सुक्कभाण पयडिहि चडत, केवल सिवपोलिहि थीसमत ।
तहि मगलवइ णामेण देसु, ण लच्छिहि केरउ दिव्ववेसु ।
जहि सरवराइं ण अमियकुड, तिणु[12] सुलहइ[13] जहि उच्छु अहलड ।
तिरु णिहुणिउ[14] कप्पद्दमह थलु, जें हक्कारेवि पंथियह फलु ।
दिण्णउ[15] दुमेहि[16] कीरहि[17] रवेण, इहु महुरु महुरु घोसण परेण।
जहि मालिहि मजरि कणभरेण, विण्णमिय स चुंबिय अलिबिडेण ।
सरवरह पालि जहि हसउलु, पणिहारहि गइ सिक्खणु कुसलु ।

---

1. =माया सँग्राम प्रतिबिबेत वा, 2. ख सुरू,
3 ख सुरय = श्वास॰ 4 ख. हम्महिं,
5 ख. रम्महिं, 6 ख. वित्थारहिं,
7 ख. ॰रिहिं, 8 ख. जहिं,
9 ख. पुव्वहिं, 10 ख. धरुहेवि,
11. ख. दिट्ठु, 12 ख. तणु,
13 ख सुलहइ, 14. ख. निसनिहुणिउ,
15. ख दिण्णउ, 16. ख. दुमेहिं,
17. ख. कीरहिं,

केयारपालिरक्खणपराहि, अहि मुद्धयाहिं[1] गहवइसुयाहि ।
कुवि घुत्तु कीरु ल्हिक्कइ भणइ[2] णिय पइरउत्ति जह सा मुणइ[3] ।
इम बंचिवि जहि केयार खट्ठु, कीरे पवचु किउ अइ रुणिट्ठु ।
घत्ता–पह सइदलु[4], णवपरिमलु, मिल्हिवि भमरु मुवगउ[5] ।
सरपालिहि, गोवालिहि[6], चुबइ मुहुमहु चगउ ।।5।।

(6)

जहि गामइ धण धण णुण्णयाइ, गहवइलच्छिपरिपुण्णयाइ ।
जहि सेर हीउ[7] थिर थोरगत्त, मसिलिपिय ण पीऊसपत्त ।
जहि गोवलाइ सिअ बहलपिंडु, ण देसकित्ति पसरिय पयडु
केलासकाइ[8] जहि वसहणाह[9], ण देहज[10] सिसिअ[11] हरिवराह ।
अट्ठारह जहि रामिउ कणाहँ, खलिखलि दीसहि पोसिय जणाहँ ।
ण पेक्खच्छेउ[12] विग्गहि पवरु, सचिल्लिउ गिरिरायह सिविरु ।
जहि चदकनि थल सारणिहि, भिम्हिवि सावणु णिसि तीरणिहि ।
जहि सठत्थ वि णु छविय दक्ख, मडव सीअल णिम्मुक्करक्ख ।
घत्ता– तहु[13] देसहु सुहवासहु, मज्झिणयरु मणिसचउ[14] ।
ज पेच्छिवि, मणिरावछिवि[15], सक्कु वि करइ पवचउ ।।6।।

(7)

जहि गयण सरिसु सिय फलिह सालु[7], अइतु गतमणहि[17] जो विसालु ।
जसु उप्परि मुणइ[18] अम्ण पहु, गयणत्थि[19] तित्थु अप्फलय रहु[20] ।

---

1 ख सुद्ध०, 2 ख भणइ,
3 =निज पति शब्द इव शब्द करोति शुक, 4 ख सयदलु,
5 ख मुअगउ, 6 ख ० हि,
7 महिषीत्यर्थ 8 ख ०काय
9 ख नाह, 10. ख देसज,
11 ख सेसिय, 12 पक्ख०,
13. ख तहो, 14 = रत्नसचयपुर इत्यर्थ,
15 ख ०वडिवि, 16 क. ससालु,
17 ख ग तमर्गाहि, 18 ख मसुणइ,
19 =गगनस्थित शाले 20 रथ,

जहिं चंदसाल पगणि पसुत्त[1], णो लक्खिय राहुहि हरिणनेत्त ।
तम्मुहिं पडिचदहु करइ भति, पिच्छिवि सबलं विय गहणा हुंति[2] ।
जइ णववाला सयणि परम्मुहं, तु वि मणिभित्ति दइय ठिय सम्मुहं ।
जासु परम्मुहु सोतहे ग्रग्गइ, मीलिय णयणिहि मुद्धा जग्गइ ।
पेच्छिवि चदपडिम रयणगणि, पायाहि[3] णिहणइ ग्रहिणव सइरणि ।
जहिं तुरगेह सिर सठियाइ[4], मिहुणइँ रइरस सम कठियाइ[5] ।
सुहसेवइ णहवाहिणि[6] हिं वाउ, फुल्लारविंद कयत्तु ग्राउ ।
जहिं इंदनीलमणि[7] सयण हरे णीले मुग्र सामल वण्णि करे ।
ग्रावि वि गेहिणि ग्रग्गइ वइट्ठु, कता लिग्गिग्र पडिबहु ण दिट्ठु ।

घत्ता–तहि पुरवरि[8], मणिमय हरि, दुत्थिउ घणइ समाणउ ।
ग्रह सुक्खिउ, जइ पिक्खिउ, सो सक्कह[9] सम ठाणउ ॥7॥

(8)

जहिं कालायरु बहु धूम भरु, उच्छलइ गयणि ण तम सिविरु ।
ग्रणवरउ वेरुमणि सभरेवि, चल्लिउ रवि उप्परि उच्छरेवि ।
जहिं तरुणिहि ग्रच्छ कपोलविदि, चदउ पडिबिंबिउ ते ग्ररु दि ।
लछणहु लच्छिपोयडइ[10] मडत्ति, मलिणा गउण सारग[11] कित्ति ।
जहिं दाण मणोरह[12] सज्जणाह, ण पहुव्वहि विणु ग्रत्थिय[13]जणाहं ।
जहिं जुण्हसरिस ग्रइसण्हचीर[14] कोमल सीहल सुहइग्र सरीर[15] ।
जहिं दड जुत्तु परिछत्तु होइ, ग्रन्नि हुउ विणु मेसे णत्थि कोइ ।
घासइ चदणु पुच्छयह बंधु[16], ग्रण्णाहु पहु कासु वि दुहपबधु ।

घत्ता–घट्टत्तणु, तरलत्तणु, तियथण मयणाह दीसइ ।
गुणवतहु, तहिं संतहु, दोसु ण ग्रणिपईसइ ॥8॥

---

1 क पसिस
2 = राहु न भाति
3 क पायाहिं
4 ख ०याइं
5 ख कट्ठियाइ, पवन इत्यर्थ
6 – ग्राकाशगंगा इत्यर्थः
7 ख ०मणे
8 ख पुरवरे
9 ख ग सक्कह
10 ख लछलहुलढि
11 = नारायण इत्यर्थ
12 ख मणोपह
13. ख. ग्रच्छियय क
14 ख ०वीर
15. वेद इत्यर्थ
16 ख बधु

(9)

तहि कयवण्णहु णामेण राउ, ज पिच्छिवि सुरवइ हुउ विराउ[1] ।
जसु भमइ कित्ति भुवण तरम्मि, थेरिव[2] अइ सकडि नियघरम्मि ।
जसु तेयजलणि णदी वियगु[3], जलनिहि सलिलट्ठिउ सिरि भुवगु[4] ।
आइच्चु[5] वि दिणि दिणि देइ झप, तसे अतत्तु जय जणिय कंप ।
सक्कु वि णिप्पायउ पढमु तासु, अब्भास कसणि पडिमह पयासु ।
रूवाह कारिउ कामवीरु, किउ तासु अग मलिणहु सरीरु ।
तहु णयणुप्पलि णिवसेइ लच्छि, जा पुव्ववसिय हरि पिहुलवच्छि ।
ते कारणि जहिं जहिं देइ दिट्ठि, तहिं तहिं[6] ऊहट्टय दुत्थ सिट्ठि ।
जसु सगरि सम्महु[8] घणुहु होइ, णहु पुणु विचिति बडि बक्खु कोइ ।
मुहि णिवसइ सरसइ जासु निच्चु, पइ मित्तु लहइ कहि तहि[10] असच्चु ।

घत्ता—इह तिहुयणि, बहुगुणजणि, तसु पडिच्छडु[11] ण दीसइ ।
अह होसइ, गुणलेसइ, जसु बाईस रिसी सइ ॥9॥

(10)

जसु गुण गायहिं सुक्खामिणीउ, रोमचतुद्द कचुअ तणीउ ।
जसु रिउ तिय सिरु णिक्केसुजाउ सव्वउ इहु हुउ सगर पहाउ ।
गहणिवि रिऊण[12] जसु णिय बिलासु, सपत्तउ सत्तमखणि णिवासु ।
सुद्ध बरूप हिरणि पिहुलु दीहु, मुत्ता हरणउ कय हरि हरीहु ।
इम भु जिय सिरिफलु निखसेसु, काणणि[13] वण रज्जहु कुवि विसेसु ।
जसु पवर गुणाव भड भडि[14], दुम्मा इय ण[15] करहु करडि ।
तसु कणयमाल णामेण कत, लावण्ण पुण्ण गुणसीलवत ।

1 क बि०
2 = वृद्धा कीर्ति
3. क बि
4 = धरणेन्द्र विप्लुर्वा
5. = सूर्य
6. क तहि तहि
7 ख उह
8. ख समुहं
9 ख पय
10. ख तहिं
11 ख ०अंडु
12 = रिपून्, गृहीत्वा
13 ख कणणि
14. क ख भडि
15 ख. न.

सोहग्गभारपरिपूरि अग, मुहगब्भामय जीविय अराग ।
अहि वयरण रणयरण जियदुम्मरणोहॅ, चदहु सारगहु दुहु जरणाहॅ ।
मित्तत्तणु जायउ समदुहारण, रिगरु दिवसुरत्ति भमडिय रणहाण ।
रिगयरूव[1] गव्वभरकोवरणाहॅ, अवरुप्परुदोह वि लोयरणाह ।
जुज्झतहॅ अतरि गडइ वसु, रणासा बसउ ठिउ बहु पससु ।।

।। घत्ता ।। सुरकामिरिण, रणरभामिरिण, तहिं सरिसी किह होही[2] ।
ज[3] पिक्खवि, बउ लक्खवि, लच्छिवि रिगयमरिण मोहि ।।10।।

(11)

अह अवरोप्पर पिम्मभरट्टहॅ, पचिंदियसुह जोइ पयट्टहॅ ।
समारिय सुइरमि मज्झंतहॅ, जाइ कालु बहु केलि करतहॅ ।
अह एक्क समइ[4] बहुलक्खरणाल, गब्भॅ[5] सभाविय करणयमाल ।
सालसु सलोणु हुउ पडुदेहु, अइ धवलु बहलु रण सरइ मेउ ।
सिइ मुहु पडुरु घरण हरु विहाइ, भमरकिउ सुक्खरि कु भुखाइ ।
रण अमिय कलस गीलुप्पलास, रण दतकु प[6] गवलिहि पयास ।
बलिरणोयरेण किउ तिबलि भगु, कालें जिप्पइ धुउ तमि पयगु ।
तहि सपण्णइ मरिण दोहलाइइ,[7] जय साहाररिग कय सोहलाइ ।
रणवमासिहि पुण्णिहि जरिणउ पुत्तु, बहु लक्खरण वजरण फुरियगत्तु ।
रण धम्म अत्थ कामह रिगहाणु, रण पवरवेरि काररण किसारणु ।
रण उग्गउ कुलरणहि सहसभाणु, रण पिसुरणवस कट्टरण किवाणु ।
तोसें उच्छल्लिउ पुहवि इदु, चदुग्गमि रण खुब्भिउ समुद्दु ।
सिरि पउमनाहु रणामेरण उत्तु, सो सिसु ससि जिम वड्ढइ तुरतु ।
ता रिगम्मल कलसिक्खरिग पउत्तु, स सवलु वि जारिगउ ते[9] रिगरुत्तु ।
कालें सो तरुरणत्तरणहु पत्तु, उम्मूलिउ रण तूलियहि[10] चित्तु ।

1 ख रिगयत्तव,
2 ख कह होही,
3. क आ.,
4 ख. समए.,
5. ख गब्भे,
6 = अविन ,
7 ख. लाइ
8 ख विजारिगह
9. ख त ,
10 क तूलयह = निज रूपगर्वकथकानां ।

।। घत्ता ।। तरुणत्तणि सुन्हुत्तणि, सोमय, दोसिहि[1] चत्तउ ।
जरयतहि[2], सुमहनह, तरुणु वि गुणि[3] सपत्तउ ।।11।।

(12)

एक्कहि[4] दिणि[5] णरवइ कणयपहु, ठिउचद सालि[6] सिरि तुच्छ सहु ।
दिट्ठइ पल्लिले[7] गोहण सरत, पउ पीउ पीउ तडिऊ[8] सरत ।
ता इक्कु वुड्ढ पसु किमियगत्तु, दुद्दम कद्दम उत्तारि खुत्तु ।
णिक्कलि वि ण सक्कइ जलु विदूरि, उप्परि काया ठिय वणह पूरि ।
बइ सिवि णहु सक्कइ हिट्ठु थाणु, संघडिउ पुव्वकम्मह विहाणु ।
पाण।ण जति बल्लह करक, मुक्कलिय वि ण दुक्कालरक ।
णरवइ अवलोयवि[10] त विसण्णु, विततउ णिव्वे यहु पवण्णु ।
हाहा समारिहि इह अवत्थु, ते घण्ण घण्ण जे सिवपयत्थु ।
सुहु सलिलु ण पावइ विसयतत्तु, णियविग्घकम्मपके ण खुत्तु ।
तह उवरि गोयका एहि खद्धु, इय जतु भाउ खु टेण विद्धु ।

।। घत्ता ।। अम्हारिसु, विसयालसु, तरुणि वडि सरस सत्तउ ।
णियकम्मे, मिढम्मे, कट्टिवि तम विलिखित्तउ[11] ।।12।।

(13)

ससारि सुक्खु णहु कह वि अत्थि, सुरणर पसु णरयह भमियपथि ।
खणि होइ रज्जु खणि सिरकभुज्जु, खणि सग्ग[12] नीडु खलि असुइ कीडु ।
खणि काणयगत्तु खणि कोढवत्तु, खणि सयलणाहु खणि जुयल बाहु[13] ।
खणि हरिपयासु खणि पुह विदासु, खणि गव्वमेरु खणि दीणफेरु ।
खणि कोडिसूरु खणि इक्क[14] भीरु, खणि कप्परुक्खु खणि-भमिय भिक्खु ।
खणि सयलसुक्खु खणि णारयदुक्खु, खणि जसनिहाणु खणि पाउपाणु ।

---

1 ख दोसहि, 2 ख जरयतह,
3 ख गुण, 4 ख एक्कहि,
5 ख दिण, 6 = गृहे,
7 = तुच्छ जलसरोवर 8 क तडिउ, = सरोवरि
9 ख मुक्कल्लिय 10 क अवलोइवि
11 क लिघित्तउ 12 ग सग्ग
13 = हाथसंकुचित 14 ख पक्क ।

खणि रयणादाणि खणि सिवहु आसि, खणि घुसिण रणु खणि किमिउ लगु ।
खणि सुत्तु त्तु लिखणि छु द्ध सूलि खणि पियरमतु खणि विरहवतु ।
खणि मरण कुक्कु खणिपाण मुक्कु, ... ।

।। घत्ता ।। खणि मारहो जय सारहो, रूवें हसिवि चमक्कइ ।
खणि रकहु, बहुसकहु, सरिसउ होउ ण सक्कइ ।।13।।

(14)

ससार भावि समतु जतु, दुक्खुवि मिण्णइ सुहु ठाणि थतु ।
कडूलहु जह आइ अग्गिताउ[1], खणु सुहु पुणु दारणु दुक्ख ठाउ ।
अमुणतउ वोहि सहाव सुक्खु, णिय मोहे[2] माणुसु चम्मचक्खु ।
ज[3] वज्जणोउ त अहिल सेइ, ज[3] कज्जु ताहि दूरेंत सेइ ।
जह[4] कोइ[5] बालु मट्टियहि[6] गिद्धु, सक्कर[7] रसु मिल्लइ[8] अइसणिद्धु ।
जह वज्झउ[9] जतउ वज्जणाणि[10], पइ पइ आसण्णिय आउहाणि ।
तह दिणि दिणि आमण्णु मरणु, लोयहु सपज्जइ दुट्टयरणु ।
खग मित्तु हु अज्जइ सुहह मति, अग्गइ तो गरुडु दुट्ठ पति ।
जह नक्खणि[11] कट्ठह बलिय काइ, मिगारु करिवि सइ[12] लच्छिगणाइ ।[13]
जहि तहि सुहु पयजतीहि[14] होइ, तह मयलहु विणु धम्मेण जोइ ।
णारमिवु लग्गइ[14] कामिणि करकि, अप्पउ णिब्बोलइ पावपकि ।
सो णत्थि जतु जो महु ण[15] ताउ, मो विहु णत्थि[16] व्वि राजो[17] ण भाउ
सो णत्थि[18] जो ण[19] हुउ सुउ कलत्तु, सो णत्थि जो ण हुउ सत्तु मित्तु ।
तहि इह किज्जउ किरकेणु णेहु, भवि भवि उप्पज्जइ[18] अण्णुदेहु ।

---

1 क अग्गि०
2 ख मोहु
3 क जें,
4 ख जह,
5 ख. कोवि
6 ख. वालुमदियहि
7 ख अक्कर,
8 मिल्हइ,
9 ख ग विज्झहु,
10 विज्झ
11 ख भक्खणि,
12 ख. सइ,
13 ख ०गाइ
14 ख हिं,
15 ख लग्गउ,
16. क ०न,
17 ख तहि,
18 ख उपज्जइ ।

॥ घत्ता ॥ जिणवयणइ, भवदमणइ, मेल्हिवि अवरु ण मल्लउ ।
तहि[1] उत्तउ, दयवंतउ, किज्जइ चरिउ बहिल्लउ ॥14॥

(15)

इय चिंतिवि णिद्धारियउ कज्जु लइ देमि सुपुत्तहु एहु रज्जु ।
इय चिंतिवि कुक्किउ पउमणाहु, सुखरण करसारित्थ ब हु ।
परिपुण्णराय लक्खण सणाहु, गभीरु णाइ[2] बाहिरिणिहि णाहु ।
हक्कारेवि[3]स सामंत मंति, जे रज्ज महाभरि णिब्बहंति ।
उब्बेसि वि णदणु रायवीढि, बहुसेय रयण किरणावलीढि ।
ढालिय जलऊ रिय हेमकु भ, उब्भिय[4] मणि तोरण केलि खभ ।
सइदइ लेवि पडिहारु हूउ, किउ रायलोउ सयलु वि विणीउ ।
आउच्छिउ णदणु बाह णयणु,[+1] सइ सचिल्लउ किर जाम गहणु ।
ता भणइ मति जोडे विहत्थ, सुणि एकु वयणु सामिय कयत्थ ।
कि कारणि यहु मिल्हेवि रज्जु, पारभिउ णाहे गहिल कज्जु ।
सो णत्थि जीउ देहहु[5] परक्खु,[6] जो मुक्के देहि लहइ मुक्खु ।
जीवहो देहहो णहु कोइ भेउ, इम्विज पइमिरि मच्छिद देउ ।
इय णिसुणिवि णरवइ मुणिय तच्चु पभणइ[7] होणि सुणहि मति सच्चु ।
इह[8] देहमज्झि वहु णाण सत्ति, विक्कप्प जालि कहु धडइ जुत्ति ।
सासय वेयणु अप्पा मुणिज्ज, सुहदुह वेयणु मा मति किज्ज ।
जइ जीवहो देहहु इक्कु भाउ, तो कि णहु मडयहु पीडलाउ ॥

॥ घत्ता ॥ तव चरणे, बयधरणे, सो ससारहु मुच्चइ ।
घर सरणें, दुह करणे सो भव भमणइ सचइ ॥15॥

(16)

इय करेवि[10] णिरुत्तरु पुहवि बाहु[9], सचल्लिउ वणि चरणिक्कगाहु ।
वणि जतु जतु सो पत्तु तित्थु, सिरिहरु णामेण मुणिदु जित्थु ।

1 ख. तहि,
2. ख णाइ,
3 ख. हक्कारिवि,
4 ख. उभिय,
5 ख. देह हो,
6. ख. रुक्खु,
7. ख. पभणइ,
8 ख इय,
9. विबाहु,
10 ग करिवि ।
+1 = अश्रु प्रवाह

तहु चरणमूलि णिव्वडिय सिक्ख' तिविहेण लइय जिणणाह दिक्ख ।
दूनहि णरवइ सिरिपोमणाह, णिय जणण विरुहि[1] णिरु दुम्मणाहु ।[2]
कयवय दिणाइ[3] ठिउ सोयजुत्तु, मतिहि पडिबोहिवि किउ सुचित्तु ।
जो णायवतु सो परु विमित्तु, जो अण्णायउ सो सुउ वि सत्तु ।
इम मेयणि पालइ खत्ति धम्मि, बारइ जणवउ जतउ कुकम्मि ।
प्रवगाहिय चारि विराय विज्ज[4], छग्गुणविहिणा[5] किय सयल कज्ज ।
सत्तिहि[6] तिहिं[7] जुत्तउ उग्गइवतु, पचगु[8] करइ सो गूढ मतु ।
अरि छव्वग्गु वि त पढमु जिणिउ, ण वि कोइ सत्तु तं कण्णि सुणिउ[9] ।
सत्त गुरज्जु इम सो करेइ, सक्कुवि णहु सरिउहु प्रणुहरेइ ।

।।। घत्ता ।। तहो रायहो, महितायहो, सरिसउ प्रवरु जु[11] भासइ[12] ।
सो माणउ, गुण जाणउ, णियमइ मोहे णासइ ।।16।।

इय सिरिचदप्पहचरिए-महाकय जसकित्ति विरइए ।
महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणो, सिरिपउमणाहराय पट्ट बधो ।
णाम पढमो सधि समत्तो ।।छ।। ग्र थ 162

1. ख. विरहि 2 ०णाहु
3. ख. दिणाइ,
4. = प्रान्वीक्षिकी त्रयीवार्ता दडनीति इत्यर्थ
5. = सधि, विग्रह, यान, प्रासन, द्वैध, सश्रयश्चेति ।
6. ख. सवित्त, स षड्विधा-परिवार सरक्षण, विवेक पूर्वक कार्य सचालन, स्वरक्षण, प्रजारक्षण, दुष्टनिग्रह शिष्टपुरस्कारश्चेति,
7. प्रभुशक्ति, उत्साह शक्ति, मत्रशक्तिश्चेति
8 प्रान्वीक्षिकी, त्रयी, वार्ता दण्डनीतिश्च
9 ख सुणिउ
10 =स्वामी, प्रमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्रश्च,
11 प्रव-रज्जु
12. ख. भासइ

बीउ संधि

(1)

जिरा वयराकमलपरिमल-सकमरणा पुव्वलद्धसोहण्णा ।
गणहरगणमगहिया,[1] सरस्सई हवउ सुपसण्णा ॥छ॥

जिण भत्तउ, गुणरत्तउ, सयलभुवण चिंतामणि ।
जा अच्छइ, सुहु इच्छइ, ता णिम्मलि एक्कहिं[2] दिणे ॥1॥

ता कणयदंड पिंजरसरीरु, पणविवि पभणइ[3] पडिहारु धीरु
अहिणवफलफु लयदक्खवत्तु, वणवालु दारि आविउ तुरंतु ।
सामिय तसु को आए सुदेहि, आवउ अहवा वलि जाउ गेहि ।
ता राए[4] वुत्तउ कय पसत्ति, मालाइ खेउपइ सारि भत्ति ।
आएसु लहेवि पडिहारएण, आणिउ वणमालिउ तक्खणेण ।
पणविवि फलपल्लवफुल्लहत्थु जोडे वि हत्थ बोल्लइ कयत्थु ।
तुह सुरहियवण णामेण वणे, णामे सिरिहरु मुणि पत्तु घणे ।
ण णाणरासि पुरिसत्तु पत्तु, ण दसणभरु जायउ समत्तु ।
ण चारु चरणु पच्चक्खु जाउ, ण सजमि धरियउ तवसि भाउ ।
ण दिक्ख किउ इहु सीमभारु, ण पायहु ठिउ सइ समयसारु ।
लज्जमि हउ जह्नु तह्नो गुण कहतु, कालि विणु वणिजायउ वसंतु ।

घत्ता—इय वयणइ, सुहजण णइ, वणवालहो णिसुणेप्पिणु ।
बहुरयणइ, आहरणइ, उत्तारेवि तहो देप्पिणु ॥1॥

(2)

मिल्लिवि सिंहासणु हरिसधामु, पय सत्तहि तद्दिसि किउ पणामु ।
आणदभेरि दाविय पुरम्मि, हरिसावे सिय णायरजणम्मि ।

---

1 = स्वीकृत
2 घ, इक्कहिं
3 ख पभणइ
4 ख राय

सहु सयले णायर परियरेण, सवलिउ राउ धम्मायरेण ।
बहुअट्ठभेयपूयाकरेण, अणुवि सयल्लें अ तेउरेण ।
अइतोमि सप्तउ वणति, जहि अलिउल मेहि धारवंति ।
विणु महुपाणो[1] केसरु पहुल्लु, ण मुणि णामिउसावयहुं सुल्लु ।
क किल्लिवि फुल्लिउ णे वयामु, मिल्हवि नक्खामिणि पायफासु ।
ण वभचेरु विलएण गहिउ, विणु तरुणि दिट्ठि ज कुसुमसहिउ ।
सहयारु रक्खु मजरिउ भत्ति, ण मुणि दसणि तोसिउ सचित्ति ।
रोमचकचुइउ सव्वदेहु, मुणि दसणि कसु वा णत्थि णेहु ।

घत्ता—इय तरुवर, कुसुमुक्कर, जो णियतु वणि तुट्ठउ ।
ता णिम्मलि, सियसिलतलि, तरुतलि मुणिवरु दिट्ठउ ।।2।।

(3)

पिट्ठिवि तति पयाहिणु करेवि, पचगपणामे पुणु णवेवि ।
अ चे विपाय मथुवण लग्गु, सेच्चइ[3] इहु कमु[4] तारिसह[5] जोग्गु ।
पइँ दिट्ठइ महु सकियत्थु जम्मु, पइँ दिट्ठइ णिच्चलु जिणह धम्मु ।
पइँ दिट्ठइ लद्धउ मोक्खमग्गु, पइँ दिट्ठइ गेह गणउ सग्गु ।
पइँ दिट्ठें तुद्धउ कम्मपासु, पइँ दिट्ठें महु ससारणासु ।
तुह दसणु भवमरुकप्परुक्खु, तुहु दंसणु जीवहँ देइ सुक्खु ।
पइँ पेच्छहि जे आसण्णभव्व, पइ पणवहि जे णरु सुद्धदव्व ।
ज ज दिज्जइ उवमाणु तुज्झु, त त णियमोहहु तणउ गुज्झु ।
को सहस किरणु को अमियमाणु, को कप्परु रुक्खु का कामधेणु ।
को चिंतामणि को सलिलरासि, को मदरु कहि तुहु[6] जयपयासि ।
कि बहुणा तुहु सुपसण्णु[7] जाह, णिम्मलु रयणत्तउ हत्थिताह ।।

घत्ता—ता मुणिवरु, तवसिरिहरु, आसियवाउ पयपइ ।
सियकिरणह, णियदसणह, जुण्हाजलि सह लिपइ ।।3।।

1 पाणे
2 =धवलश्रीवृक्ष
3. घ सच्चउ
4 क कम्मु
5 ख तारिसहँ,
6 ख कह तुह
7 ख पसण्णु

(4)

जि सासइ सुहि सभइ सिद्धि, सत्तइ सपज्जउ धम्मबिद्धि ।
ता णरवइ पभणइ सुद्धभाउ, महु धम्म कहिणि किज्जउ पसाउ ।
भवियणमण कइवर तोसणिंदु, सायारुधम्मु भासइ मुणिंदु ।
इह पढमि किज्जइ जीवरक्ख, बहु सुहकारणि जाणिय परिक्ख ।
जा णरइ दारि ह धणइ भित्ति, जा तिरिय जोणि सवरणि मित्ति ।
जा सग्ग सिहरि सो वाणपत्ति, जा मोक्ख महापहि सूरकति ।
जा सयल सुक्ख विहवहँ[1] णिहाणु, जा सुहमगलु कमलाणभाणु ।
जा सयलविजय दुम मेहुकालु[2], जा असुहतिमिररवि किरणजालु ।
अण्णु वि वोल्लिज्जइ सब्बवयणु, ज पाबरेणु[3] खयकालपवणु[4] ।
ज[5] सयलह साहुत्तणह हेउ, ज सयल पहुत्तण विजयकेउ ।
ज सयललच्छि बधणह दोरु[6], ज जम्मगहणलधण किसोरु ।
ज सयलणाण उप्पत्ति बीउ, ज जहु तिमिहर ताडणपईउ ।
तइ यउ वज्जिज्जइ चोरकम्मु, जे चितिएण वि पलाइ धम्मु ।
ज गुणसेलह सिरिवज्जदडु, ज सयल दोसबिसहरकरडु ।
ज पालबल्लि उप्पत्तिकदु, ज लोहजलहिं पुण्णिमहिं चदु ।
ज णरयदारफाडण कुहाडु, ज जससरीरि अग्गिवित्ति साडु ।।

घत्ता—बउ तुरियउ[7] सुहचरियउ[8], ज परदार विवज्जणु ।
त गुत्तउ गुणवतउ, कय ससार विवज्जणु ।।4।।

(5)

परदारगमणु णरयहो पयाणु, ज सयल कुकम्मह कुलणिहाणु ।
ज बहु कलकउप्पत्तिठाणु ज वधु सुम्र णउरि तक्खयाणु ।
ज सयलसील करकहह किसाणु, ज णिम्मलगुणदेह मसाणु ।
ज पिसुणलोय अक्खुद्द हासु, ज दुइढकित्ति खयरोय सासु ।

---

1. ख विहविह, 2 ख मेह,
3. घ पाउरेणु, 4 क खयकालु,
5 ख. जे, 6 ख होरु,
7 ख तुरिउ, 8 ख चरिउ,

(15)

ज सयल सुक्ख भिक्खह दुभिक्खु, ज पावकूवतडि मदचक्खु ।
पचम वउ ज परिगहपमाणु, जं तण्ह तरंगिरणि पलयभाणु ।
सतोसें विणु तण्हा समुद्द, तिहु प्रणु वोल्लिबि[1] चल्लइ रउद्द ।
लोहें सक्कु वि रक्कहु समाणु, बिणु बोहे रकु वि वरणयभाणु ।
ग्रइ लुद्धहु पासि ण थाइ रिणद्द, जह धुत्त मुग्रग ह वेस खुद्द ।

घत्ता—इय पच वि, मणुखवेवि, जो वयाइ परिपालइ ।
सो सावउ, जिरण गुरण भावउ, मुक्खलत्थि मणु चालइ ॥5॥

(6)

ग्रण्णु वि पालह तिण्णि गुणव्वय, चउ सिक्खावयरिणयम करिव्वय ।
तहिं दिसि विदिसिहिं गमरणपमाणउ[2], ग्रण्णुग्र धम्मदेस परिहाणउ[3] ।
भोयपभोयह सखावीयउ, णच्छ दडपरिहरणउ तइयउ ।
सिक्खावय चउरो ग्रणुउ जहि, सामाइउति क्काल करिज्जहिं ।
ग्रट्ठमि चउद्दसि पोसहु किज्जइ, तिविहहो[4] पत्तहो दाणु दइज्जहि ।
ग्रतकालि सल्लेहण सरणउ, किज्जउ सण्णासि[7] सुहमरणउ ।
इय बारह वय जयणा करेज्ज, धुउ रयरिणहि भोयणु परिचयज्ज ।
सम्मत्तु बिसुद्धउ मणे धरिज्ज, ...
जो पचवीस सम्मत्तदोस, ते सवि पालहिं[8] जाणेवि ग्रसेस ।
जे ग्रट्ठ मूलगुण जिणगुण पयुत्त, ते ग्रवि पालह तुहु रिणरु रिणरुत्त ।
किरिया ते वण्णउ सावयाहं[9], सयलु वि करि रिणज्ज मुरिणज्ज ताहं ।

घत्ता—इय रिणसुरिणवि, मरिण मण्णेवि, णरवइ भणइ[10] सुहावें ॥6॥
तुह वयरिणहिं, सुह सवरिणहिं, सामिय मुक्कउ पावें ।

---

1 ख. घ बोलिवि, 2. ख. पमाणउ,
3. ख. परिहरणउ, 4 घ. ग्रनुजुजीत,
5. ख तिविहहु, 6 ग. मरणउ,
7. क. सन्नासि, 8. घ. बज्जहिं,
9. ख. सावयाहं, 10. ख. भणइं,

(7)

महु पुव्वभवंतर जम्मकहा आयण्णवि इच्छावित्त जहा ।
ता णिसुणिवि मुणि पच्चक्खु णाणु, धम्मावहि अक्खइ भवविहाणु ।
इहु[1] पुक्खरद्ध णामेण दीउ, ण सयलहृ दीवह एहु जीउ ।
तहिं सीऊयानइऽपर विदेहि, बहु रमणिज्जमडियविदेहि ।
तहिं उत्तरतडि णामें सुग्रधि, देसुत्थि पक्ककमलेहि सुग्राधि ।
जहि णायवेल्लि वड्ढियतलाह, फलनामिय फोफलि णउ लाह ।
घणछायामडलि सचरति, पोमिणि दलि दरवारसु पियति ।
थलकमलिणि सत्थरि बोसमत, वणजरिकिणि किउ पिक्खणुउवत ।
जइ सव्वुदिवसु पहि णिव्वहति, जधालयपहिय तो कोसु जति ।
जहि[2] उच्छुजतरस सारणीहि, मह णइउ हसिज्जहि तीरिणीहि ।।

घत्ता—पिहि आसहि, कणरासिहि, जो सव्वच्छवि भासइ ।
जणु कालहु, दुक्कालहु, ण बहु दुग्ग पायासइ ।।7।।

(8)

तहिं पुखरु णामि सिरिसिरिपुरु, ज तिय लुक्क लच्छिकीलीयरू ।
जहि मणि गेहकिरण उज्जालइ, कमल वियासुग्ग वर रविपालइ ।
बहुकामिणि मुहुचद[3] पयासइ, चदकत सलिलिहिं समिभासइ ।
घरि घरि सिहरि सिहरि रमतउ, दीसइ जहि रवि कलसायतउ ।
जहिं खाइय जलि पडिबिंबि थाइ, पिक्खिवि तीरट्ठिय[5] उवबणाइ ।
तह मूढा वाणरि दिति झप, जहँ णायर विहसि वि करुणकप ।
जहिं णील सालरुइ हरिय भतु, चदहु झपावइ मउ तुरतु ।
पुणु पेच्छिवि तियमुहयद लक्खु, चदु वि ण लक्खिउ हुअ विलक्खु ।

घत्ता—तहिं पुखरि, बहु सुहधरि, णेह वि रइजइ दीवहु ।
अइदिट्ठउ जणसिद्धउ, दाणच्छेउ करि[6] कीवहु ।।8।।

---

1 ख. इय,
2 ख जहिं,
3 ख मुह,
4. —सूर्यकलशमान,
5 ख तीरठियउ,
6 =वालहस्तिन.,

(9)

तहिं पुरवरि सिरिसेणु राउ, ण धम्मअत्थकामहु सहाउ ।
ण खत्त धम्मुथिउपुरिस भाउ, ण देहु जुत्तु जायउ पयाउ ।
ण मुत्ति भावि ठिउ सुद्धभाउ,[2] पच्चक्खु दिट्ठु ण दाणुराउ[1] ।
ण सयल बिज्ज सचउ, सकाउ, ण मयणतू अहंकार धाउ ।
ण जलहि गहिरगव्वहु बिसाउ, ण इहु गिरिधीत्तणु अपाउ ।
ण ससिसोहग्गसरीर लाउ, ण हरिसूस्तरण पलयभाउ ।
ण सुरगुरू बिज्जावलि विराउ[2], ण सक्ककित्ति भूयहिं[3] सुबाउ ।
ण कुदुज्जलगुणरासि आउ, ण णिम्मलुकल[4] सोहग्ग ठाउ ।
ण अरियणतिमिरह सहसपाउ[5] ण कप्पसक्खु भिक्खुवह चाउ[6] ।
ण कामिणि मण पीउस साउ, ण साहु णेहु रगहु कसाउ[7] ।

घत्ता—णरणाहहु, गुणगाहहु, सयलपुहवि पालतहु ।
अइबनहु ण एवतहु को सरिच्छु इ दु बिठाहु ।।9।।

(10)

जसु सियकित्ति अमियरस सायरि, तिहुवणु मुत्तिवत[8] रइ अपायरि ।
जसु असिवर छेयेण पसिद्धा, भूमीहर वसाणहु लद्धा ।
रक्खिउ तहु[9] बिहिणा इक्क वसु, तें इक्क छत्तु[10] तहु किउ पसमु ।
सिरिकता णामे तासु कत, बहुरुवलच्छि सोहग्गवत ।
जियमुहइ दहु लच्छण ठाणउ, ज पुण्णिम चदहु उवमाणउ ।
तारु तरलु णिम्मलु जुइ णित्तह, ण अलि उरि विउ केयइ पत्तह ।
जिय[11] सवण जुयलु[12] सोहाविलासु, ण मयण बिहगम धरणपासु ।

---

1. =कर्ण ,
2 =रागरहित
3. =वृष
4 =मनोज्ञ,
5. =त्याग
6. =सूर्य.
7. =रडादि फिटकडी,
8 =मुक्तिरिव,
9 =राज्ञ ,
10. =एकछत्रराज्य कृत,
11. =उपरि
12 =घ जइ,

वत्थच्छलु ण पीउसकु भ, अह मयणमच गयपीणकु भ ।
भयखीणु मज्झु ण पिसुणजणु, थणरमणगुरुत्तणि कुवियमणु ।
जिइ पिहुलणिय बउ अप्पमाणु, ठिउ मयणराय पोढहु समाणु ।

घत्ता—इय मयणहु, जयजयणहु ऊरुजुअलु[1] घर तोरणु ।
अइकोमलु, रत्तुप्पलु, जिय पय कतिहि चोरणु ॥10॥

(11)

मा तहो रायहो पाणवियारिय, चदहो जोगह बरइसुहकारिय ।
णाणहु सत्ति व सुरहो कति व, तक्कहु युत्ति व सिद्धहु मुत्ति व ।
धम्महो खति व सीलहु सति व, दाणहु कित्ति व अत्थहु मुत्ति व ।
इक्कहि दिणिताहि लोउ विसज्जि वि, सुकविसहा सुहरसु अणुहुंजिवि ।
जा णउइ अतेउरि आवइ, ता अइदुम्मण पिय परिहावइ ।
गल्ल हत्थ णिरु असु मुवती, कज्जल ऊरिहिं मुहु मइन्नती ।
जपइ णरवइ सभमवयणे, इहु अवराहु तुज्झ किव कयणे ।
महु जीवतहु मुवणु जिणतहु, सक्कु वि कपइ आण ण चपइ ।
सूरु बिल्हिक्कइ तेउ ण मुक्कइ, कालु वि तामइ[2] बलु ण पयासइ ।
तातुहु णियमणि केण स दुम्मणि ॥ .. . .

घत्ता—इयकते, पलवते, पुणु पुणु सा णिरु पुच्छिय ।
ता चालइ, लज्जालइ, लीलइ सहिय णियच्छिय ॥11॥

(12)

सा पभणइ कि पि स सोयवत्त । सामिय णिसुणहि इहि तणिय वत्त ।
जहि तुहु सामिउ तहि कहि विसाउ, पुणु सव्वहु उप्परि कम्मभाउ ।
पियसहि अज्जु सणेह पहिट्ठिय, उवरि सिहरि पग्गी विवइट्ठिय ।
णायर डिंभ बहुअ कीलता दिट्ठा अवरुप्परु णिवडता ।
ता सामिणि हियउल्लउ सल्लिउ, पुत्त इच्छ भारें ण पेल्लिउ ।

---

1 = ऊर्वो युगलम्, 2 ख तास्सइ

तें कारिणियइ अच्छइदुम्मणि, अवर मति मा किज्जहि णियमणि ।
त णिसुणिविणरवइपडिभासइ, एय चितिय विक्खेण पणासइ ।
सव्वु विबुद्धि परक्कमि सिद्धउ, पुत्तलाहु पुणु पुण्णि पसिद्धउ ।।

घत्ता—अइपवियलु, अम्हइ कुलु, पुत्तें विणु णहु सोहइ ।
विणु तरणें, बहु किरणे, को णहु मडउ बोहइ ।।12।।

(13)

विणु णदणेण कि रज्जफलु विणु णदणेण कि पुरिसबलु ।
विणु णदणण कि हसइ कु[1]लु, विणु णदणेण कसु लच्छि छलु ।
विणु णदणेण मणि हसइ खलु, विणु णदणेण कहि पिय रजलु ।
विणु णदणेण महु णाम बलु, विणु णदणेण णहु जस सक्कु सलु ।
विणु णदणेण महु विमलु[2], कह होही णिट्ठय कम्म मलु ।
पुणु तहवि य पुच्छिय कुविमवण, णियणाणु पयासिय भुवण गुण ।
तह मुणि वि करेसमि सुह णिहाणु जह तुह सपज्जइ फल णिहाणु ।
तुह सोए मट्टु, सततु देहु, महु तावे तत्तउ[3] सयलुगेहु ।
मए गेहु तावि पुहवी सतत्त[4], मा सुदरि भुवणि पसारि वत्त ।
इय सुह वयणहि कता सासि वि, कय बहु चाडुवे हिसइ हासिवि ।
जा इच्छइ णिय गेहि वइट्ठउ, ता वणवालु दारि सइ दिट्ठउ ।

घत्ता—मउलियकरु, पणमियसिरु, चूयकुसुमदलधारउ ।
वणमालिउ, सरिसालिउ, जपइ वयणु पियारउ ।।13।।

(14)

हो देव चूअ सुरहिय दिसासु, आविउ सिसिरति वसतमासु ।
कोइलढक्का वड्ढिय पयाउ, उवव णि सण्णद्धउ मयणराउ ।
अवय मजरि तोमर करतु, मलयाणिल गय वरि सचरतु ।

1 घ. कहि सोहइ कुलू, 2 =तपोनिर्मल·
3 =मम तापेन सर्वजनतप्तः, 4. =राजान· तप्ता.,

उड्डिरहसावलि षयघरतु, अलिपति तिक्खक्खगइ वहतु ।
कामिणि भूवल्ली धणु कुणतु, अइतिक्ख कडक्खासरमुबतु ।
त णिसुणिवि चल्लिउ पुहविणाहु ण पवणे पेरिउ वारिवाहु ।
वहु पचवण्ण कुसुमहि रसालु, वह सोरहु धाविउ भमरमालु ।
कोइल भमरारव सुहियकण्णु, अइबहुइ[1] महुरफल भक्खवण्णु ।
सीयल मलयाणिल लीलविद्ध , इयपचिदिय विसयहि सणिद्ध ।
वणु पिच्छिवि जा सतुट्ठु राउ, विहरणह लग्गु वज्जिय विसाउ ।

घत्ता—ता गयणहु, मणुय अगमणहु, चारणु मुणि सपत्तउ ।
तवजलणे, भवडहणे, जो सव्वऽगे तत्तउ ॥14॥

(15)

जो अणहाणे सामलियगत्तु, ण झाणजलण धूमेण छित्तु ।
जो वारहविहतवदुव्वलगु, ण मुत्ति णारि विरहे णिसगु ।
जो बड्ढिय अइदीहरण हयरु, ण मण मायगहो सिणि णयरु ।
तसु पय पणविय वहु भत्तिजुत्तु, पभणइ णरवइ हउ हुउ पवित्त ।
कइयह महुहोही चरणलाहु, णिम्मुक्क सयलमणाऽवगाहु ।
णिसुणिवि[2] भासइ मुणिवरिंदु, णिय णाणमऊहहि पुण्णिमिंदु[3] ।
णियराय लच्छि उद्धरियधम्मु, जइ इह तुह[4] होही पुत्तजम्मु ।
पुणु पुत्तजम्मपडिसेहहेउ[5], णिसुणहि ज हुअउ कालखेउ ।
पुव्वहि इह पुरि वहु धणसणाहु, देवगहु णामे आसि साहु ।
सिरिकुक्खि णाम तहु तणिय कत, सोहग्गरुवलावण्णवत ।
णामेण सुणदा तासु पुत्ति[6], सायारधम्मपालण सुजुत्ति ।
थिय एक्क दिवसि अवरिक्खणारि, णवजोव्वणि पीडियगव्भभारि ।

1 ख बहुय,
2 ख णिसुणेवि,
3 =पूर्णचन्द्रवत् मुनिः,
4 ख यह
5 =पुत्रजन्मप्रतिषेधकारण,
6 देवागदश्रीकुक्षयो पुत्री सुनन्दा,

अवलोइवि[1] किवउ णियाणवधु, माहोउ मज्झु गब्भहो पवधु ।
इह परभवि गब्भि णच्छि कज्जु, ज माणुसु किज्जइ पीडपु जु[2] ।

घत्ता—जिणसरणें, सुहमरणें, मरिवि पढमकप्पहो गय[3] ।
तहु भाविवि, सुहभाविवि, हुअ दुज्जोहण रायसुय ॥15॥

(16)

सा एह तुज्झ सिरिकत भज्ज, चिरभवहु णिहाणे फल विरज्ज ।
एवहि उवहुत्तउ तासु फलु, कइवव दिणेहि सुअ अतुल बलु ।
होही णरवइ मामति किज्ज, तहो पच्च इइ मुणिचरणाउ[4] चरिज्ज ।
तावहि करिज्ज सायारु धम्मु, अइचाररहिउ णिरु सुद्धकम्मु ।
ताणिउ पभणइ महु तोडि भति, सायारहु कइ अइयार हुति ।
बारह वयाह एयारसिट्ठि[5], मुणि पभणइ णिसुणहि सुद्धदिट्ठि ।
छेयणु बधणु घायहि ताडणु, अइभरघल्लणु अमणमिवारणु ।
अलियकहाणउ मम्मपयपणु, कूडलेहकरसण्णा जपणु ।
धवणी चोरणु जो वज्जो सइ, बीयाणुव्वउ सो सविसेसइ ।
दव्वहु रावणु हरियहु धारणु, रायविरुद्धउ करणी कारणु ।
लहु आहिय तुलमाणह सगहु, तइया अव्वय दोसपरिग्गहु ।
अवरविवाहु अजोणिहि मेहुणु[6], मइ विज्ज अइ सुरह समीहणु ।
विहुवसमुण सीसयरिणि कीलणु, तुरियाऽणुव्वयदो सुम्मीलणु ।
अइबाणहो अइसगहु करणउ, विम्हइ[7] लोहा अइभरबहणउ ।

घत्ता—इय पचह, सु हसचह[8], भासिय दोसाणुव्वयह णिच्चलु ।
एवहि सुणु, णिच्चलु मणु, करि णिम्मलु, भासमि दोसगुणव्वयह ।16।

1. ख ख. अवलोयवि, अन्यस्त्रिय गर्भवती अवलोक्य सुनन्दा निदान कृतमित्यर्थ
2. ख. पुजु,
3. =सुनन्दा,
4. ख. चरणउ
5 = अतिचारसृष्टि
6 = हस्तपादादिकामचेष्टा
7 ख विम्हय=विस्मृत
8 ख. सेवह

(17)

उड्डह तिरिच्छा अइकमणु, खित्तावहि पिहुलत्तरा करणु ।
सखित्तहु खित्तहु वीसरणु[1], इय पढमगुणव्वय दोस गणु ।
मइझासु मडागम पइयडणु, धिट्ठवयणु अइभोयपसाहणु ।
असमिक्खा करणउ वज्जिज्जहिं, बीयगुणव्वय दोस वइज्जहिं ।
विसयायरु विसयह अइसुमरणु अइलुल्लत्तणु अइतण्हत्तणु ।
अइ अणुहुउ[2] वज्जहि जाणेप्पिणु, पेसणु[3] सद्दणु अणु आणावणु ।
अप्पहु[4] दसणु पुग्गल खेवणु, जे पढमहो सिक्खावयहो दोसणु ।
ते कहियणि सुणि बीयहो[5] विसेउ, दुट्ठेतणु मणुवयणें जुत्तउ ।
विणु भत्तिए[6] वीसरणें गुत्तउ, बूय सामाइय दो समुणिज्जहिं ।
एवहिं पोसह वयणु सुणिज्जहि, गहणावि सज्जणु अणुअच्छरणइ ।
मुक्कापोडिय अप्पडिलिहणाइ, आयर सुमरण मुक्खाणट्ठइ ।
ए पोमहवयदोमा सिट्ठइ, हरियपिहाणावि हाणें मुत्तउ ।
आयर समरण भाव वि जुत्तउ, अतरि मच्छर दो सिगहियउ ।
हरिय पिहाण विहाणें जुत्तउ, बइया विव्वहो दोसा कहियउ ।

घत्ता —इय वयगिहि, मलहरगिहि, मुणिणाहहो णिउ हिट्ठउ ।
भवदमणइ, तहु चरणइं, वदिवि भवणि पइट्ठउ ।।17।।

(18)

सायारधम्म धुर धरणधीरु, जिणण्हाणा पुज्ज णिम्मल सरीरु ।
चउविह दाणायर मण वि वसु, वर धम्म झाण बाहिय दिवसु ।
सकलसउ जिणहरु अणुमरेवि, णादीसरि अट्ठाही करेवि ।

1 सख्याकृतक्षेत्रस्य विस्मृति
2. पूर्वानुभूत
3. प्रेषितपुरुष
4 ख. अइपहु
5 द्वितीय शिक्षाव्रतस्य दोषा.
6 =अनादरेण
7 ख. जिणठहाण

जा अच्छइ ता संजणिय हरिस, कतहि सपण्णा गब्भदिवस ।
सा गब्भत्थाय पडुरियदेह, ण फलिह् घडिय पुत्तलि णिरेह ।
णीलासु पीणु थणु जुउ धवलु, सकल णाइ चहह जुवलु ।
जभाई णियडी विर सहीव, अ गउ णाहु मिल्हइ गुण गहीण ।
आलसु वरमित्तु व भत्तिजुत्तु, सामीउ ण मिल्हइ एय चित्तु ।
तहि लज्जासहु वड्ढइ उवत्त, उज्जमि सहु णासइ बलिपवत्त ।
सा सुत्तिव मुत्तिय गब्भिणिया, मोहालि व जलभर वाहिणिया ।
मुणि वाणि व णिच्चल अत्थपरा, जयणालि व गुरु तसणारि हरा ।
तहि कुक्खि व लोयट्ठियउ भरा, केवल सत्ति व तहि भुवण भरा ।

घत्ता—जिण अ वणि, सुहसचणि, तहि दोहल या जाया ।
या मुणिदाणिहि, वहुमाणिहि, सुह णिरु पूरइ राया ।।18।।

(19)

अह सुहतिहि बेला भरवहेसु, सयलेसु उच्चठाणय गहेसु ।
णियतेउज्जालिय सुइहरु, उप्पण्णु पुत्तु णदि व सयरु ।
अ तेउरु पुरु रोमचियउ, तूरत्तय भाव पवचियउ ।
गुत्तिहि मिल्हिय अरिवदिदणीउ,[3] खजति पायमण णदणीउ ।
वद्धा बउ राय अप्पतुल्लु,[4] किउ आवि विरज्जह तणउ मुल्लु ।
दसमइ दिणि तहु मगलिउ धम्मु, गुरु सुयणहि किउ सिरिधम्मु णामु ।
दिणि दिणि णदणु वड्ढणहलग्गु, सयलारिमणोरहमडुभग्गु ।
राऐ कल[5] सचउ सिक्खविउ, णिम्मलु गुणगारव लक्ख विउ ।
सयलउ णिव विज्जउ सिक्खविउ, णिरु णायर सायणु वक्ख विउ ।
णामेण पहावइ रायकण्ण, ताए परिणाविय सील पुण्ण ।

1. ख मोहासिव
2 कारागृहात् वदिजममुक्ता
3 =आत्मसमान याचक कृत
4 =कल समूह

घत्ता—गुणरायहो जुवरायहो, प्रप्पि वि गियमहि रज्ज भरु।
इ दियसुहु, गिहगिय दुह, सइ प्रणु हुजइ कयपसरु ॥19॥

इय सिरि चदप्पहचरिए महाकव्वे महाकइजसकित्तिविरइये।

महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे सिरिधम्मजुवराय पट्टबधो

णाम वीउ सधी सम्मत्तो ॥छ॥ 2 सधि ॥छ॥

॥ग्र थ सख्या ॥ 193 छ ॥

[इति द्वितीय सधि]

तइउ संधि

(1)

अह एक्कहिं दिणि सिरिसेणराउ,　　सुहरस पीयूस णिवुद्ध काउ ।
जा रयणिहि घर पगणि बइट्ठु[1],　　बहुकामकेलि विच्छरि पइट्ठु ।
ता णहहु पडती उक्क दिट्ठु　　ण मुत्ति दिट्ठ अइराय पुट्ठ[3] ।
ण रज्ज मोह तम अरुण कति　　वेरग्ग तेय ण दीवयति ।
ण हरिसिय तव सिरि घट्टवीरु,　　ण कु कुम छट्टुइ कामभीरु ।
ण फुट्ठ भवोयर रत्तधार[4]　　इदिय वेड कण तत्त आर ।
त पिक्खवि[5] णरवइ मणि विसण्णु,　　वेरग्ग परम भावहु पवण्णु ।
मा धम्मु हणिवि सुह अणु हविज्ज,　　मा अत्थ काम तण्हा चरिज्ज ।
चिंतिय इह भवि णहि कि पि मारु　　दिढ मणि वि वरिउ ण सहइ वियारु ।
फेणु व णिस्सारउ मणुअ जम्मु,　　परवावारें जहि णत्थि धम्मु ।
मल वीयउ मल उप्पत्ति ठाणु,　　मल पूइगध दुक्ख विय थाणु ।
जइ एरिसु णारहि अगु मुणिउ,　　तो अमिय सुरहि भावेण थुणिउ ।

घत्ता—वा सिवि बहुगधिहिं, णिहय दुगधिहि, आहारिसु मइ मोहियउ ।
तिय तणु मलपिंडउ, असुइहि भडउ, अणु हुज्जइ तग्गअहि यउ[6] ॥1॥

1 ख वइट्ठु,　　2. ख पइट्ठु, घ वइट्ठु,
3 = मुक्तिदृष्टि अति रागपृष्ट ,
4 ख भवोरहु०,(=ससारो दयस्य रक्तधारा क्वा दृष्टा)
5 ख पेक्खवि,　　6. ख. व्वहियउ, घ यहियउ,

(2)

ज चंद सिरिच्छउ मुहु भणइ, त कफ पिंडउ किं णहु मुणइ ।
जे काम भल्लि तिक्खा कडक्क, ते सव्वउ दूसिय मल गल्लक्ख ।
ज विवाहर पीयूस[1] ठाण, ते फुडु णिट्ठीवण मल णिहाण ।
जे पीण तुंग थण अमयकुंभ, ते मसह पुट्टलु दिढ विंयंभ ।
ज रयण मज्झि सोहग्गु अच्छि, त पिहिय थाणु को छिवइ इच्छि,
अणु वि किर जित्तिय[3] सयल खोणि, तो[4] सोयव्वउ[5] चउहत्थ कोणि ।
जइ कोडि सख खारीउ धण्ण, तो सइ भुंजइ दो पसइ[6] अण्ण ।
ता परकारणि[7] वित्थर विहाणु, किं किज्जइ अप्पह पाव ठाणु ।
जह णाडय अहिणय[8] सयण बधु, तह पुत्त कलत्ता इय पबधु ।

घत्ता—इय चिंतिवि राए, जाणि विराए, करणिज्जउ निद्धारियउ ।
सडिक्ककह खडणु, णियकुल मडणु, वेए सुउ हक्कारि अउ ॥2॥

(3)

पणमिय सिरु सो अग्गइ वइट्ठु, विरलिय णेहइ दिट्ठीय दिट्ठु ।
हे पुत्त पुत्त बहु अच्छ सुणहि, मामहु वयणहु पडिवयणु भणहि[9] ।
जा जरवाउलि ण तिण कुडीरु, धुणिवि[12] णिरु पाउइ महु सरीरु ।
जा णायणु वत्थु[12] भेयउ मुणेइ, मपेच्छिवि तसु[13] रक्खणु करेइ ।
जा सवणु माहु वयणइ सुणेइ जा जीह जिणागमु पडु भणेइ ।
जा पय सु तित्थ पथिहि चडति, जा कज्ज अकज्जइ सभरन्ति ।

1 ख मुहु,
2 पीऊम,
3 ख जेत्तिय,
4 क ता ,
5 =शयितव्य चतुर्हस्त भूमौ,
6 ख पइस,
7 ख परकारणें,
8 ख अहिणव,
9 भणिहिं,
10 - जरा एव वधूला तेन तृणकुटी इव ।
11 कपयित्वा,
12 घटादि पदार्थभेद जानाति,
13. वस्तुन

तो इच्छमि छेड[1] भवहि पासु ।	जिण दुक्ख छुरीइ होइ वि णिरासु ।
अइ वुड्ढहु वट्टइ भोय तण्ह	जह पुण्णिमचंदहु वहल जुण्ह ।

घत्ता—तिय[2] हासहु मंदिरु, वहु गय[3] कंदिरु, सयललोय असुहावणउ
सव्वगे कंपिरु, सास वि जंपिरु, वुड्ढत्तणु विलिसावणउ ॥3॥

(4)

थेरउ मणि तत्तउ सुरइ[4] भग्गु,	णिइ तउ साणु[5] व अट्ठिलग्गु ।
णवि मिल्लइ णवि उवभोय सक्कु,	पिक्क व हिट्ठि ण पगु थक्कु ।
थेरहु ढकिय सवणाइ वेवि,	ण गइय वुद्धि घर दारु देवि ।
णिक्किर डिय णयणइ णउ उवति,	ण विय सिय अरलय[6] कुसुम पंति ।
मुहुहु[7] तीणि वडइ दतसेणि,	ण फुट्टी पाण कवट्टु गोणि ।
पडुरउ सीसु केरिसउ भाइ,	वुट्टत्तण कित्तिए धवलु णाइ[8] ।
खल्ली[9] ण धोइय तव पत्तु[10]	दोहग्ग णासव भणहु वित्तु[11] ।
सव्वगउ वलि विल्लरहिं छिण्णु,	ण काल सुणह[12] दतिहिं विकिण्णु ।
अइ णिहुडु णिहुडु पहि सचरेइ,	ण काल हरिय रय[13] पउ[14] ठवेइ ।
अठ्ठगइ तसु कप्पति[15] केम,	जरदेवि[16] चडिउ अवयारु[17] जेम ।

घत्ता—वहुलाल गलतउ, रोय किलतउ, वुट्ठत्तणु असुहाव णउ ।
णिल्लज्जु असुदरु, तण्हह मंदिरु, को व भिउडि भीसावणउ ॥4॥

1 =संसारपाशस्य छेद वांछामि,	2. स्त्रीणा हास्यस्थान,
3 =रोग,	4 कामो भग्न,
5. श्वान इव,	6. जरा एव लता,
7 ख मुहहो,	8. ख णाइ,
9 =टांटि,	10 ताम्रभाजन,
11 = पात्र विशेष	12. =काल ऐव श्वानस्तेसा दंतै,
13 =वेग:	14 =पादौ,
15 क ख ग कपति, घ. कप्पति,	16 =जरा एव देवि,
17. =लग्नापराध:	

(5

ता हुउ करेमि लहु अप्पकज्जु, तुहु परिपालहिं[1] सत्तगु रज्जु।
मा णियजणु अप्प विरत्त किज्ज, मा जणउ बयारइ बीसरिज्ज।
मा दुज्जण लोयहँ अग्घु दिज्ज, मा साहुहुँ गुण पच्छइ करिज्ज।
मा केण वि गव्वुत्ताणु हुज्ज, मा विसम समण[2] पासए पडिज्ज।
मा अजस गुरुअ[3] गयवरि चडिज्ज, मा चिंति वि पावहु दव्वलिज्ज[4]।
मा दाणरहिउ लच्छीउ मुज्ज[5], मा तित्थ सत्थु दूरो चइज्ज।
मा असुरविजय कम्मइ मरिज्ज, मा मम्मह वाणी वज्जरिज्ज।
मा पावपिसुणु चरिउ चरिज्ज, मा चिरमतिहिं कुलु सहरिज्ज।
मा अइकरपीडणि पइ[6] खइज्ज।

घत्ता इय रज्जु करतहु, महि पालतहु, सिरिसुह किंत्तिउ पुण्ण भरु।
तुहु धुउ सपज्जउ, तेउ समज्जउ[7], सयलमणोरहकप्पतरु ॥5॥

(6)

इय सिक्खिइ महु नहु दिण्णलच्छि, गउ उववणि वुट्ठय भति पुच्छि।
सिरिपहनामेण मुणिंद पासि, सगहिय दिक्ख भवभमण णासि।
कालें दुद्धर तवि[8] वि[9] हणे वि दुक्खु, सपत्तउ णिरु णिव्वाण सुक्खु।
इत्तहिं पुरवरि[10] सिरिभम्मराउ, णियजाणण[11] विउय णिरु बराउ[12]।
मतिहिं मित्तिहिं पडिवोहियत्तु, ठिउ सयल पुहवि णीइहि ठवतु।

1 क पयपालहि, 2 ग घ वसण = विसन पाशी,
3 = अयश गुरुहस्तिनि, 4 ग दव्वु = पापिनो द्रव्य,
5 क भोज्ज, घ मु ज, 6 ख ग पय,
7 क तउ समव्वउ 8 क तवे
9 क ख घ 'वि'—इति नास्ति शब्दोऽय
10 ख ग घ पुरवरे 11 ग घ जणण
12 ख ग विराउ

ता विजय जत्त[1] पयाणु दिण्णु, चउव्विहु[2] बल सेण्ण सपवण्णु ।
पयाण[3] तूर रवयाडियाइ, गिरिसिगिहिं मुहु वयरिहि[4] हियाइ ।
करि दाणपवाहिहि समिउ मग्गि, रयभरि सहु अरि पायाव[5] अग्गि ।
अणुकूलवान पसरिय धएहिं, छाइउ[6] रवि सहु अरियणजसेहिं ।
बहुबलभारें[7] णिरु कपियाइ, सेसें सहु[8] अरिउल दप्पियाइ ।
चउरगसेण गइ चूरियाइ, पहि गिरि सहु अरिहकारियाइ ।

घत्ता—बलभरि महि डुल्लइ, गिरिउ सुहुल्लइ, वुम्म पिट्ठिकडयडि[9] मुडइ ।
दिसि चक्कु[10] सलक्कइ उयइहि[11] पलक्कइ, णायभुवणु खडहडि पडइ ।7।।

ता वेरिवग्ग बल खल भलन्ति, ण गरुडभय फणिसलवलति ।
किवि तट्ठा किवि सम्मुह चडति, किवि कारणि किवि जममुहि पडति
किवि दततिणउ किवि गलि कुहाडु किवि दतगुलि किवि चवहि चाडु ।
किवि मिल्लहि पुत्तकलत्तवग्गु, पियपाण लेवि आरुहहि दुग्गु ।
किवि सयलत्तच्छि ढोवणु कुणन्ति, दव दड्ढरुक्खु[12] वसइ[13] हवति ।
किवि णिम्मलि[14] मुहि घलति अकु, सकलकु कुणहि[15] ण छणमियकु ।
किवि गहहि वेल मिल्लेवि[16] गव्वु, तक्खिण ण लहहि जिम रज्जु सव्वु
किवि पिच्छिवि सव्वुउ वाउ खीणु, दुद्धरु तव[18] साहहि णिरु अदीणु ।
किवि जाणिवि इहु[19] लेही ण मति, णिय सयलु रज्जु दाणेण दिति[20]

---

1 घ यत्त
2 ख छव्विहु
3 सग्राम भेरि
4 ख वेरिहि
5 क पायाल – पादप इत्यर्थ
6 ग छायउ
7 ग भारि
8 ग सहु
9 ख पुट्ठि
10 ख वक्क
11 घ उवहि
12 दड्ढरुक्ख,
13 ख वसइ
14 ख. णिम्मल
15 ख कुणहि
16 ख मेल्लवि
17 क ख. वायु
18. ग घ तउ
19. एस राजा ममस्तराज्य गृहणास्तीति 20 ख दति

घत्ता—इय दुद्धर रिउयण, अइदप्पियमण, सयल वि माणा[21] वसिकरइ।
पणम तह तूसइ थट्टह[22] रूसइ, खत्ति धम्मि सो णिउ चरइ[23]॥7॥

(8)

जइ णिह णिउ सगरि अरि णिकाउ, तो फिरि[4] फिरि जोवइ तहु पयाउ[5]।
जो एते[6] दिट्ठउ तियहिं यम्मि, विरहाणलमिसि पत्तउ तहम्मि।
तहु रिउकुल सुरपूयाणिरास[7], वय[8] जीवियरक्खट्ट तिणह ग्रास।
तहु[9] अतुल परक्कमु सभरंति, जीवंति मुक्क किवि अरि भणंति।
कण्णिट्ठ ऽगुलि[10] किउ युद्ध कज्जु, दीहरभुवदप्पहु पडउवज्जु।
कुवि भणइ चारुमइ कीय बुद्धि, मरसउ कोहाडउ[11] लइउ जुद्धि[12]
कुवि भणइ वम्म णिग्घाय[13] तत्तु, असिवर मुहु मइ तेण ऽकु घेत्तु।
कुवि भणइ पढम महु हत्थ छिण्ण, पायगुलि दतहि ते[14] वियण्ण।
कुवि भणइ तासु[15] करि कुंभ पिक्खि[16] अज्ज वि वीहमि तिय क्खण णिरक्खि[17]।
कुवि भणइ खग्गुमइ तासु दिट्ठु, ते सुरयमज्झि[18] पिय वेणि तट्ठु।
कुवि भणइ धणुह अइवकु तासु, तें गेहणि भूल्लइ णउ विसासु[19]।
कुवि भणइ दिट्ठमइ वाणतिक्ख, अज्ज वि भीसावहिं तिय कडक्ख।

घत्ता—पसरियजयछायह, बहुरिउ रायहु[19] इय वित्तंतु पयट्टि वि[20]।
चउदिसउ जिणेप्पिणु दडुगहिप्पिणु, किउ पयाणु[21] ऊहट्टि वि॥8॥

1 क ०याणा 2 क यद्दह,
3 ख चरए 4 ख ते फेरि फेरि
5 = राज्ञ प्रताप 6 घ यते
7 क ख ०निवास=कुल देवतापूजाया निराश
8. = स्वस्य जीवस्य रक्षा कृता मुखे तृण धृत्वा
9 श्रीधर्मराज
10 कणिट्ठ गुलि = कणिष्ठागुलिना कृत्वा मया कार्यं कृतम्
11 कुहाडक स्कधे कृत्वा, 12 क युद्धि
13 हृदये निर्घातेन तप्त 14 क घ ति
15 = राज्ञ करिणः कुंभच्छल दृष्ट्वा, 16 ख पेक्खि
16. ख णिरिक्खि
17. = रतिमध्ये स्त्रीवेण्या सकाकात् भयप्राप्त
18 = भ्रूलतायां न विलास 19 ख. रायह
20 = प्रवर्त्य 21 ख उहट्टिवि

(9)

णियभ्राण गहावि बि सयलराय, णिम्मलि जसि धवलि तिभुवण छाय ।
रिउदड्ढु लच्छि भच्छियहं[1] देवि, णिय णिय पुरि णरवर मुक्कलेवि ।
णिय पुरि सपत्तउ विजयवतु, वहु वदियणेहिं[2] णिरु वदियतु ।
हरिसिय पुरयर भग्घइ[3] लह,तु पोरगण[4] लज्जऽञ्जलि गहतु ।
भइ णयरसोह मंगल णियतु[5], जिणपडिमइ पहि पहि णिरु णमतु ।
णियगेहि णिसण्णउ तुट्ठिवतु, पचेंदिय सुह माणइ महतु ।
ता इक्क समय नहि णयरु दिट्ठु, भवलोयतहु तक्खणि विणट्ठु ।
चिंतिवि[6] वेरग्गुहु सो पवण्णु, विसएसु तण्ण को कुणइ धण्णु ।
सिरिकतहो[7] पुत्तहु देवि रज्जु, सइ[8] चल्लिउ साहुण[9] भप्प कज्जु ।
सिरिपहहु[10] मुणिदहु[11] पायमूलि, संगहिय[12] दिक्ख गुणकण[13] कुसूलि ।[14]
सो तेरह विहु चारित्तु चरिवि[15], सोहम्मसग्गि उप्पण्णु मरिवि ।
सिरिहरु णामे सपण्णु देउ, बहुदेवगण सजाउ सेउ ।
दो सायर उवमइ भ्राउमाणु, किं वण्णमि तहु सुक्खहु पमाणु ।।

2 ख वदियणिहि,
3. =अर्घ्यनिश्लाघानि
4 घ पउरगण,
5 ग समइ,
6 ख. चिंत्तिवि,
7 ख घ सिरिकतहु,
8 ख. सइ,
9 ख साहुर्ण,
10 ख. सिरिपहहो,
11 ख मुणिदहे,
12 ख घ सगहिभ,
13 क गण,
14 = पृथ्वी,
15, ख. चरेवि

घत्ता—सोलह ग्राहरणहिं, सुरमण हरणहिं[1], देवगिहिं[2], गिरु भूसियउ ।
चउरसु मठाणउ, तेयणिहाणउ, तहो वउ गहु[3] मणइ सियउ ।।९।।

(10)

ग्रह धादय णामे दीउ ग्रत्थि, तहो दाहिणि कीडिय ग्रमरसत्थि ।
[4]इसुणारिहिं सेलहु पुव्वभगहि, चउवग्ग लच्छिणच्चणह भरहि ।
ग्रलका णामे तहि ग्रत्थि देसु, ण सुक्ख सग्ग[5] लहु तणउ वेसु ।
जो थलकमलिणि मयरद पिगु, वहुपक्क कमल सोरहिय ग्रगु ।
कामुय जणुव्व जो मइ विहाइ, उच्छव रसु ग्रासव[6] मत्तु णाइँ ।
मदाणिलहल्लिर तरुरमालु णँ छक्किउ[7] घुम्मइ मय विसालु ।
ग्रावत्तणाहि रमणिय विसेस, विहगावलि मेहल सिरि विसेस ।
सपयोहर[8] हारिणि कमल णित्त वहुणइउ धरइ ण पियकलत्त ।
तहि कोसल णामे ग्रत्थि णयरि, वहुसुक्ख लच्छि गुणगणहिं पवरि ।
जहि रयणऽगणि उडुपडिविंविय, मुत्तिय मदिए हसिहि[9] चु विय ।
जहि मइ रिणि तिमिरि वि सचरति, णियमुह चदिणि दीसइ तुरति ।
जहि गेहमि हर जालय पहुत्तु, कालागरु धूमहि सदुछित्तु ।
तक्खणि ह ग्रउ[10] एयहु कलकु, णहयलि[11] किल कहि ससुहरिणु ग्रकु ।।

घत्ता—तहि पुरवरि[12] रागउ, तिजय पहाणउ, ग्रजितजउ[13] णामेण हुउ ।
इदु व सामच्छिहि, भुवण[14] कयच्छिहि, जो महि पालइ पीणभुग्र ।।10।।

1 क हरणहि, 2 ख देवगहि
3 ख णउ, 4 =पर्वता
5 ख मग्गालहो, 6 =मद्य
7 ख णच्छक्किउ,
8 ख सुपउदर,
9 ख हसहे, 10 ख हूयउ,
11 ग्र कहिं ससु कहि हरिण ग्रकु,
12 ख पुरवरे,,
13 ख घ ग्रजियजउ,
14 ख भुवणि०

(11)

जसु सिय गुणेहिं व मडु मडु, पूरिउ सयवत्तिहिं ण करडु[1] ।
पायाव अग्गि जसु ता वियाड, उब्भति[2] व भुवणहो जसपय इ[3] ।
जसु गभीरत्त् णु गुण लज्जिउ[4], लवणोवहि कसिणत्तु समुज्जिउ ।
पडिदिणु जसु पायाव पलित्तउ[5] सूरें अप्पउ जलणिहि घित्तउ ।
जसु मइ सायराउ उच्छलियइ[6] णहयलि गुरुकइ[7] विहु व कलियइ[8] ।
भीमण[9] सूअर सप्पहु[10] तट्ठी[11], जसु गिहु मुइ भूवेवि वइट्ठी ।
जसु अजियसेण णामेण कत, कुलसील सुगुण सोहग्गवत ।
जिह अग्गइ[12] दासि व लच्छि भाइ, अगहु मह[13] पुत्तलि रभणाइ[14] ।
चक्खुड्डावणि ग कामकतु, इदाणी रकिव रूव वतु ।
रोहिणि दोहग्गहु[15] णाइ खाणि गव्वरिय दुच्छिय थेरी[16] व जाणि ।
ताह पग्प्परु रइकीलतह, पचेदिय सुहरस् माणतह ।

घत्ता—सुरु सिरिहरु णामे, गुणगण धामे, जो सुरलोउ पवण्णउ ।
आवेविवि[17] मोहम्मह, भु जिय सम्मुह, सो तह सुउ उप्पण्णउ ॥11॥

(12)

तह णामु परिट्ठिउ अजियसेणु, जो अरि णिव चिडिया चडसेणु ।
वालु वि गुण गउ रवि सपवण्णु' वालु वि सुय सायर पारु तिण्णु ।
वालु वि ज वुड्ढह धुरि वइट्ठु, वालु वि णयविल्लिहि कदु दिट्ठु ।
वालु वि कुलभर धुर धरण धीरु, वालु वि अरिवर णिद्दलण धीरु[19] ॥

1 क ग करड, 2 ख उप्मति,
3 =यश पदानि 4. ख लज्जिइ, घ लज्जियउ,
5 घ पलित्तूउ 6 ख उच्छलियइ,
7 = वृहस्पति शुक्र च, 8. ख कलियइ,
9 = रौद्रसूकरात् शेषनागाच्च, 10 ख सप्पहो,
11 = भूकुलदेवी या राज्ञ भुजायाँ प्रविष्टा,
12 = अजितसेनाया अग्रे 13 ग घ. मल,
14 = शरीरमल पुत्तिभ्कारता, 15 ख दोहग्गहो,
16 दुश्चिता वृद्धा इव यस्या अग्रे गौरी भाति,
17. क. अविवि,
18. = शत्रु राजा इव चिडास्तेषा प्रचड
19 ख, अरिभडणिद्दल णिवीरु

बालु वि धम्मिक्क णिवद्ध[1] गाहु, वाल वि जण सिक्खादाण णाहु ।
त पिक्खिवि णरवइ तरुणु हुतु, चिंतइ णदणु गुणगण महतु ।
हुउ धण्णु पुण्णु जसु एहु पुत्तु, एए[2] महु कुलु चिर कित्ति जुत्तु ।
गुणवते पुत्ते ज जि सुक्खु, पीऊस हाणु त हुइ विलक्खु ।
गुणवतउ भत्तउ रूववतु, पुण्णे हि विणु दुल्लहु[3] होइ पुत्तु ।
ता दिज्जइ इहु जुवराय लच्छि, कुलवुड्ड मति सयले वि पुच्छि ।

घत्ता—हक्कारि वि वुहयणु[4], अणुसहु परियणु, आलोइ[5] वि मतिहिं सहु[6] ।
वदियणि पढतिहिं, मगलि हुतिहि, जुवरायहु[7] पउ[8] दिण्णतहु ।।12।।

(13)

जा मगलु मगलि आहासइ, जा पुरपरियणु हरसे लसइ ।
जा राउ[10] रयणाभूसणाए, उवविट्ठउ सह[11] सिंहासणाए ।
जा पुत्तु ण विज्जइ णरवरेहिं, मउ डग्ग कौडिचु विय धरेहि[12] ।
ता[13] चदरोइ णामे असुरु, चिरजम्म वेरि सभरण परु ।
दसण णिमित्ति सजाय कोउ, समोहि वि तहिं अच्छाण लोउ ।
अवहरिउ तेण[14] जुअराउ झत्ति, विच्छारियि[15] माया विज्जु सत्ति ।
खण मित्तु एक्कु समूढु[16] राउ, पच्छा जायउ चेयणट्ठ भाउ ।
वा श्रिट्ठी सह णियपुत्त सुण्ण, वीवाहि[18] जि रडी णाइ[17] कण्ण ।
सभमि अवलोय[19] वि चउदिसासु, चिंतइ णरवइ मिल्लिवि निसासु ।

---

1 क विवद्ध,
2 =यावत्,
3. ख दुल्लउ,
4 ख वुहअणु, घ पुहअणु,
5 ख आलोए,
6 ख सहु,
7 ख जुवरायहो,
8 घ पदु
9 =यावत्
10 = राजा,
11 ख सेह,
12 ख °धरेहि
13 = तावत्,
14 = पुत्रेण इत्यर्थं,
15 ख विच्छारिवि,
16 ख घ समुच्छु,
17 = सभा दृष्टा,
18 = विवाहकाले रडा इव सता,
19 ख अवलोएवि ।

किं मोहु एहु किं इंदजालु, किं सिविणउ किं वा मइ[1] भमालु ।
ज पासि व इट्टउ णच्छिपुत्तु, ग्रहवा को जाणइ दइव सुत्तु ।
इम चिंते वि सो सोयणह लग्गु, हा दइव मणोरहु मज्झु भग्गु ।
हा पुत्तपुत्तकहिं संपवण्णु[2], कहिं पुणु तुहु मुहुं पिच्छमि ग्रपुण्णु ।
देहेहिं पुत्त पडि वयणु[3] ताम, ण फुट्टइ हियडउ मज्झु जाम ॥

घत्ता – इय बहुविलवतउ, करुणु रुवतउ, मरवइ मुच्छा बिहलुगउ ।
ग्र तेउरु धाइयउ, सोयपरायउ, परियणि हाहा कारु किउ ॥13॥

(14)

जियसेणा पिच्छिवि राय मुच्छ, मुच्छिय हिमहय पोमिणि सरिच्छ ।
दुण्णि वि सिंचिय हरिचन्दणेण[5], दुण्णि वि बिज्जिय चमराऽणिलेण ।
ता दुण्णि वि चेयण कह वि पत्त, णीसास भुलक्किय सुयणगत्त ।
महएवि भणइ हा पुत्त पुत्त, पइ[6] विणु जीवेवइ कवणवत्त ।
दइवें दक्खालिवि मणि निहाणु, रकहु ग्रप्पिउ भिक्ख ठाणु ।
ण ग्रमिय घु टुहुटुबडि लग्गु, तक्खणि दइवें तहु पत्त भग्गु ।
ण ग्रघहु देविणु ग्रक्खि जुवलु, दइवें उप्पाडिय खणिण विमलु ।
दीणह्न देविणु सइ[8] इंदरज्जु, तक्खणि दइवे किउ मिक्ख मुज्ज[9] ।
ण रयणत्तउ पावे वि वतु[10], ण गुणसेणिहिं खडहडिउ जंतु ।
सुहकित्ति वि हउ गुणतेउ थामु विणु पुत्ते एयहु[11] णत्थि णामु ।
हा पइ विणु कुलि ग्र धारु जाउ, हा हा कह हो ही एहु राउ ॥

घत्ता – णरवइ णिरु धीरउ, उवहि गहीरउ, बार बार मोहिज्जइ ।
दइवें णिरु सूरि[12], ग्रहवा भीरु बि, कह विणु भेउ करिज्जइ ॥14।

1 =मतिभ्रान्ति, 2 ख. पवण्णुउ
3 ख पडिवयण 4 क. कारुकउ
5 घ हरियंदणेण 6 ख. पइ
7 ख घुट्ट० 8 ख ग सइं
9 भोज्ज 10. =वमित
11. घ. यहु महु वा पाठ । 12. ग. सूरुबि

(15)

जा पुरु[1] परियणु सुय सोयमुत्तु, अत्थइ णरवइ दुहपंकि खुत्तु ।
ता **तवभूसणु** णामे मुणिंदु, चारणु णहयलि ण अमलचदु ।
उग्गीबेंत्ते[2] आवतु दिट्ठु, णियदेह तेय मंडलि पइट्ठु ।
पीऊसें खित्तउ[3] णाइ[4] अक्कु, सगहिय महव्वय णाइ सक्कु ।
करुणा सीयलु ण मेघवाहु, रयणत्तय भूसणु गुण सणाहु ।
जा सो आविवि महिपउ[5] णतुदेइ, ता उट्ठि वि णिउ पायहिं पडेइ ।
णिव करि ढोइय आमणि बइट्ठु, बीसरिउ सोउ णिउ हियइ तुट्ठु ।
हरिसऽसुमिस्स जलि पाय धोय, जे सयलहु होअहि[6] तरण योय ।
पुणु सट्ठु पयारिय पूयकरि वि, वज्जग्गइ राउ सिरि हत्थ वरिवि ।
महु घरि आयउ तुहु अज्जु णाहु, ण दाव पलित्तह वारि बाहु ।
ण जलहि किलतह जाण पत्तु ण अइइहि मुल्लह मग्गु पत्तु ।
ण मरुथलि तिसियह जलणिहाणु, रयणिहिं चक्कह उइउभाणु ।

घत्ता—चिरदूहवतीयह, विरहे दुहियह, जहपिम्मे[8] पइ सुरय सुहु ।
तह तुह पट्टु दमणु, सिव सुह फसणु, अम्हहु दुहियह हरइ दुहु

(16)

इय सुणेवि राय वयणाइ जयदु कय आसिवाउ भासइ अणिंदु ।
हउ पिच्छिवि[9] पइ मुय सोयतत्तु, आयउ पडि बोहण धम्म जुत्तु ।
अम्हाण वि गुणगणि पक्खवाउ, को तुह सरिसउ णिव सुद्ध भाउ ।
ता जाणतु वि किह[10] करहि मोउ, सजोयवि ऊय सहाऊ लोउ ।
तच्चइ बुज्झत हो कासु मोहु, अवकमइ ण रवि करभरु तमोहु ।
मुह मगलि सव्वु विधीम होइ, दुहि पडियइ णरवइ वियलु कोइ ।[11]

1 ख पुत्त
2 क ०बेतें
3 ख पित्तउ
4 ख णाइ ग माइ
5 घ एय
6 ख होवहि
7 =दुर्भगस्त्रीणां
8 पिम्म
9 ख पेच्छिवि
10 ख कह
11 ग विरलु

ताम करहिं तुहु णदणहु दुक्खु, सो असुरें हरियउ विमलचक्खु[1] ।
केहिंवि दिणेहिं आवेइ इच्छु[2], बहु चक्कवट्टि लच्छी कयच्छु ।
त णिसुणिवि हरिसिउ णरवरिंदु, पुलयकरिय णं धम्मकदु ।
मुणि वदिउ पुणु उट्ठें वि जाम, जइ[3] गयणे मग्गि सचलिउ ताव ।

घत्ता — मुणिणाणयहो वयणिहिं, पीणिय सवणिहिं, सोवीसासु पवण्णउ ।
णिय मदिरि अच्छइ, सुहु सइ वछइ, मगल लच्छि रवण्णउ ।।16।।

इय सिरिचदप्पहचरिए महाकइ जसकित्ति विरइए

महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे अजियसेणावहारो

नाम तइऊ सधी समत्ता ।।169। ग्रन्थ सख्या 164 ।।

1 ख कमलचक्खु 2 ख आविसइ पच्छु.
3. क. जय

चउत्थो संधि

(1)

अह असुरेण[1] गयणि उप्फाडिवि[2], गपिणु दूरे अइ भम्माडिवि[3] ।
मारण कारणि कोवे मुक्कउ, कहवि कहवि पाणिहि[4] णउ चुक्कउ ।
णाम मणोरमु गहण[5] सरोवरु, तहु[6] जलिणि वडिउ रायहु सुयवरु ।
पडणुप्फालिउ जलु पालिहिं[7] गउ, णियवाहहि सो[8] तरणह लग्गउ ।
ता मयराइय जलयरधाइय, कुप्परकरपायहि ते धाइय ।
तरिवि तरिवि[9] सो तडिहिं पवुत्तउ[10], बहुसेवाल वि तूरिहिं[11] गुत्तउ ।
जा अग्गइ ता णामे परुसा, पिच्छइ अडई[12] कुससुइ[13] परुसा ।
जहिं हरिण हरंहि करिमुत्तियभरु[14] पइ-पइ[15] णिवडइ दिसि पसरिउ करु ।
णदीहर तरुमाहहि खुडियउ[16], गयणहो[17] तारामडलु पडियउ ।
जहिं[18] तरु जाल[19] णिविड अधारइ, फणिभइ सूर ण पाइयसारइ ।
जहिं घुरुहरिय घोरवग्घालिहि, हरिणु ण णासिवि सक्कइ फालिहि ।

घत्ता—कटयतरु[20] छडइ, उप्पहि हिडई, जा णिव णदणु तिच्छुवणे ।
ता दिसि जोयते, णिब्भयवते दिट्ठउ गिरिवरु तिच्छु खणे ।।1।।

---

1 क मुरेण,
2 क ख ग उप्पाडिवि,
3 घ भमाडेवि,
4 क कहविश पाणिहि
5 घ गहणे
6 ख तहो, घ तहुँ
7 क जलुप्पालि
8 राजकुमारो
9 घ तरेवि
10 पहुत्तउ
11 ख विल्लूरिहिं, ग विमूरिहिं,
12 ग अडपी
13 दर्भसूची ति
14 ग ०तरु
15 घ पइ-पइ
16 क ग खुडिअउ
17 घ गयणहु
18 ख जेहि
19 वृक्षसमूहेनेति
20 क ख कडयतरु

(2)

जासो गिरिवर सम्मुहँ चल्लिउ, मंथरसीयलपवरोहिँ[1] पिल्लिउ ।
ता अजणगिरि सिहरसमाणउ, दिट्ठउ एक्कु पुरिसुकोवाणउ ।
आमिसपिंडसरिसबललोयणु, पिंगल झपडकय भीसावणु ।
दीहरदाढ विलाइय[2] णरसिरु, अग्गइ-थक्कउ गुरुमुग्गरकरु[3] ·
अह सो भासइ सिवघग्घरसरु[4], रे रे कोत्तु हु रक्खसु सुरणरु ।
भूमिमहारिय पायहि मलयहिँ[5], खमवतहो[6] मुहु सहु सइ खउलहिँ ।
इह उववणि वहुलइ विस्थारइ, आयच्चु वि णहु अत्थु[7] पसारइ ।
सक्कु वि इह आवतु वि थक्कइ, अण्णु को वि कह आवण सक्कइ[8] ।
तुहुँ पुणु णियभुयगव्वुत्ताणउ, मइ आसघि[9] वि आउ अयाणउ[10] ।
ता अमरासुर सिरिमचूरणु, सिक्खादेसइ मुग्गर पहरणु ।

घत्ता—इय कडुयइ सवणिहिँ, तहो बहु वयणिहिँ राय सूणु मणितत्तउ ।
भवभिउडि करेप्पिणु[11], पुरउ सरेप्पिणु[12], जपइ रोसपलित्तउ ॥2॥

1 क मघर०
2 घ विलुय
3 क ग गुर०
4 घ ०सिरु
5 ख ग घ मयलहिँ
6 घ खमवतहु
7 ग हत्थु
8 = आगमन शक्यते, अपि तु नेति
9. ख आसचे
10 ख अयाणउं
11. क करिप्पणु
12. ख. सरिप्पणु

(3)

को रे तुहु कहिं पोरिसु बहेसि, वयणिहिं भीसावणु किं करेसि ।
हउ[1] परभउथट्टहु[2] हियइ[3] सल्लु, दप्पिय सुर असुरह दलणमल्लु ।
जइ अच्छि सत्ति ता पुरउ ढुक्कि, अह कुवि अप्पहु[4] साहाउ कुक्कि ।
महु[5] वज्जमुट्ठिमहरेण हणिउ[6], णाउ वि तुह पच्छा केण सुणिउ ।
ता रोसि घुरुक्कि वि सक्कचुक्कु असुरे मुग्गर पाहारु मुक्कु ।
ता कुमरु भालि उड्डिय पउट्ठु[7], मुग्गरु वंचिवि अगहु पइट्ठु ।
पाणिहिं पाणिबद्धु पउ पायहि, सीसिहि सीसु पहारु पहायहिं ।
जा अवरोप्परु[8] दप्प मरट्टह, पहुयदण्ड[9] पहार पलुट्टह ।
दण्ड जुद्धु[10] गिरि गहणि पयट्टइ, दुहुजणमज्झि ण कुइउ[11] हट्टइ ।
ता कुमरे भुयदप्प करालिउ, पाइ[12] धरिवि रक्खसु अप्फालिउ ।

घत्ता—ता सुरसुहु[13] दसणु, मिल्हिउ[14] भीसणु पच्चक्खउ सजायउ ।
णिरु जोडिय हत्थउ, पणमिय मत्थउ, विहिमि वि भणइ सरायउ।। 3।।

(4)

हउ सुरु हिरण्णु भवणाहिवासि, पारिक्ख करणि तुहु[15] आउ पासि ।
जा मदरि जिणु बदवि[16] णियत्तु, ता तुहु दिट्ठउ सोमालगत्तु ।

1 ख ग घ हउ
2 ख ग घ थट्टह
3 ग हियय, घ हियइ
4 घ अप्पहो
5 क ख ग महो
6 क हणिउ
7 कुमारस्य ललाटे लग्ननोच्छलितेन पतित ।+ क ख पाहार
8 क अवरुप्परु
9 ख पट्टुव, क पट्टुय
10 क जुम, ख जुद्ध
11 घ गहणे
11 घ कुविउ
12 ख पाय, घ पाइ
13 ख सुरु
14 घ मिल्लिय, ग मिल्हिय
15 ख घ तुह
16 घ वंदिवि

हउ तुट्ठउ तुह साहसि ण वीर, अवसरि सुमरिव्वउ[1] कहमि धीर।
जे हरियउ सो तुह[2] सत्तु होइ, मइ पुणु चिरजम्महो मित्तु जोइ।
जइ यह[3] तुहु सिरिपुरिधम्मराउ, सुगंधिदेसि पसरियपयाउ।
तहिं दो गहवइ ससिसूरु णाम, करसणि सपायणि जणियकाम
ता ससिणा रविघरि दिण्णु खत्तु, चोरिउ तह[4] गेहहु[5] सयलु वित्तु।
पइ जाणिवि ससि णिग्गहिउ तित्थु, सुरह[6] धणु अप्पिवि किउ कयत्थु।
सो ससि जाइउ[7] इह चंदरोइ,[8] हउ रवि हिरण्णु सुरु णायलोइ[10]
इमु[11] भणिवि कुमरु हत्थियहिं[12] गहेवि, खणि अडइ वाहिरि मुक्कु लेवि।
सइ[31] णिव भवणहो सपत्तु सत्ति, कुमरु वि देसहो पिक्खइ धरत्ति।
जा गामणयर तडि मचरेइ, को देसु एहि[14] इय मणि करेइ।

घत्ता—ता पाडिय बु वउ[15], गहिप करवउ[16], जाइ लोउ सवु[17] णट्ठउ।
थिर[18] वियसियणित्ते[19], विम्यिह[20]चित्ते, कुमरे रहि वि सुदिट्ठउ ।।4।।

1 ख घ अवसरे सुमरेव्वउ
2 ख त्तुह
3 क अह
4 घ तहो
5 क ख ग गेहहो
6 ग सूरह, घ सूरहो
7 ग जायउ, घ जयउ
8 ख इट्ठु
9 ख चडरोइ
9 ख हिरणु
10 ख घ णागलोइ
11 क इम्व
12 घ हत्थेहिं
13 क सइ
14 ख यहु, ख एहु (प्रतिभातिहेतुतवदित्यर्थ ।)
15 ख पुबउ
16 क ख ग मुक्क विलवउ
17 क सव णठउ, ख घ सउणट्ठउ
18 क ख थिय
19 ख ०णेत्ते
20 दिभिय

(5)

बुड्ढत्तणभावें मग्गि थक्कु, ता कुमरे पुच्छिउ पुरिसु एक्कु ।
भो कक्क कक्क[1] पायडिय सोउ, किं देसहो[2] णासइ सव्वु लोउ ।
त णिसुणिवि थेरउ कोवि चडिउ, बोल्लइ[3] भाउअ[4] तुहु णहहु पडिउ ।
ज एहु वि वेयरु[5] णवि[6] मुणेसि, असगाहे पुणु पुणु पुच्छवेसि ।
इच्छेव[7] अरिजय णाम देसु, पुरु विउलु अच्छि बहु सिरिविसेसु ।
तहिं जयवम्मा णामेण राउ, जयसिरिकंता सुह बद्धराउ ।
ससिपह णामेण तह[8] जाय पुत्ति, ण सयलरूव सोहग्गमत्ति ।
अवरे महिंद णामे णिवेण, स विवाहहु[9] मग्गिय णएण ।
णेमित्तिहिं[10] वारिउ दितु राउ, जाणेवि महिंदहो तुड्ढ[11] आउ ।
ता भग्गमणोरहु णिउ महिंदु, मेलिवि[12] सबल्लिउ राय बिंदु ।
जयवम्मसेणु[13] सगरि णिहत्तु, एव्वहिं पुरवइ[14] विट्टण[15] पहुत्तु ।
उज्जाडिय पुरवर बहु पएसु, तहो भय कंपिउ णासेइ देसु ।

घत्ता—त कुमरु सुणेप्पिणु, हियइ[16] हसेप्पिणु, विउलणयरि दिसि ढुक्कउ[17] ।
दिट्ठउ माहिंदहु[18] अविणय कदहु[19], सिविरु णयर वहि मुक्कुउ ॥5॥

1 घ एउ
2 घ देसहु
3 घ बुल्लइ
4 ख भाउव
5 ख घ वइयरु, वृत्तान्त इत्यर्थ
6 ख णरु
7 क इच्छुज्ज, ख घ इच्छुव
8 ग तह
9 ग सावे बाहहु
10 क णमित्तिहिं
11 ख तुच्छ, घ तुच्छु
12 ख घ मेलवि
13 क सिण्णु
14 क पुरवइ
15 ख विड्ढण, घ वेट्टण
16 ख घ हियइ
17 क दुक्कउ, ख ढुक्कइ
18 घ. माहिंदहो
91. ख. घ कदहो

(6)

ता दिट्ठउ पुरवरु वलिहि[1] रुद्धु[2], ण चक्कवूहिं अहिवण्णु छुद्धु ।
किवि[3] सालभित्ति जोवति[4] वीर, किवि करि कुंभहु[5] उच्छलहिं[6] धीर ।
किवि चडणि दति असिवरु गहति, ण चलियपाण अग्गल धरति ।
किवि समिरु पडतउ सगहति, वेणिहिं[7] धरि अरियणि घाडदिति ।
किवि णिय उवरज्जु[8] अतइ किलति, धाइवि अरि सिरि पासय घिवति[9] ।
किवि जतिगोलिकय[10] खड खड, तह विहु पायारहु[11] भिडहि[12] चड ।
ता कुमरु पोलि[13] सम्मुह चलेइ, चउरगु[14] सेण्णु तिणसमु कलेइ ।
जतहु जतहु[15] तहो दिण्ण आण गवि मण्णइ[16] जा ता कर किवाण ।
पभणहि भो तुव सिरि[17] णच्छि कज्जु ज राय आण मजहि अणिज्जु[18] ।
आणालघणु पुत्तु वि महिदु, ण सहइ णिरु णायहो[19] तणउ[23] कदु ।

घत्ता—त णिसुणिवि कुमरे, वच्छिय समरे, ससरु धणुह उद्दालियउ ।
इह भजमि आणउ, अणु[21] णिव माणउ[22], णियभुयदप्पकरालियउ ।।6।।

1 सेनाभि इत्यर्थ 2 ग रुद्ध
3 = केचिदित्यर्थ 4 क जुवति
5 क कुभहो 6 क उल्लहि
7 क ख वेणिदि 8 ग घ उयरहु
9 ख पामिव 10 ग घ जतगोलकय (यन्त्रगोलकै)
11 = कोटसमीपे 12 क भिउडहि
13 ख पउलि 14 क ख सिण्णु
15 ग घ जतहो तहो, जोहहि 16 ग घ मण्णइ
17 = मस्तके 18 ग. अणज्जु
19 ख घ णायहु 20 ग. तणउ
21 ख ग अर 22. ख. ग. घ. माणउ

(7)

इम भणिवि जाम सधेइ[1] वाण | ता धाइय भड कट्टिय[2] किवाण ।
किवि हक्कमित्ति[3] महियलि लुढति[4], | किवि वेयपवणपेल्लिय[6] पडति ।
किवि मुट्ठि केवि[6] धणु कोडि पिल्ल, | किवि चूरि वि वाणिहिं किय ससल्ल ।
ता धाइउ वलु चउरगु तित्थु, | सीहु व गुजारइ कुमरु जित्थु[7] ।
ना वेढिउ[8] णिव सुउ बहुबलेहि, | ण गरुडराउ णवफणिकुलेहि ।
ण बालसूरु तममंडलेहि, | ण जलण फुलिंगउ तण चार्हि[9] ।
ण हरिकिसोरु कुंजरगणेहिं | ण चरमदेहु[10] कम्मह हरेहिं ।
ना कुमरुधीरुहकार मेरु, | जहि हक्कइ नहि दिमि पडइ सेरु[11] ।
बल मायरि मदरु जिम चरेइ, | करिकु भिकु भिकरणहिं[12] सरेइ ।
सेणु व चिडिया[13] चचुहिं हणेइ, | वलु सयलु वि विवर मुहु कुणेइ ।
ना गलगज्जिवि धायउ[14] महिदु, | पलयब्भहु[15] रुट्ठउ णाइ चदु ।
कुमरे सधाणिक्खुरुप्पुदिण्णु, | पढमु जि आवनहु सीमु छिण्णु ।
ना सालसिहरि[16] ठिय णायरेहिं | जेइ कारिउ[17] कुमरु कयायरेहिं ।

घत्ता—जयवम्मणरेसरु, कयदु दुहिमरु, पुरुवाहिरि णीसरियउ ।
रण रेणु[18] पमगहु, नहि कुमरम हु, आलिगिवि बज्जरियउ ॥7॥

1 घ सघइ
2 ख घ कट्ठिय
3 = हकालमात्रेण
4 क ढलति
5 घ ० पिल्लिय
6 ग मुडकेवि
7 ख जेत्थु
8 क ख विट्टिउ
9 = तृणसमूहै
10 ख चमरदेहु
11 – आस्फालनै
12 घ ० किरणहिं
13 घ सिचानइव
14 घ धाइउ
15 घ पलयरही
16 क ग ० मिहर
16 ग घ जय
18 धूलि

(8)

णिक्कारणु तुहु सजाउ बधु, जं[1] महु वसणहुँ[2] धुरि दिण्णु खंधु[3]।
अह णिम्मलवसहु इहु सहाउ, ज परदुक्खहं ट्टु ति काउ।
किं मेहह गिरिगण उवयरति, ज दावाणलु आविवि समति।
आइब्बु पयासइ वाउवाइ, कुम्मु वि पुहवीहरु[5] धरणधाइ[6]।
मेइणि[7] लोयहो[8] सम्मट्टु सहइ, तरुगणि णिय सिरिफलभारु वहइ।
परकारणि एउज्जमु करति, किं लोय पासि किं पि वि लहति।
ता भणइ कुमरु इहु तुह पयाउ, कय पुण्णह कहं होही विपाउ[9]।
ता दुण्णि वि चडिया कुसुम रहे[10], सचल्लिय पुरवरि[11] रायपहे।
पोरगण[12] लोयण कमलपंति, णिवडइ[13] तहो उप्परि हरिसघति[14]।
किय मगले णिव मदिरि पइट्ठु आणदिय णरवर लोयदिट्ठु।

घत्ता—तहि मणिमयमदिरि, मण आणदिरि, णिव कयभत्ति पइट्ठउ[15]।
जा केलि करतउ, सुहु भु जतउ, अच्छइ सयल मणिट्ठउ ॥8॥

(9)

अह इक्कहि[16] दिणि ससिपह सहीहि, महदेविहिं मदिरि सगईहिं।
विण्णत्तउ णरवइ मयणरुड्ढु, सामिय किं अच्छहि कज्जमुड्ढु।
बालत्त जुवत्तणु अनरच्छ, पुत्तिहिं वड्ढइ[17] भारिय अवच्छ।

1 ख जे, घ जि
2 क. ख विसणहो, ग, महो वसणहो
3 क ख ० कधु
4 घ आवेवि
5 ग घ पुढवीभर
6 ख णइ
7 ग मेयणि
8 ख घ लोयहु = लोकस्य समर्दनम्।
9 = पापरहित
10 रबे
11 ख पुरवरे
12 ख घ पउरगण
13 घ वडइ
14 ग छत्ति
15 घ पहिट्ठउ
16 ग एक्कहि, घ एक्कहिं
17 घ. वट्टइ

जइयहु लग्गु दिट्ठु महिंद कालु, सो कुमरु मयणगुण[2] लक्खणालु ।
तइयहु[3] लग्गु चिंता वच्छरूढ किं पि वि णिहु पउ साएइ[4] गूढ ।
तह तत्तु अगु विरहाण लेण, जह मुत्तियकण[5] फुट्टहिं खणेण ।
जइ सहियणु णयणा सुअ[6] फुसेइ, ता हत्थि दड्ढु खणि जलु भसेइ ।
तहो जलयरकुलसत्ताउ जाणि, वाविहिं जलकेलिहिं कीयहाणि ।
हिम पिंडवि तत्तायसि मिलंति, जे सीयल ते तहिं[7] डाहु दिंति ।
तह चंदहो सा वीहेइ मुद्ध, जह दप्पणि मुह दसणि विरुद्ध ।
तह कोइल वीणा[8] सद्द तट्ठु, जह तियह वि वयणइ दिंति कट्ठु ।
तह णीलुप्पल[9] खडह तसेइ, जह सहिणह[10] णहु अहिलसेइ ।

घत्ता—पुणु कुमरहु[11] णामे, अमयहु धामे, जीवइ सा सुकुमाल तण ।
तहो रूवहिं लिहियहिं, अहगुणकहियहिं, णिव्वाहइ सारइणि[12] दिण ॥ 9 ॥

(10)

त णिसुणिवि णरवइ पुलइ अगु, जयसेणु हक्कारि वि ण अणगु[13] ।
ससिपह घल्लाविय[14] रयणमाल[15], ण णेहसरल पायवहु डाल ।
वीवाहहो[16] जा उवयरण हुंति[1], जा णिम्मित्तिय[18] सुह दिणु कहंति

---

1 ख ग, जइयहु
2 सयण०
3 ख ग, तइय हु
4 क ख णउ इवयेइ गूढ,
5 घ मोत्तियकण
6 ख घ सुय
7 घ तहो
8. ख ०वेणा
9 ग णीलुप्रल,
10 घ सहिणयणह
11. ग कुमरहो
12 ग सारयणि
13 ख. घ हक्कारिउ कुमरु विणु अणगु ।
14. ख क घल्लिवि वय
15 ख घ ० वरणमाल
16. ख घ वीवाहहु
17 ख घ होंति ।
18 ख जा णिम्मितियसुहु, घ जाणे मित्तिय ।

ता अजियसेणु[1] पयाव पहाणउ, इच्छतरि[2] अणिवक्कु[3] कहाणउं ।
वेयड्ढसेल दक्खिणाइ सेणि, रविपुर णामें पुरवरहो[5] छोणि ।
धरणीधउ णामें तित्थु राउ, खेयर सयचूडामणि पाउ ।
सो अच्छइ जाणिय मदिरत्थु, खेयर सामतिहिं पालियत्थु ।
धियधम्मु णामु तो[6] अमयारि, गयणहु[7] मग्गे संपत्तु दारि ।
कोडी[8] कोवीण विहूसि अगु, सव्वच्छवि मुंडिय[9] उत्तमगु ।
ता णिवि उट्ठि वि[10] किउ इच्छकारु,[11] ढोइउ[12] सिहासणु रयणसारु ।
सो पभणइ धिरु वइ सेवि तित्थु, हुउ आयउ कारणि तुम्ह इत्थु ।
जइ मुक्कउ धरु परिवारु बधु, तो णिव गरु अऊ मोहहो[13] पबधु ।
मइ सुणिउ सुधम्महो मुणिवराहु, त णिणुणहि णरवइ मुक्कमाहु ।
विउलक्खि णयरि जयवम्मु राउ, भूवलयमज्झि पसरिय पयाउ ।
ससिपह णामे तसु तणिय कण्ण, सोहग्गरासि लायण्ण पुण्ण ।
जो होही तहि कण्णाहिं[15] कतु, सो चक्कवट्टि हुहु पुणु कयतु ।

घत्ता — इय खुल्लय वयणिहिं, पयडिय मयणिहि, धरणीधउ मणितत्तउ ।
मेलिवि सामतइ, वेय चलतइ, विउल णयरि सपत्तउ ।। 10 ।।

(11)

ताम विमाणिहिं णहयलु छायउ, पचवण्ण मेहिहिं ण रायउ ।
ता धरणीधइखेयरणाहे,[16] विज्जामय किय तणु सण्णाहे ।

1. क. अजयसेण 2 ख पच्छरि, घ. एच्छतरे
3 ख. अण्णेक्कु 4 ख वेयट्ठ
5 ख पुरवरहु 6 ख., ग.–ता
7. ख. ग. गयणहो 8 ख. ग. घ. कुडी.
9 घ मुंडिउ 10. क उठिवि
11. ख इछपारु, घ. इच्छयारु 12. ख. ढोयउ
13 ख मोहहु 14 ग. विउल
15 ग कण्णाहि । 16. ग. ०धय०,घ. ०धर०

वयणकला विण्णास समज्जिउ, उद्धउ णामें हूउ विसज्जिउ।
गउ सो जयवम्महो णिव मंदिरि, पारमिय बहुमंगल सुंदरि।
जयवम्महो[1] अग्गइ[2] सो जपइ, दसण किरणु जुण्हइ धरु लिंपइ।
हउ दूअउ[3] धरणीधररायहो,[4] अग्गइ मुक्कल्लिउ[5] बहि आय हो[6]।
तुहु अमुणियकुलजाइ सहावहु, परदेसियहो[7] विवाहु करावहु।
पुणु ससिपहु तुह पुत्तिपहाणो, धरणीधर खगवइणा जाणी।
ता खगरायहु[8] सइ धुअ दिज्जइ, पइसिवि हठ कारें[9] मालिज्जउ।
दूय[10] वयणि जयवम्मु पलित्तउ, ण घूमद्धउ सप्पिहिं सित्तउ।
ता अजियसेणहो वयणु णियंच्छिउ, बोल्लिउ[11] तेण दूउ णिब्भच्छिउ।

घत्ता—रे रे तुहु[12] दूवउ[13], आउ[14] सिहूवउ, मादिब्बइ षहु जुग्गउ[15]।
णियसामिउ आणहि, काइ वियाणहि, जो भडवाए भग्गउ ॥ 11 ॥

(12)

त णिसुणिवि दूअउ पत्त ठाणि, जहवम्मु भणइ भो कुमर जाणि।
तुहु भुअबलु ए विज्जावलिट्ठ, ता सगरि जयसिरि होइ कट्ठ।
त सुणिवि कुमरु चितइ हिरण्णु, सो सपत्तउ सुरसिरिय खण्णु।
ता कहइ[16] कुमरु चितन्तु तासु, त सुणिवि सो वि भासइ सहासु।
जे अमुइ कीड माणुस हवति, ते सामिय पइ कि पर हवति।
जो सगरी मह पइ धरि हणेइ, सो मणु यहँ कहँ सका कुणेइ।
अह हु ति[17] विज्ज विज्जाहराह, पइ दिट्ठ सविणास ति ताह।

---

1 ख जयवम्महु
2 ग अगह
3 घ, दूवउ
4 घ धरणी धय०
5 ख मोकल्लिउ
6 ख. ०आयहु
7 ख परदेसियह
8 घ खगरायहो,
9. कारिं
10 ग, दूइय०
11 ख बुल्लिउ
12 क तुहु, ग तुह
13 घ दूअउ
14 ख आइ सिद्धा अउ, घ सिद्ध अउ
15. ग जोग्गऊ
16. ताहे केइ; ख ता कहिउ,
17 ख. होति,

इय जा भवरुप्परु बज्जरंति, ता णहि रणतूरारउ[1] सुणंति ।
ता दिव्वत्थहिं पूरिउ महंतु, सुरि रहुणिम्मउ बिउ[2] वाहवंतु ।
मारुहिउ कुमरु मगलु पवण्णु, सइ सजायउ सारहिं हिरण्णु ।
ता णहयलि ण घाबसहो[3] कालु, वेमाणमेह मिहि यतरालु ।[4]
इवलहलिय खग्गविज्जुलरसालु, रणतूरसहगज्जिरविसालु ।
सरघोरणिधारा जलु मुयंतु,[5] सपत्तउ खगबलु पुरि तुरंतु ।

घत्ता—त पिक्खिवि खगबलु, धाइय णहयलु, असुरिं[6] रहु सचालियउ ।[7]
सरहस धावतह, वाणमुयंतह, खयरह गणु पच्चारियउ ॥12॥

(13)

रे खयरहु जसु कण्णाहि ल.सु[8] सो माइवि ढुक्कउ अम्हपासु ।
गिद्धउ लह तुम्हह को विसेसु, ज णहि ठिय जो बहु महि पएसु ।
त णिसुणि विघायउ[9] खयरसेण्णु,[10] ण जलहि भुवण रिल्लण पवण्णु ।
तातें रहु गयणगणि चालिउ, कुमरें धणु गुणु करि अप्फालिउ ।
बेढिउ रहिवरु सइ[11] परिवाडिहिं, हक्किउ सुहडु खयर बलकोडिहिं ।[12]
एक्कु[13] गुयदह[14] सरगुणि सवइ, सउ ताणइ दहसइ अरिविवइ ।
इय[15] दिव्वत्थ पहावे सल्लिउ, कुमरें खग बलु सयलु वि पिल्लिउ ।
किवि सविमाणा महियलि पडति, किवि रहिसूबता खड हुडति ।
किवि सरपतिहि सल्लविय सूर, ऊहट्टि जति सगाम दूर ।
किवि सरसूडिय पाडिय विमाण, णासति केवि णियसेवि पाण ।

घत्ता—इय वियलिय पहरणु, बहुछडियरणु, णियबलु पिक्खिवि भग्गउ ।[16]
धरणीधउ[17] धाइउ[18], कोव परायउ, माइवि जुज्झण लग्गउ ॥13॥

---

1. ख घ तूरह
2. ग णिम्मिउ
3. ख पाउसहु ग पाउसहो
4. ग अतरालु
5. ख मुयतु
6. ख असुरें रहु णिम्मिउ
7. ख सचारिउ
8. घ यासु,
9. घ. विघाइउ
10. ग घ.० सिण्णु,
11. 4, ख घ सय'
12. ख ग बलकोडिहि
13. घ इक्कु
14. ग. गइदह,
15. घ इह,
16. घ. पेक्खिवि,
17. ग. धरणोधउ
18. ग धायउ

(14)

पहरते धरणीघइ चिंतिउ, भूगोयरहो विज्जबलवंतिउ।
तं चिंतिवि दिव्वस्थ समिज्जय, धणतम गामें विज्ज वि सज्जिय।
रवि बाणिहिं[1] सा कुमरें खडिय, ता घण विज्ज खगिंदें मडिय।
कुमरें सा बिहु अणिलिं दडिय, पुणु खयरिं फणि बाण पयडिय।[2]
तें कुमरें गरु डेण विहडिय, ता खयरिं[3] सविज्ज सवि छडिय।
अइ बहुकोव तिमिर-पाराइउ,[4] कट्टि[5] वि खग्गु विमाणहु[6] धाइउ।
जा आइवि सो सदणि ढुक्कइ, ता कुमरें कर सव्वलु मुक्कइ।
उरि णिभिन्नउ तिण[7] खडि हुडियउ, ण धाइवि कालहु मुहिं पडियउ।
ता अप्फालिवि तूर तुरतउ, णयरहो णरवइ मगलवतउ।
णिक्कलियउ जय जयहि भणतउ, णियहत्थिहिं चाम ढालतउ।
ता सुरु सुह वयणेहि समज्जिउ, कुमरें णिय आवासि वि सज्जिउ।
हरिसियणायर मगल पुट्टउ, सइ पुणु तहि णयरम्मि पइट्ठउ।

घत्ता--सुह जो यह मेलइ,[8] णिरु सुहवेलइ, ता विवाहु सपाइउ।
कय दिण अच्छेविणु, ससिपह-लेविणु, णिय णयरहो ता आइउ[9]॥14॥

(15)

पुण्ण मणोरह हरिसिय पियरइ, रोमचिय बहु सज्जण णियरइ।
पुरु परियणु आणद गहिल्लउ, आयउ[10] भेट्टण सव्वु वहिल्लउ।
ता ताए णियरज्जिपरिट्ठिउ, मगलकोडिहिं चारु परिट्ठिउ।
ता चिरभवकयपुण्ण पहावें, चक्काउह णामस्स[11] सहावे।[12]

1. घ वाणेहिं। 2 क. पयपइ, घ, पयपिय
3 ख. खयरेंस 4 क पराइउ
5 ख कच्छिवि 6. ख घ. विमाणहो
7. ख तेणि 8. ख. मेलए
9. घ. आयउ 10 घ. आइउ
11. ग णामेण, 12. ख. आवह सालहिं मह सब्भावें

चक्करयणु सइ आइवि सिद्धउ सइ सिक्कें[1] आरेहिं समिद्धउ ।
सोलह सहसिहिं[2] जक्खिहिं रक्खिउ[3], जिट्ठमास[4] आइच्चु व लक्खिउ ।
सुर असुरहं[5] दिढदप्पु मूलणु, मुक्क अमोहु सकुल अणुकूलणु ।
असिवरु अरिसिरि वेणु[6] समाणउ, तेयजलण धूमहु उमवाणउ ।
तहिं जसु लुट्टइ तिणि गुणि कालउ, सिय जस णिज्झरु तिणि सिउ आलउ ।
अरिपाणाणिलु वायलु[7] भक्खइ कपहुतु अप्पहु किहु[8] रक्खइ ।

घत्ता—कामिणि मणिसिद्धउ, तेय समिद्धउ, सोमसूरजें लिहियउ ।
खणि तिमिरु विणासहिं, वत्थुपयासहिं, वलहु[9] किरण ।
भरसहियउ ।।15।।

(16)

विज्जुलरयणु जल घम्मह वारणु, बारह जोयण आयव वारणु ।
गहिरमहाजल तरणिहिं महियउ, बारह जोयण चम्मु वि कहियउ ।
चूडारयणु सुतेय समिद्धउ, णासिय णिसितमु आविवि सिद्धउ
हत्थि रयणु ण जगम मंदरु, गयघणासिय गयघडसु दरु ।
दतमुसल जुउ तसु पडिहासइ, फुट्टियसिर मणिकतिव वीसइ ।
मणवेयालउ चवलु तुरगमु, वेयहं तेयहं णावइ सगमु ।
दडरयणु कुलिसु वत सुसिद्धउ, वज्जसिलाभेयणपडिबद्धउ ।
उवरो हिउ बहुविज्जा महियउ, बहुविह विग्घविणासण[10] महियउ ।
इट्टु व सेणावइ अवयरियउ, पवर परक्कम गुणपरियरियउ ।
तिय रयणु[11] विथी गुण सपण्णउ, मय भोयासत्तउ जण मण्णिउ ।[12]
थावरजगमगेह घडावणु, सुत्तधरणु सिप्पागम जाणणु ।
आयव्वय कर णिज्झइ णिउणउ, गिहवइ जायउ मूसिय भवणउ ।

---

1. च. सक्कि
2 ख. सहिं
3. क. रक्खियउ
4 ग. जेट्ठ
5 ख. असुरहु
6. क. ख. वेणि
7. सर्प इत्यर्थः
8 गह.,
9 ख घ बहल
10 क वरण
11. च पणु
12 पक्तिरियं कपुस्तके नास्ति

घत्ता—इय चउदह रयणिहिं, चिंतादमणिहिं, सो कयत्थु सजायउ ।
ठिय णवहिं णिहाणहिं, बहुधण खाणिहिं, इह सोहइ[1] सत्थायउ[2] ॥16॥

(17)

पडुव णिहि[3] सवि धण्णइ पूरइ, पिंगलु विब्भाहरणइ पूरइ ।
छहसमयहु फल कुसुमइ आणिवि कालु समप्पइ बच्छा जाणिवि ।
चउभेयइ बहुतूरइ देयइ,[4] सवणिहाणु एम्ब[5] तसु सेवइ ।
सव्व समय सुहउ सरीरइ पोम णिहाणु देइ बहुचीरइ ।
मणिकण याइय घर उवयरणइ, देइ महाकालु वि मणहरणइ ।
माणउ छत्तीस वि दडाउह, मग्गिउ देइ पयासिय अरिवह ।
णेसप्पु वि सयणासण आणइ, सामिउ जारिस णिय मणि माणइ ।
सव्व णिहाणु सत्थु तसु पूरइ, चक्कउ हु चिंतामरु चूरइ ।
छण्णवइ सहस अंतेउरराणी[6] तसु हूवइ णिज्जिय अच्छरराणी ।[7]
वत्तीस सहस सामंतयाहु,[8] सक्कु वि आमकइ भत्ति जाहु ।[9]
सय तिण्णि सट्ठ सूयार तासु, किंकर तिकोडिणउ[10] मूअइ[11] पासु ।
चउरासिय लक्खइ गयवराह, तित्तियजि गणिज्जहिं रहवराह ।
कोडिउ अट्ठारह हयवराह, तिण्णि जि कोडिउ वरधेणुआह ।[12]
बत्तास सहसवर मडलाह, करसणि जुप्पइ कोडी हलाह ।

घत्ता—इय सिरि परियरियउ, बहुगुणभरियउ, गव्वह दोसह[13] मुक्कउ ।
महियलु पालतउ, पिमुणहणतउ, जा अच्छइ सुहि थक्कउ ॥17॥

(18)

1 ख, सोहेइ
2 क ख सच्छायऊ
3. ख घ णिहि
4 क ढोअइ
5 ख. एम
6 क रेण, ख राणि
7 ग राणी
8 क याह
9 क जाहु
10 ख घ णहु
11. ख मूयइ, घ मुयइ
12 क वाहु
13 ख सव्वमरु, घ. दोमे

ता गज्जिउ गहु दुंदुहिरवेंग, वाइयहि सुयंधाणिलुभरेण ।
गयावउ बरिसहिं धणकुमार, भू बोहारहिं माख्य कुमार ।
सव्वत्त् कुसुम पूरिय वणतु, धावहिं सुर णहिं जय जय भणंतु ।
सपत्त् सय पहु तित्थयरु, पडिबोहिय तिहुयण भव्वयरु ।[1]
अजियजउ सहु चक्काउहेण, हरिसे वंदण चल्लिउ जवेण ।
गउ समवसरणि दिट्ठउ जिणिदु, बहु भत्ति करण वाउलु मींहदु ।
हरिवीढिणि सण्णउ झाण लीणु, णिम्मलकेवल सुहरसपवीणु ।
करमउलिवि तिपयाहिण करेवि, पचम पणामे सो णवेवि ।[2]
अपुव्वहरिसभारे[3] गरिट्ठु,[4] ऊहट्ठि वि खर कुट्टइ वइट्ठु ।[5]

घत्ता—अइ भत्ति थुणे विणु,[6] पूयकरेविणु, तच्चइ जाण ण वसइ ।
कर जुउ मउलेप्पिणु, विणउ करेप्पिणु,[7] अजियजउ णिउ पुच्छइ ॥18॥

(19)

इह[8] सामिय भीसणु भवपबधु, सुद्धप्पहो कह सभवइ बधु ।
अव्वेयणु कम्मह फुडु सहाउ, जीवहो[9] सव्वेयणु णिच्चु भाउ ।
ता भिण्णगुणह कह[10] होइ सगु, एहु सुद्धणयणि चित्तहो[11] पसगु ।
अह जइ बद्धउ कह जणिय सुक्खु, जीवहो[12] सपज्जइ सुद्ध मुक्खु ।
ता परमेट्ठिहि सव्वगवाणि, उल्लसइ सव्व सदेहहाणि ।
हुट्ठउ[13] हयफदण सासमुक्क, जायणु पसरणि फुडु वण्णचुक्क ।
विडपचभेय[14] मिच्छत्त लीणु, अप्पा बंधिज्जइ दिट्ठि खीणु ।
अप्पा फलिहु व णिरु णिम्मलगु, आसव सरिच्छु सो धरइ रगु ।

---

1 ख सव्वयरु
2 ख. स णमेवि
3 ख अणुवम हरिसें०
4 ख रिट्ठ
5 ख कोट्टुइ वइट्ठ
6 क. ख पिणु
7. घ. विणई णवेप्पिणु
8 ख इय
9 ख जीवह
10 ख घ कहि
11 ख घ चित्तहु
12 ख घ जीवहु
13 क. हुट्ठयउं, खं हुट्ठउ
14 ग विट्ठ

जह जह[1] विवरीयउ हुवइ भाउ, तह तह[2] खिज्जइ सुद्धउ सहाउ ।
जह सच्छ जलरण किस पमुह दव्व, पुरुसे उरि घित्तइ हरणहिं सव्व ।
तह अव्वेयरण कम्मइ मलाइ, जीवें लइयइ पीडहिं खलाइ ।
जह रिणम्मलु एहु सफरइ[4] रत्तु, तह पचहि देहहिं जीउ सत्तु ।

घत्ता—ससारहु कारणु, दुक्ख-रिणवारणु, तह अविरइ जारिणज्जहिं ।
सा पुणु वारहविह, बहुदोसावह,[5] महजयरणेरण विवज्जहिं ।।19।।

(20)

अण्णुवि परणवीस कसायरत्तु, वधिज्जइ कम्मिहिं दुहु विगुत्तु ।
जह वारि कसाय पमारण रगु, तह जीविवि कम्मह हुइ पसगु ।
जह पण्णारस जोगेहिं वधु, पूरिज्जइ सरि तहिं लवरणसिंधु ।
इम बद्धउ कम्मिर्दि सुद्ध जीउ सिल मडि पिहिउ रणावइ पईउ ।[6]
ता पच पयारइ भवि चरेवि,[7] चउगइ[8] बहु जोरिणहिं ससरेवि ।[9]
ता खिल्ल विल्ल सजोउ वहइ, दुल्लहु मणुयत्तणु कहवि लहइ ।
तत्थवि पुणु जुम्र[10] समिलारणएण, हुइ अज्जखडि पुण्णें कएरण ।
पुणु अवि चिडिय जोएरण तित्थु, सुहकुल जाई सुव हुइ कयत्थु ।
ता परसेवा दालिद्ददद्धु,[11] हिंडइ घरवासहो पासि बद्धु ।
तहिं हु तहो जइ हुइ काललद्धि, जइ भव्वत्तणु सलहइ सुद्धि ।
जइ कम्म गठि सभेउ सिद्धु, तो कहवि कहवि सम्मत्तु लद्धु ।
त लद्धु[12] पुरणवि जेइ वमइ कोइ, तहु अह महु को उवमारणु होइ ।

घत्ता—जइ पुणु दिढु[13] सद्ध सणु, दोस रिणहसणु, गुरण जुत्तउ पडिवज्जइ ।
ता कमि किसियतउ, गाढमुअतउ, कम्म पडलु रिणरु भिज्जइ ।।20।।

(21)

इह जह[14] जह तुट्टइ कम्पासु, तह तह अप्पा पयडइ पयासु ।

1 क जह जह
2 क. तह तह
3 ख जहिं
4 ग सभाइ, घ सभाए
5 ग ० बहु
6 ख पइउ घ. पडीउ
7. ख चरेइ
8 क ० गहि
9. क सभरेवि
10 ग जुय
11 क दधू
12 क लहिं, वि ख लहे
13 ग दिढ्
14 घ इय

ता दव्वाइय सामग्गि लहइ, ता दुद्धर चरणहु भारु बहइ ।
ता हणिवि घाइ कम्मह विपाणु, उप्पाइवि केवलु सुद्ध णाणु ।
इय हणिवि सयलु ससार दुक्खु, जीवहो सपज्जइ राय मुक्कु ।
त णिसुणिवि अजियजय रायहो, संसारिय सुह जाणिय विरायहो ।
पुत्त कलत्त मोहु ऊहट्टिउ, मणु णिव्वेयहो फत्तियपयट्टिउ ।
णिम्महिय सयल ससार दुक्खु, जिणपाय मूलि सगहिय दिक्खु ।
तेरहविहु चरणहु घरिउ भारु, पालइ बारह सजमह सारु ।
बारह विहु दुद्धरू तउ चरेइ, इय कम्मपास छिंदणु करेइ ।
जियसेणि गहिय सावय वयाइ, खाइय सम्मत्त सम कयाइ ।
ता बंदिवि जिणु अणु पियरपाय, जियसेणु भणाइ भो ताय ताय ।
पइ साहु-साहु आयरिउ चरणु, ज जिण वयणह आएसु करणु ।
जे सुणि वि धम्मु ण वि सगहति[1], ते चपा पुरि सुव णर हवति ।
इय णिरु भणेवि णिय णयरु पत्तु, मणिहरिस सोय सवेयपत्तु ।

घत्ता—ता जिणपय णमणिहिं, बहु सुह करणिहिं, सो दिणाइ[2] अइवाहइ ।
चउविहि वहुदाणइ, कय गुणि माणइ, सावयत्तु णिव्वाहइ ॥21॥

इय सिरि चदप्पहचरिय महाकइ जसकित्ति विरइए
सिरि सिद्धपाल सवणभूसणे, जियसेण सायारधम्मलाहो णाम
चउत्थो सधी समत्ता ॥ 4 ॥

1. घ. आयरति
2 घ दिणाणि

पंचमो संधि

(1)

ता चक्काइय रयणइं पुज्जिवि, सयलवलह[1] सामग्गिसमज्जिवि ।
पुव्व दिसिहि[2] पयाणु[3] वियण्णउ[4], वज्जिय दुदुहि सद्द[5] रवण्णउ ।
चक्करयणु अग्गइ थिउ वल्लइ, खधा वारु पुट्ठि तसु हल्लइ[6] ।
जतउ जतउ पुव्व ममुद्दहो, तीरि पराइय[7] सलिलरउद्दहो ।
तडहु तइ जोयण चउवीसहि, मागह देवह भवणइ दीसहि ।
बारह जोयण चम्मु पसारिउ, तहो उप्परि रहवरु सचारिउ ।
बारह जोयण बाणु पमुक्कउ, मागह भवणहो जाइ वि ठुक्कउ ।
जा णामकिउ तहि[8] सर दिट्ठउ, ता गलगज्जड[9] मागहु रुट्ठउ ।
मतिहि मिक्खिवि सेवकराविउ, मणि पाहुड तेसणि वियराविउ[10] ।

घत्ता—मागह[11] करु लेविणु, विणइ ठवेविणु, दक्खिण दिसि सो वल्लिउ ।
जलणिहि तडि आवेविणु, वाणुरए विणु, व तणु दडिवि मिल्लिउ ।। 1 ।।

(2)

तह[12] पच्छिम परिहासु वि साहिवि, वायव मिच्छह करु उग्गाहिवि ।

---

1 ख बलह, घ ०वलहि
2 ग ०दिसेहिं,
3 क ख पायाणु,
4 ख विइण्णउ, क वियण्णउ,
5. ख सद्दु,
6. ख. हल्लइ,
7. क परायउ
8 क तहि,
9 क गज्जइ,
10 ख वियरायउ,
11. घ मगह,
12 ग तह ।

सोणावइ हरि रयणि चडाविवि, दडें तिमिसह दारु फडा विवि ।
अद्धवरिसु गुहदारियव सेविणु, ता उल्हाणिय मुहिपइ सेविणु ।
खडियरयणि ससिसूर लिहेविणु, एयारह दिणविट्ठि सहे विणु ।
छत्त अजिण[1] सपुडि वलु णेविणु[2], वायकुमारिहिं मेहजिणे विणु ।
मिच्छखड सामिय दडे विणु, वसुह[3] गिरिहि णियणामु ठवे विणु ।
णियपुरि सत्तण गव्वु मुए विणु, गगादेविहिं अग्घु गहेविणु ।[4]
ईसाणह मिच्छह करु लेविणु, ——————————— ।
अण्णवि अणमिय रिउ उप्पाडिवि, वेयड्ढहो खयरह पइ पाडिवि ।

घत्ता—गुहदारु उघाडिवि[5], दडे फाडिवि, गगसुत्तु जहिं पत्तउ ।
तहि मग्गिसरे विणु, पुहवि जिणे विणु, णियणायरहो सपत्तउ ॥2॥

(3)

साहिवि छक्खडइ चक्कणाहु, जा अच्छइ जयसिरि सुहसणाहु ।
ता सोसिय विरहिणि रुहिरमासु, सपत्तउ तित्थु वसत मासु ।
हिमदड्ढ सयल उववणहिं कालु, ऊसरिउ झत्ति[6] हेमतु कालु ।
वालाणदिति णिय अहरि मयणु, सव्वत्थ वि सघइ वाण मयणु ।
उल्लसहि सरोवरि चारुकमल, णिच्चल णिवसइ सइ जेसु कमल ।
मजरि पिंजर पिच्छि वि रसाल, हा पहिय मरहिं विरहिं रसाल ।
कोइल[7] हक्किय तियमुयहि माणु, जाणिवि दुस्सह कामहु[8] पमाणु ।
मलयाणिलि सुरहिउ सव्वुलोउ, मल्लोरय पिंजरु णहविलोउ ।

---

1 ग घ अयण,
2 क ख. देविणु,
3 क ख वसुह,
4, क ०महेविणु,
5. ग. उघाडेवि,
6 क ०मत्ति
7. ग कोयल०,
8 क. कामहो ।

तिय पय ताडिउ विसयइ असोउ, कामिरिण कुट्टिउ सव्वु वि असोउ ।
दावाएणल सिरिदरिसहिं पलास, एां कामरिगहुय पहियह पलास ।
महु[1] गडसहि फुल्लति वउल, तियमुत्तुवि वछहिं विसय चवल ।
दिसि एरि गहहिं वहु कुसुमवासु, महुमासु सयल विसयह रिगवास ।

घत्ता—पाडल विल्लहिं[2], वियसिय फुल्लहिं[3], मज्झु गहिवि अलि गायहिं ।
एवइ रइकतहो सिविरि चलतहो, काहल सखइ वायहिं ॥3॥

(4)

ता अतेउरु[4] वहुपरियरियउ, एरवइ केलीवरिण सचरियउ ।
कुसुमेक्कतु[5] तित्थु वरिए[6] दिक्खइ[7], सरवरि सणु[8] विसमेसु व सिक्खइ[9] ।
के पइ रय रासिहि वणु धवलिउ, मयरण रिगवहु कित्तिहिं ए सवलिउ ।
अलिउलि अधारिउ तहि वरणु, ए मयरण मोहु पच्चक्खु हुतु ।
कामिरिण कुल तहि कुसुमइ गहति, ए कामवारण कोवि[10] खुडति ।
कुवि वरणमाला रिगयउरि करेइ, ए कामगेहि तोरणु भरेइ ।
कतें एव वहु चुंबिय रिगरु जि, ककरण खु बावहि माणु[11] भजि ।
कुवि सिर उप्परि पोमुभ माडइ ए वयरण होऊ[12] यारणि पाडइ ।
कासुविमुह तडि अलिउलु भमेइ, ए राहु विवु चदहु कमेइ ।
कासु वि कते[13] किउ गुत्तभेउ, ए वज्ज पहारें[14] गुत्तभेउ ।

---

1 क ख °मुह०,
2 क विल्लवि, ख वेयल्लह,
3 क ०हि
4 क. तातेउर०,
5. ग ०मवकतु,
6 क. वणु,
7 घ देक्खइ,
8 ख. होउ
9 ख. सिखइ,
10. क. ख. घ. कोवे,
11 क मोणु,
12 ख. होउ
13 ख कति
14. ग पहाव ।

तह माणजलणु सजलिउ झत्ति, जह मयण बाण ततिय वरत्ति ।
किवि चपयमाला सिरि करेइ, ण कामजलण आलिहिं बलेइ ।

घत्ता—इय वणि वियरतह, केलि करतह, णारिहि समु सजायउ ।
धणरमणि लुलतउ, से उजणतउ, सइ पडिकतु व ग्रायउ ॥ 4 ॥

(5)

ता णरवइ[1] सर सम्मुहु चल्लिउ, महु महु मलयाणिलि पिल्लिउ[2] ।
घणसेलह भारेण कणतउ, ग्रवला जणु खिज्जइ पहिजतउ ।
काहिवि पहि रसणा बुवावइ, मज्भु तलिणु तुट्ट तु व भावइ ।
घण घुव्वह[3] कि[4] ह भारु सहेसइ, पच्छा दूसणु महो जणु देसइ ।
ण पढमु जि सलिल तलि णगी, धाइवि सेयमिसिण ग्रालिगी ।
जो दहु पुरिस पमाणउ दिट्ठउ, सा तिय णहिहि सयलु पइट्ठउ ।
चक्कजुग्रलु[6] जलु छडिवि णट्ठउ, जउ थण कु भह विच्छरु दिट्ठउ ।
दिक्खिवि ताह ललिय गइ सचरु, हसा णट्ठा मिल्लिवि[7] सरवरु ।
बहु घण सेलहिं सो सरु महिउ, ग्रण्णु वि पाय पहारिहिं णिहियउ ।
तह हासु व सो[9] फेणु जि दरिसइ, णिम्मलु ग्रवरुवि कहवि ण विरसइ ।
जलि णय णहि ग्रजणु पक्खालिवि, कमलिहिं सहु णिह साविय मेलिवि ।
जइ जावइ[10] रसु पायह फिट्ठउ, तो रत्तुप्पल सोरहु[11] उट्ठउ ।[12]
जलि ग्रलि सहु केयइ पत्तु तरइ, ण धीवरि चोईय णाव तरइ[13] ।

---

1. क. णरवरु
2 ग घ पेल्लिउ,
3 ख ०घुव्वह, ०घ घुवह
4 घ. कह
5 क ०सेय०,
6. ख ०यलु०,
7. ख मेल्लिवि,
8. ख तह
9 क जो ।
10. ख. जावय,
11 ख. सोहगु
12 ख. उहट्ठउ.
13. क. ख. ०चरइ

घत्ता—इय जा जलि कीलइ, परिसमु मीलइ, णरवइ तियगणजुत्तउ ।
ता पविरल[1] किरणउ, जग श्राह रणउ, पच्छिम दिसि रवि रत्तउ ॥ 5 ॥

(6)

ता जलकेलि मुग्रवि[2] पुहईसरु[3], गउ गेहहो बहु कामिणि परियरु ।
सूरु वि दिणति अत्थवणिपत्तु, सो मूढउ जो इह गव्वजुत्तु ।
रविरहहो तुरग मवेय पुण्ण, णिसि मुह[4] सेरिहे सिगब्भभिण्ण[5] ।
ता रुहिर पवाहि[6] सिंधु जणिय,[7] लोए[8] सा सभा णाम भणिय ।
छुडु सूरें[9] जलणिहि भादिण्ण, तावहिं तारा सीयर पवण्ण ।
बहु उवयारहो सुमरयणि[10] थक्कहिं, रवि सताव[11] लइय फुडु चक्कहि ।
त[12] रवि सभइ[13] सीयलु जायउ, चक्क मिहुणु पुणु ताव परायउ[14] ।
धवलु विकालु विइक्क[15] वियारऊ, मुक्कहो रज्जु व ठिउ अधारउ ।
तम भरु दीवय णिरु[16] उरि पिवति[17], अम्म[18] मुव कज्जल मिसि वमति ।
पोमिणि मीलइ पिरु पोमणयण, मुच्छिज्जइ पियविरहि ण कवण ।
उरि जलिय काम उज्जालएण, सयरिणि पिय घरु वव्वहि सुहेण ।

घत्ता—ता तम भरु णट्ठउ[19], राय गरिट्ठउ, पुव्वसेल सिरि दीसइ ।
कई[20] खवणु व हासइ, भुवणु पयासइ, माणिणि सिक्खा सीसइ ॥ 6 ॥

---

1 ग ०रल,
2 ख घ मुणवि,
3 क ०वीसरु,
4 ग घ महु,
5 ख घ सिगग्गभिण्ण,
6 ख बाहे,
7 क मिलिय,
8 ग लोए
9 ख सूरि,
10 सुरमणि,
11 ख ०सताव,
12 खा ति,
13 ख सभा, क स भइ,
14 ख पराइउ,
15 विऐक्क,
16 ग णिरु
17 क घिवतु, घ. पियति ।
18 म हम्म
19 क कय,
20 पाय

(7)

पुव्वंगणु पढमु जि आलिंगी, पिच्छि वि णिसिता कोवि पसगी ।
जावय लित्तें पाए[1] हणियउ, तें कारणि ससि रत्तउ जणियउ ।
काम किरा डह ससि जाणपत्तु, गयणयल जलहिं सवरणिपत्तु ।
तम भरु ज ससि णिम्मलु भक्खइ, उरिठिउ[2] त जणु लछणु पिक्खइ ।
महु अरि ससि जिप्पइ तियमुहेण, इय चिंतिवि तमु कवरी छलेण ।
तहो[3] पिट्ठणि सण्णाउ चंदुलेवि, कुसुमच्छलेण ससि किरण केवि ।
कइरव वणि भमरा रुणु[4] झुणति, ण ससि हयतमवधव रुवंति ।
चदिणि सयल भुवण तलु धवलिउ, हरि सियमयण हासि ण सवलिउ ।
सयरणि कडक्ख तत्तहिं, सरेंहि ससि अमिय कु सु भिण्णउ[5] खरेंहि ।
ता किरण दभि पीयूस विद्धि, पझरइ धवल तें हुअ सिद्धि ।
तिय माण सेल दारट्ठ[6] पुण्णु, ससि वज्जाणलि तें करि वि चुण्णु ।
ता धवलिउ गयण[7] कुविंदि लोउ, भणणह कह एहु पयासु होइ[8] ।

घत्ता—इय पिक्खि वि चदिणु, मण आणंदिणु, कामिणु जणु सण्णज्झइ[9] ।
पारमिउ मडणु, जगमणु दंडणु, कत चित्तु जि[10] विज्झइ[11] ॥ 7 ॥

(8)

हरियदिणि[12] किवि लिपति[13] अगु, ण विसि पाइय णियसरु अणणु ।
मुहिं एण णाहिं वल्लीरयति, ण काम भुवण जुयलि वि लिहति ।
किवि हारावलि णिय गलि कुणति, ण मुह ससि सेवइ उडुह पति ।
किवि रमणि धरहि मेहलह माल, ण कामहो मदिरि तुगसाल ।

1 पाय
2 ख उरिविउ,
3 ख. घ तहु, ग तहिं,
4 घ ०जणु,
5 ग भिष्णउ,
6 ख ०रट्ट
7 क ख. मयण,
8. क. ख घ ख. होइ
9 ख. ०मण इज्जइ,
10 ख जि, घ. ग. जें,
11 ग वज्झइ
12 ख ०दणु, ग दणि ।
13 क. लपति

बहु अग कति सारिच्छ चोर, तहिं पहिरहिं गिरु सुरहिय सरीर ।
ता कालायरु[3] धूमच्छलेण, ण विरह दुक्खु तियणु मुएण ।
सो सिंगारहु भरु तह[2] जायउ, जें कामु वि कामे सुपराउ ।
ता पुहवीसरु[3] तिय णु विलसइ, भमरु व पोमि पोमि आवासइ ।
सेविवि सेविवि काम पलित्तउ, ता तिय रयणहो धरि सपत्तउ ।
जा सयल काल कामे पलित्त, जा बहु कालेण वि जरइ वत्त ।
जा सखणाहि सारिच्छ जोणि, जा णिरु पचिदिय सुक्खखोणि[4] ।

घा—तहिं[5] सुरइ[6] पसगिउ, बहु सुहि अगिउ, णिद्दा सुहु किरणाणइ ।
ता दीव घुणतउ, सेउ हणतउ, मिसिरासिलु रइ आणइ ॥ 8 ॥

(9)

णिय बसु परिवार कलाइ मुक्कु, ज राया किर अत्थव गि ढुक्कु ।
त कइरवढुह मीलत तु ड, अलिकुल मिलनि ण रिसह खड ।
तम भिव्व व जे णिसि कमल कोस, पइ सिवि अलि लुक्कहि[7] जणिय तोस ।
ते कुक्कुड रव काहल मुणेवि, पीसरहिं सूरु आवउ भुणेवि ।
छुडु तम तक्कर णामण पइट्टु, पुन्वगण उट्ठइ[8] रत्तघट्ठु[9] ।
सझा[10] विद्दुम वणु विच्छइ, रविविबु पक्वफलु ण धरइ ।
मूईहु अल्हिक्कहि घूअ गण, ण धम्म विवज्जइ णरवर पिसुण ।
रइ घर जालिहिं रविकर विसति, ण तत्त मयण णाराय इति ।
जिण भवणि[12] रसहि पाहाय तूर, ण भउ हक्कहि सम्मत्त सूर ।

1 क ख कालायरु,
2 ख सो सिंगारहु, ग सो सिंगारभारु तहो
3 ख पहवी,
4 ख० ०खेणि,
5 घ तहे,
6 घ सुरय
7 ख अलिल्हुसहू,
8 छ घ उट्ठइ,
9 ख घ. ०घट्ठु
10 ख सभा०
11 ख अल्लिक्कहिं,
12 ग भवण ।

घत्ता—चूरिवि पय भारें, दरिसिय सारें, मसह पिंडु व मुक्कउ ।
मल रुहिर गलतउ, हड्डुललतउ, मणु भावय[1] वहिं चुक्कउ ॥10॥

(11)

त पच्छिवि[2] णरवइ[3] चिंताविउ, दुक्ख जलण जालहिं सताविउ ।
हा ससार जलहि भीसावणु, मणुयहं[4] णडउव[5] णिरु णच्चावणु ।
त हउ जगि णहु कि पि ण[6] देक्खमि[7], मणुय मरणु ज किरणहु लक्खमि ।
जेण बि जीवइ तेण बि मरेइ, ता मण्णहु किह णहु भउ घरेइ ।
दुहि वुट्टुवि णहु वेरग्गि जाइ, जाणिवि जाणिवि णहु तच्चि ठाइ ।
बहु गेह कज्जि[8] गहिलिय मणेण, जमु पत्तु वि णवि दिट्ठउ जणेण ।
पावहु णहु वीहइ विसय सत्तु, बुज्जविउ ण वुज्जइ मोहरत्तु ।
जइ[9] कोई[10] दयावरु कहई तव्वु, त णिसु णिवि णउ मणोइ सव्वु ।
जीवहु[11] णिय देहु वि वेरि ठाणि, मूढउ भवि णिवडइ मप्पु जाणि,
जहि देहहु किरपरि सुसरुउ[12], को किर संपिक्खइ तासु रूउ ।
णारी करकि[13] णरु काउ गिद्ध, जमि पारद्धिए[14] बाणेण विद्ध ।
सइ ज तउ सिरि वउ देइ दुक्खु', पढमु जि मुक्कउ पुणु जणइ सुक्खु ।
ता हउ णिच्छउ पवह करेमि, भव कारणु सयलु विपरि हरेमि[15] ।

---

1 क. भावइ
2 क ख ग पिच्छवि,
3. घ. णरवरु
4 क ख मणु वहु,
5. क. ख णडयउ
6. क बि
7 क. दिक्खमि
8. क. कज्जि०
9. क. जय
10. क. को बि
11. क. घ. जीवहो
12. क. ससुउ, ख. सरउ
13. क. कण्णकि, ख. करेंकि
14. घ. पारद्धी
15. क. हरेवि

रविलेय पयासिय धरपएस, सव्वनछवि गासिय तम असेस ।
ता मगल तूरहिं हरिगम गिदु, उट्ठिउ पुहईसरु विगय तदु ।
किय सयल पहायहु गिव्वकज्जु, ताह वि पहिली किय देवपुज्जु ।
ता कणयरयणि आसणि वि इट्ठु, सहमडवि इदु व णरहिं दिट्ठु ।

घत्ता—तावहु सामतहि, अण्णु विमतिहिं, सिरुधरलाइ वि धदियउ ।
किय अवसर धवणिहिं, सुमहुरवयणिहिं, कय वदिय णिहि णदियउ ।।9।।

(10)

ता जयकु जरु सेवय आयउ, ण अजण गिरि चलण परायउ ।
दीहरघोर सुवद्दुलहत्थउ[3], अइ गुरु कु भि समुण्णइ[1] मत्थउ ।
पविसद[2] सणु महु पिगल लोयणु, आयविर णहु वक पलोयणु[3] ।
सत्तिहिं[4] ठाणिहिं मउ वरिसनउ, णिय छाया बिंबि विरु सतउ ।
दिग्गय बलु णिव मणि चिंततउ, उह दिसि फुट्ट सहसणिह[5] दतउ ।
कर सीयर भरिधर[6] सिंचतउ, कु भिय मतरयण ण दितउ ।
पयभरि कुम्मपुट्ठि चूरतउ, रणकेली विणु णिरु भूरतउ ।
विक्खिवि णिव पडिकावखड विक्खिय धाइय करि दमणाइ जिहिं[7] सिक्खिय ।
कर पिछइ कुवि णिह णइ पुरत्ररि, तह कुडि धावइ जा कोवह भरि ।
ता[8] अण्णिक्कु वि आरी धायहिं, पुत्तिहिं धाइवि खु चइ पायहिं ।
ताताहो पुट्ठि चलइ जा करिवरु, पासिहिं धाइवि सहु णिहणाइ कुवि णरु ।
इय तिहिं जा सो करि खिल्लाविउ, णिअभच्छण वयणिहिं वुल्लाविउ ।
तांति कहत्रि इक्कु णरु गहियउ, पायधरिवि[10] भूमी सहु णिहियउ ।

1 क समुष्णइ,
2 क कविसद,
3 क लोयणु
4 ख अट्ठिहिं,
5. ए सहसणि
6 घ लरिधर,
7 क घ. जह, जिहि
8 क तो
9 क आरीय, घ. यारी
10 ग. पाइ० धरिबि

घत्ता—इय जाणिवि[1] चिंतइ, उवसमवंतइ, पुहवीयसरु सहु सठियउ ।
ता वि णमंतउ, इय पभणतउ, वणवइ[2] दारिपरिट्ठिउ ॥11॥

(12)

देव देव मुणिवरु वणि[3] आयउ, गुणपहु णामें जग विक्खायउ ।
पचमहव्वय भरणिव्वाहणु, पचाणुव्वय भवियहु साहणु ।
पचेंदियदारहु[4] कयसवरु, पचयणाण पयासिहिं[5] दिणयरु ।
पचहु णिग्गथहु जो उत्तमु, पचहु परमिट्ठिहि जे किउ णमु ।
पच सरीरहु जो मिल्लहणु[6] मणु, भावहु पचहु जाणइ लक्खणु ।
पचहु मिच्छत्तणहु[7] जो णासणु[8], सज्झायहु पचहु परिपोसणु ।
समिदिय पच वि णिम्मल पालइ, पच वि अत्थि काय णवि चालइ
पचहु जीवसमासहु रक्खणु, पचासव जाणणि सुवियक्खणु ।
पचाचारु जु णिरु सचारइ, पचवाण जम्मु वि सहारइ ।
पचहु मेरुहिं जो जिणवदइ, पचम गइ सुहरसु अहिणदइ ।
पचाणुत्तर सुरहि[9] जु पुज्जिउ, पचहु मिच्छहु जणु जें वज्जिउ ।
थावर पचहु जो दयवतउ, णिद्दा पचउ जें णिरु जित्तउ ।

घत्ता—त णिसुणिवि णरवरु, कपा वि विसरु, अप्पु सप्पुण्णउ जाणिउ ।
अगहु आहरणहि, पसरिय किरणहिं वणमालिउ सम्माणियउ ॥12॥

1. ख घ जामणि
2 घ वणयरु
3. ख घ वणि मुणिवरु,
4 क दारहु,
5 ग पयासिइ
6 घ मिल्लण
7 ग. घ. मिच्छत्तहु
8. ग घ. तासणु
9 क. ०सुरहे

(13)

ता गिउ गउ वणि दिट्ठउ मुणिंदु, तहो परियरि दिट्ठउ मुणिहिं बिंदु ।
दो दोसिहिं[1] मुक्कउ गुण महतु, दो मुक्खहिं णिरु णिम्मलउ हुतु[2] ।
दो[+] तवि सताविय किसिय गत्तु, दो बध गाढ[3] बधणहिं[4] चत्तु ।
दो णिज्जराइ णिज्जरइ[5] कम्मु, दो सजमि[6] पालइ परम धम्मु ।
दो सगइ जेण पढमेण मुक्क, दो गुत्तकम्म[7] बधणहिं चुक्कु ।
दो भेयउ पुग्गलु[8] जो मुणेइ, दो सिद्धह[9] जो वदण करेइ ।
दो वेयणीउ जो फुडु खवेइ, दो भेउ धम्मु जो बज्जरेइ ।
दो सीलह जो सगहइ भाउ, दो जीवसमासह ग्रवइ काउ ।
तिहु ग्रप्पह जो जाणइ सहाउ, तिहु सम्मत्तह बुज्झेइ भाउ ।
तिण्णिवि सवर[10] जसु फुडु हवति, तिण्णि वि वेयइ[11] जसु खयहो जति ।
तिण्णि वि गुत्तिउ जसु गाढयति, तिण्णि वि मूढइ जसु ग्रवसरति ।
तिण्णि वि गुणवय जो जणि कहेइ, तिहु जोयह जो णिब्भरु सहेइ ।
कालत्तउ जसु पच्चक्खु भाइ, लोयत्तउ कर ग्रामलउ णाइ ।
जो तियगारव[12] छाया विमुक्कु, जो तिय सल्लइ उक्खणणि ढुक्कु ।
तिहु दडहिं जो उद्दडकाउ, तिहु सुद्धिहिं जो सुद्धउ सहाउ ।

घत्ता—इय पिक्खिवि मुणिवरु, बहु गुण गण हरु, णरवइ पायहि पडियउ ।
सुद्धय णिय भावे, वियलिय पावें, ण गुण सेठिहि चडियउ ।।13।।

1. ख =रागद्वेष इत्यर्थं, 2. ख ह
3. =पुण्यपाप ससारीक बध इत्यर्थ,
4 ख. बधणाहे, 5. =सविपाक ग्रविपाक निर्जरा,
6. = इद्रिय प्राण सयम, 7 =उच्च नीच गोत्र,
8. =स्कध-परमाणु, 9. =सकल-सिद्ध निकल-सिद्ध,
+. = बाह्य-ग्राभ्यतर,
10. =मनवचन कायसवर,
11 =स्त्री, पु नपुसक,
12 क. गावर०, = रस—ऋद्धि—तप इति त्रिगौरव—छाया ।

(14)

ता णरवइ धुइ वइणिहिं भासइ, अप्पहो पावतिमिरु णिण्णासइ ।
अज्जु मज्झु लोयण कय पुण्णइ, अज्जु मणोरह मुह्नु[1] पडिपुण्णइ ।
अज्जु जि सहलउ महो मणुय जम्मु, अज्जु जि महु णट्ठउ घोरकम्मु ।
अज्जु जि महु[2] चिंतामणि करत्थु, अज्जु जि मुहो पुरिसहु तुरिउ अत्थु ।
अज्जु जि भवसायरु जाणु मेत्तु[3], अज्जु जि मइ सव्वह सारु पत्तु ।
ता सामिय फेडहिं भव विसाउ, महु दिक्खदाणि किज्जउ पसाउ ।
तुहु[+] करुणा सायरु गुण महतु, मइ रक्खहिं रक्खहिं दुहसहतु ।
त णिसुणिवि मण[4] पारिक्ख हेउ, मुणिवरु जंपइ पयडिय विवेउ ।
भो णरसामिय सोमालयत्त, खर भाउ सहति न कमलपत्त ।
जद्दरु[5] णु सहइ कक्करहु मुट्ठ, कच्चहु[6] कुंपउ ण[7] सहेइ घुट्ठ ।
तुहु[8] सिरसकुसुम सोमाल देहु, जिण दिक्खा पुणु बहु दुहहं गेहु ।
ज हरियदण[9] रसपकि खुत्तु, त चियरय भरि कहु[10] लुठइ[11] गत्तु ।
जो हसतूलि पल्लकि सुत्तु, तहो थडिलि कह लग्गिहइ चित्तु ।

घत्ता—इय[12] बहु सिरिभोयहि, णिह णियसोयहि[13], जो णिरु सुक्खइ माणइ ।
सो दुक्खह मदिरु, णयण असु दरु, अप्पउ तउ किह्[14] आणइ ॥14॥

(15)

त णिसुणिवि पभणइ धरणि णाहु, तवयरण[+] गहणि णिब्बद्ध[15] गाहु ।
सामिय सच्चउ महु भाइ सुक्खु, पुणु गुरु अउ णरयहो तणउ दुक्खु

---

1 ख. ग महु
2. क मुहु,
3. क. मित्तु
4. क. मण०
+. क. तुहु
5. =जीर्णवस्त्र इत्यर्थः ।
6. क. कच्चहु
7. क. काचसु,
8. क. तुहु
9. क. ०भदण
10. क. किहु
11. ग, लुढइ
12. ग. अय
13. क. सोहहि
14. ख. किहु, घ. कह
+ तवचरणि
15. ख. णिब्बहइ ।

कत्थवि वदणि लोलेइ पिंडु, कत्थवि अवगाहइ[2] पूय भडु ।
कत्थवि जीवहो चामर ढलति, कत्थवि तातां[4] मुग्गर पडंति ।
कत्थवि रयणासणि सुहरिण बिट्ठु, कत्थवि णव हत्थिय सूलि दिट्ठु ।
कत्थवि आलिंगहिं हरिणणेत्त[5] कत्थवि डायणि घुट्ट ति[6] रत्त ।
कत्थवि जयवारण सिक्खियत्थु[7], कत्थवि खर[8] चडियउ बिल्लमत्थु ।
कत्थवि सुकविहिं पयडिय गुणेहु, कत्थवि हाहाकारेण सोहु ।
कत्थवि रूवें जित्तउ अणगु, कत्थवि कुट्टें सडि पडिउ अगु ।
इय बहु भेए ससारि णडिउ, हउ [9] भमिउ [10] कम्मबधेहिं जडिउ ।
इय भणिवि कठ कदलहु हारु, उत्तारिवि ण णिय रज्जुभारु[11] ।
जिय सत्तणाम णियणदणासु, आइच्छिवि गलि घल्लियउ तासु ।
जा विभिय किंपिवि भणहिं मति, ता केसभारु उप्पाडि झत्ति [12] ।
आहरण कत्थ परि हरिवि सव्वु, तवयरणु गहिउ परिपालिय गव्वु ।

घत्ता—ता मुणिवर इदें, सिव सुहकदे ' चरणहो सिक्खा दक्खिय ।
विणएण गहिव्विणु, करमउ लेप्पिणु[13], तेण वि सा सवि सिक्खिय ।।15।।

(16)

ता सो वारह विहि तउ पालइ, वारह अविरइ दूरे टालइ[12] ।
बारह अणु विक्खउ मणि चितइ, बारह पायच्छित्तइ मतइ ।
बारह अगइ सुत्तहो पढेइ, सिद्धाणु योय[12] वारह दिढेइ ।
बारह उवयोगइ मणि धरेइ, सावय वारह वय वज्जरेइ ।

---

1 क अवगावइ
2. ख. तत्ता
3. ग ०णित्त
4 क वुट्ट ति
5 ग सिरिकयच्छु,
6 ग खरि
7 क. हउ
8 क भामिउ, ख. भमिउ,
9. क रज्ज०
10 क सत्ति
11. ख ले विणु
+ क चरणि०
12. क ठालइ,
13. ग जोग

तेरहविहि चारित्तु[1] सु णिम्मलु, तेरह कसाय दूरुज्झिउ मलु ।
चउदह पुव्वइ जाणइ विसेस । तह चउदह पक्किण्णह असेस ।
चउयह गथइ जो[2] परिहरेइ, तह पिंड पयडि णियमणि धरेइ ।
चउदह मल वज्जवि पिंडु लेइ, चउदह गुणसेढिहिं कमि चडेइ ।
इय बहु कालें सो तउ करेवि, अरुहक्खरु णियमणि सभरेवि ।
गउ अच्चुव सग्गहो थिरु मरेवि, हुउ अच्चुइ[3] दुक्खणि अवयरेवि ।
वावीस जि सायर आउबधु, किं वण्णिज्जइ तह सुह पबधु ।

घत्ता—सुर तिय मण णदणु, सिव अहि णदणु, ते आणु[4] अह मह गउ ।
जिणवर पय भत्तउ, सुरसुह सत्तउ, जायउ पुण्ण पसगउ ।।16।।

इय सिरि चदप्पहचरिए, महाकइ जसकित्ति विरए
महाभव्व सिउपाल सवणभूसणे जयसेण अच्चुय
सग्ग गमणो णाम पचमो सधी सम्मत्तो । (ग्रन्थ 176, अक्षर 14)

1. ख. चारित्तु
2 ग.- जा
3 ग. °अच्चइ
4 ग. याणु ।

छट्ठो संधि

(1)

सो वहु काले सग्गहो चवेवि[1], करणयप्पह रिणव घरि अवयरेवि ।
तुहु[2] पोमणाहु हुअउ णरेसु, मणि सवय पुरवरि सिरि असेसु ।
इय पुव्वभवतर मुणि कहेवि, जा मउरण[3] भाउ थक्कउ धरेवि ।
त णिसुणिवि णरवइ पुलइ अगु[4] पुण रवि भासइ हरसें सरगु ।
परमेसर चिरजम्मतराइ, महो कहियइ पइ[5] सयलाइ ताइ ।
पुणु पच्चउ किं पिवि फुडु कहेहि, महोमणि ससउ जिह[6] अवहरेहि
त णिसुणिवि पुणु भासइ जईसु, कय वय दिवसिहि ण गिरिवरीसु ।
कच्छवि करि तुह पुरि आवेसइ, ति फुडु[7] पच्चउ तुह फुडु होसइ ।
त आइरिण वि वदिवि मुणिदु, णिय णयरि परायउ णरवरिदु[8] ।

घत्ता—तहि पुरि सुहमत्तउ जिण पयभत्तउ, जा णरवइ घरि अच्छइ ।
ता मुणि अकिय, दिणि, ता सिय पुरजणि, करि आवतउ पिच्छइ ॥1॥

(2)

गज्जइ गहीरु ण पलयमेहु, ण चल्लइ गिरिवरु विज्भु एहु ।
मयगध सयल णासिय गयदु, कर सीकर सिंचिय सूरचदु ।
पयभर डुल्लिय[9] महि पडिय गेहु, पच्चक्खु णाइ खयकाल देहु ।
उट्ठिवि णरवइ[10] सम्मुहउ ठाइ[11], गेहहो उत्तरि कय पयइ जाइ ।

---

1 ख चएवि,
2 क तुहु,
3. ख घ मोण,
4 ख घ यगु
5. क पय,
6 ग. जिव,
7 क त विरु,
8 ख घ णरवरु, घ. णरवहिंदु
9 घ पयभड डोल्लिय°
10. ख घ णरवरु,
11. ख. घ थाइ ।

ता करि कह[1] उप्पाडे[2] वि चड्डु, सम्मुह धायउ ण पलय दंडु ।
जा ग्राइवि किर घल्लेइ हत्थु, ता णिउ दिट्ठिहिं उवरिल्ल वत्थु ।
घल्लिवि ग्रप्पु णु णिवकलि वि जाइ, पुणु ग्राइ वि पच्छइं हणइं पाइ ।
पुणु पु छि[3] लग्गु करि सिंहु भिरेइ[4], दब्वट्ठिवि पुणु उप्परि चडेइ ।
इय चउपासिहिं पुणु पुणु फिरेइ, करि सिक्खावलु पायडु करेइ ।
ग्रइ दतउ करि सम्मुहं पइट्ठु[6], ता णरवइ कुंभच्छलि वइट्ठु ।
दिढव[7] भिलेवि वद्धउ गइ दु, णिय गेहि परिट्ठिउ णरवरिंदु ।

घत्ता—ता तहिं इक्कहिं[8] दिणि, सह ग्रवसर खणि, दूउ एक्कु सपत्तउ ।
बुल्लणह[9] वियक्खणु, णाउ[10] सुलक्खणु, पुहइपाल णिव भत्तउ ॥2॥

(3)

सो भणइ[11] एम जोडेवि हत्थ, पइ[12] बुज्भिय सयल विणीय सत्थ ।
महिपालु राउ पभणेइ एम, पइ[13] ग्रजिणउ एरिसु कियउ केम ।
महो[13] करि सइ वणिकेली पइट्ठु, तुम्हिहिं हिडतउ कहि विदिट्ठु ।
सगहिवि सो वि ग्रप्पणउ कीउ, को किर सहि सइ एरिसु विलीउ ।
पुहवीपालहो विट्ठुरइ सव्वु, मूखें वें इ दुवि मुग्रइ गव्वु ।
कालु वि हक्किउ घर हरइ झत्ति, दइउ[14] वि उहट्ठिवि करइ भत्ति ।
ग्रसद वि[15] दासत्तणु करइ तासु, गहचक्कु वि सकइ दीहसासु ।
ग्रपुण्णु वि तसु पुण्णत्तणेण, परिणमइ चित्ति चिंतिउ खणेण ।
ते दुण्णिमित्त ते तासु मित्त, जे विग्घते वि पाइक्क भत्त ।

---

1. ख. घरु
2 क. उप्पडिवि
3 क. पु छिम
4 घ. फिडेइ
5. घ सामुहु
6. ख. सामहु पयहुं
7. ख. दिढप
8. ख. इक्कहे
9. ग. घ. ०ह
10. ग. णाउ
11 ग भणइ
12. ग. पइं
13. ख. महु
14. ख. देउ
15. ख. ग ग्रदसवि

जे अवसरए[1] लोयहो किर हवति, तँ तहो[2] इच्छिउ फलु सयलु दिंति ।
अण्णे वि केवि जे लोयकुट्ठ, ते तहो दासत्तणि सवि पइट्ठ ।
इय जाणिवि तुहु एहु राय हत्थि, अण्णुवि णिवघरि जं सार अत्थि ।
त ढोइवि[3] सयहो[4] पडहि पाइ, जिह[5] जीविउ रज्जु वि सुथिरु थाइ ।

घत्ता—त णिसुणिवि राए[6], तरलियछाए, जुँवरायहो[7] मुहु दिट्ठउ ।
णं उग्गयँ सूरे, हयँतमपूरे, रत्तुप्पलु परमट्ठउ ॥3॥

(4)

जुयराउ भणइ रे दूय दूय[8], तुहु जीह किण्ण[9] सयखंड हूअ ।
जो पोमणाह णरवारह देउ, त पडि कह[10] किज्जइ विणयभेउ ।
जइ पुण्णे पेरिउ घरि करिदु, आयउ तह अप्पइ कह णरिंदु ।
अहवा ज किरपा इक्क[11] वत्थु, जइ गहइ सामि ता सो कयत्थु ।
अह जइ सेवइ ता लहइ हत्थि, अविणइ पुणु जीउवि तासु णत्थि ।
ज णिक्कटउ तहो रज्जु भोउ, त पोमणाह पायह पसाउ ।
ज पइ सामिहिं किय[12] सुहउ गच्छि, त सव्विय करि सगरह कज्जि ।
हु तिहु सयलवि गल गज्जि सूर, विरला पुणु वायहिं विजय तूर[13]
त सुणिवि दुउ कोवेँ पलित्तु, ण धूमद्धउ बहु घयहिं सित्तु ।
जा[14] हउ दूह ता वुल्लह तुरत, पच्छा दिक्खे समि भय भुलंत[15] ।
हउ बुल्लमि सारउ इक्कु वयणि, वहु कहिही वाया कलहु कवणु ।
कइ तुम्हह सिरु पयवीढि[16] तासु, अह लुढिही[17] सगरथर दियासु ।

---

1 ग असवस्स
2 ग. तहु
3 घ ढोएवि
4 घ. रायहो
5 ख जह
6 = कजकप्रभ इत्यर्थं
7 – पोमणाहस्य
8. क दूअ दूअ
9 ख ग किण
10 क किह
11 क यक्क
12 घ. सिय
13 = सग्रामतूरेति
14 = दूत
15 क पुल्लन
16 ग ०परि०
17 क. लुटिही

घत्ता—इय दूयहु[1] वयणहिं, भउभरणदमरणहिं, सयल सुहड मणि तत्ता।
कोवें कंपंत, असिउकत्ता, फुरिया हर कुमइत्ता ॥4॥

(5)

ता भणइ णरेसरु पोमणाहु, चिररायणीइ सुणि वद्धणाहु।
सो मूढउ जो दूयहु रूसइ, दूअउ[2] पडिसद्दु व गिरि भासइ।
जो जसु कवल मित्तु भु जेसइ, सो सर्मिहि आएसु करे सइ।
दुम कहिह तुह इय जाणे विणु, मासिक्के करि ढोयमि आ विणु।
अह तुह सगर केली पूरमि, विहु वयणहो णहु एक्कु अदूरमि।
ता दूयउ णिय णामहु पहुत्तु, राउ वि मंतणा मंदिरि[3] पहुत्तु[4]।
जे बूढमति[5] णयपारुअत्त, जे णयफल अणुहुव रसियचित्त।
जे बुद्धि सत्थ सगामधीर, जे परउवाय णिद्दलण[6] वीर।
जे वज्जगठिणिह पर अभेड, जे कुल कमि पयडिय सुद्ध विवेय।

घत्ता—ते तहिं उववेसिवि, कुमरु णिवेसिवि, णरवइ भणइ सरायउ।
सो णिग्गहु जोग्गउ, अविणय भग्गउ, महु यहु मतणु आयउ ॥5॥

(6)

ता जिट्ठमति[7] पुरहइ[8] णामु, पभणइ सामिय तुहु[9] णामहु धामु।
ज तुह अग्गइ वोलेमि[10] किं पि, हउ णेंहि साहसु करमि त पि।
जे णिच्च सुरभावेण[11] तत्त ते सावय दो पाइय णिरुत्त[12]।
अइड्ढिढवि[13] विग्गहु जे गहति, ते जीविय रज्जहो सलिलु दिति।
णिक्कारणु दीवें सहु पयगु, रूसिवि[14] णासइ लहु पक्खु अगु।
भूय[15] वि दडि हुउ[16] सिरहो धाइ, सामेण वि सलिले[17] सोम थाइ।
ज मसिण कट्ठु जण भरु सहेइ, त पिहि महियउ जलणुम्महेइ।

---

1 दूयहु
2 घ. दूवउ
3 घ मदिरहु
4 ख. पत्तु,
5 ख. बुड्ढमति,
6. ख णिट्ठवण,
7. ख. जेट्ठ,
8. =पुरोहित
9. ग. तुहुं
10. ख. घ. वोल्लेमि
11. ख सुरु०
12. =पादद्वययुक्ता
13. घ आइच्छिढवि
14. ख रूसेवि,
15 =भस्म
16. क. दडिहुय, ख. दड्डे हुउ
17 क वसललें, ख वसलिलें
18. =कठिन काष्ठ इत्यर्थ

इय जाणिवि सामहो करहो भाउ, सामु जि सव्वत्थ वि सुक्खठाउ ।
सामे तिरियवि[1] अणुकूल होंति, दंड पुणु रूसिवि पाण लेंति ।
अमिउ व जे सामु रसंति राय, देव वि परिसेवहिं तासु पाय ।।

घत्ता—ता तहिं जुवराए, समरउवाए, सो वुल्लतउ वारिवि ।
णिय पयपण वेप्पिणु, पुरउ सरिप्पणु, उत्तउ समुउ सारिवि ।।6।।

(7)

तहो दुट्ठहु किह[2] सामु पउ जहिं, पसरिय णिय जस पायउ मजहिं ।
सो दुट्ठउ को वग्गि पलित्तउ, लोहु व दिठु साम वु पसित्तउ ।
तत्तउ तिल्लु व सीयल सलिलें, सो उद्दीपइ सामिं सहलें ।
उच्छुहु दुट्ठहो एक्कु जि सहाउ, पीलिज्जतउ[3] फुडु सरसभाउ ।
सीहे उववणि कहो कियउ सामु। ज कपइ सयलु वि महह गामु ।
सायरु पयडइ चिरु जलिण सामु, पुणु तह विहु वाडउ गसण कामु ।
गुरुदेवह पियरह विणउ जुत्तु, दुट्ठह पुणु कुवि[4] विवरीउ सुत्तु ।
प्रणम तहो जइ किर करइ[5] लल्लि, तो सुहउत्तणु सइ कूवि[4] चल्लि ।
इय णिसुणिवि पुणु पुरु हूइ मति, पभणइ जिह कुमरहो होइ खति ।
जइ तुम्हहु विम्भहिं हुवउ गाहु[6], ता पहिलउ चर सचरणु साहु ।
जाणे विणु चारहिं वलहु मज्झु, ता पयडिज्जइ सयरहो गुज्झु ।
ता पभणइ णरवरु पोमणाहु, पुरु हूइ भणिउ हो साहु साहु ।
जाणिवि चरेंहि तहो वल पमाणु, पच्छा दिज्जउ समहु पयाणु ।।

घत्ता—इय मतुकरे विणु, चरपोसे विणु, परवलवलुउ लक्खिवि ।[8]
मेल्लिवि सामतइ, परहु कयतइ, पुट्ठिपाय छलु रक्खिवि ।।7।।

1. —धर्मिन ददातीत्यर्थ । 2. ख. ग घ. कह
3 ख. पीलिज्जतहो 4. घ. कूड
5. ख. करहि 6. घ. हुअवग्गाहु
7. ख. लखिवि 8 घ. तहो
9. सुलीलु ।

(8)

ता वज्जाविय पुरि विजयढक्क, तह[1] सद्दें भिवडहिं गिरि गुरुक्क ।
सुह दिवसें गुरु मंगल रमालु, सचल्लिउ णिउ अरिपलयकालु ।
आरूढउ जय वारणि सलीलु बहुवदि बिंदि पयडिय सुसीलु[2] ।
बल भरि भज्जइ फणि उत्तमगु, ता कुम्मि धाइवि दिण्णु अगु ।
जा कुम्म पिट्ठि[3] भज्जेइ गाढ, ता धाइ वि कोलें ठविय दाढ[4] ।
तासु विदाठा किर जामु डेइ, जा भूमिचक्कु किर खडहु डेइ ।
तातहो तुरयहिं साहिज्जु दिण्णु, खुरि लग्गिवि लग्गिवि रउ णहि पइण्णु ।
णिट्ठियघर उट्ठिउ रेणु भारु, ता कहवि कहवि ते धरहिं भारु ।
ता पुण रवि करिमय वाहिणीउ, तहिं पवहहिं फणि दुह वाहिणीउ ।

घत्ता—रय पडलहिं पिहियउ, ण भय सहियउ, णहु कर सूरु पसारइ ।
झल किय बल पहरण, दरसिय बहुरण, पिक्खवि दुक्खु[5] वियारइ॥ 8 ॥

(9)

जा पहि चल्लइ बहु कडय लोउ, ता कत्थवि वेसरु करिवि कोउ ।
उप्फडिवि[7] फडिवि ता सुथिरु[7] जाउ, जा[8] घर लुट्टइ[9] कुट्टणिहिं काउ, ।
अण्णित्तहिं मउ उल्लवइ[10] ताम, आवतउ कु जरु तसइ जाम ।
कासु वि कल्होडु पाडेवि गोणि, ता णासइ जाणिय धरहो खोणि ।
कासु वि पडि भग्गउ तिल्ल भडु, चुप्पडइउ पाणह हसिवि भडु ।
कासु वि इक्कल्लहो[11] सप्पि सयडु, उच्छलिउ[12] रिल्लहु[13] दिट्ठु पयडु ।
कुवि सयडि[14] रूदु कुट्टणिहिं उत्त, चडि ही[15] जाणिवि वहिराय वुत्त[16]

---

1 ख ०पट्ठि
2. क डाढ,
3. ध. तातुहुँ,
4. क. पिछि विछेउ,
5. ग करेवि,
6. ग. उफडिवि
7. क सुच्छि,
8 ग ता,
9. ग. ल्लुट्टइ,
10. ख उल्लइ
11. ख. ०लहु,
12. ख. ध. उछलियउ,
13 ख. ध. रिल्लउ,
14 क सयड,
15 चडही ।
16. = बाह्यरागवृत्तं.

केणवि णरवइ अग्गेसरेण, संगहिय दीहक वा करेण।
पहु खडिहु छडहु[1] इय भणेवि, कुट्टणि हय वेरइ[2] सभरेवि।

घत्ता—इय बल वित्त तहिं, पडि पडि[3] हुतहिं, तहि अरि देसु परायउ[4]।
पिच्छिवि जल ठाणइ, सिविर पमाणइ, उपमाणइ सिरि रायउ ॥ 9 ॥

(10)

मणिकूडु सेलु पुट्ठिहि ठवेवि, तहि सिण्णु[5] अवासिउ भूमि लेवि।
उब्भिय गुड्डुर ण कुल गिरिंद, जहि सिरि[6] खलति णहि सुरचंद।
सल्लइ पल्लय वारण चरति, वण विहरण सुरकइ[7] सभरति।
सिविरहो दूरें वारण णिबद्ध, जण सचरुण[8] सहहि ममणिरुद्ध।
हरि मदुर थभहि हरि वइट्ठु, ण सयल लोयमण मित्तु इट्ठु।
तह उद्दु इक्कु भाइदर लित्थु, जइ खेरिहु तावइ तुरिय सत्थु।
तह तोडि वि तडुउ इक्कु[9] बाहु, जइ[10] मुट्ठें पिट्ठें पडिउ साहु।
पिच्छिवि महियलि लोट्टु तु साहु, सिट्ठिणि पभणइ हा धाहु धाहु।
जा गोलि[11] भूमि किर जणहि दिट्ठु, ता घरु नाडिवि वेसावइट्टु[12]।
पिच्छिवि रायहो सहि णाणु केउ, णिय णिय दिसि ठिउ मामत लोउ।

घत्ता—इय जातहि चचलु[13], अइदुस्सहबलु, आवासिवि सुहि सठिउ।
ता वारुणि[14] रत्तउ, पुव्व विरत्तउ, रवि अत्थवणि परिट्ठउ ॥ 10 ॥

(11)

ता रयणिहि भडसिज्जा हत्थ, सिय रमणिहि णिरु जोडेवि हत्थ।
अब्भत्थिय रयरसु वित्थरेवि, मूरुग्गमि सगर भरु मुणेवि।

1 ख घ छट्टहु छट्टहु, 2 ग वेरइ
3. ग घ पहि पहि 4 ग. पराइऊ,
5. ग घ. सेण्णु, 6 ख सिरि,
7 ग सुरकइ, घ सेक्खइ, 8. ग सचरु,
9. हक्कु, 10. ग तह,
11. ख. ०गुलि, घ ०गोणि 12. क वेसवेइट्टु, = बाह्य रायकूर्त
13 ख चलु, 14 ख. वरणि;

कुवि भणइ णाहु तुहु पाणणाहु, महिं णेहिं बद्धउ इक्कु[1] गाहु ।
दारिवि[2] अरिकरि सिरु सीघलाइ,[3] ढोवहि आणिवि मुत्ताहलाइ ।
कुवि भणइ दंति दसणाइ मूडि[4], सामिय महु करु वल्लावि चूडि[5] ।
कुवि पभणइ तोडिवि सत्तुकण्ण, महो कुंडल अप्पहि मणिरवण्ण ।
कुवि पभणइ अरिकरि मयजलेण, महो[6] मंडणु किज्जहि सीयलेण ।
कुवि पभणइ महो इहु णाहु जाणि, महिपालहो सिरु दक्खवहि आणि ।

घत्ता—इय जा पियमसारिहिं, रणमुहसारिहिं[7], सुहडु लोउ[8] अब्भत्थिउ ।
ताण रणविक्खणि, सुहड सभिक्खणि, गिरि सिरि सूरु कयत्थिउ[9] ॥ 11 ॥

(12)

उग्गउ दिणयरु पयडिउ पयासु, सण्णज्झइ बलु णरि[10] साहिलासु ।
तह सुहडह णिरु उल्लसिउ अंगु, जह बाहुदंडि उरु कयय संगु ।
कासु वि रोमंचिउ कवउ फुट्टु, ण सत्तु[11] पाण दिढ सुत्तु तुट्टु[12] ।
कासु वि सिरि बद्धउ वीर पट्टु[13], ण अरि खडिउ रत्तघट्टु ।
कासु वि राए दिण्णउ पसाउ, ण अरि जीविय कय मुल्लभाउ ।
काहवि अप्पिय[14] राएण खग्ग, णं अरि सिरि वेणिउ हत्थि[15] लग्ग ।
काहवि पेसिय राए सणाहु, अरिजीविय कोसव रुइ सणाहु ।
कुवि पभणइ सामिय तुज्झ आण, पुहवी पालहो सगहमि पाण ।
कुवि भणइ पुणहे[16] महो होइ लज्ज, त[17] करजुएण सघडहि कज्ज ।
इक्कहु दाहिण बाहहो पयाहुउ, को सहि सइ णिट्ठिय अरिखि काउ ।
कुवि भणइ मज्झ इहु तिक्खु चक्कु, पहरतहो णासइ कालचक्कु ।

---

1 घ. जोरँ,
2 ख घ. एक्कु,
3 घ फाडिवि
3 ख ग घ. सीपलाइ
4 ग घ सूडि
5. घ वूडि
6 ग. महु
7 ग रइ
8. ग. आब्भ०
9 ग. कयत्थिउ
10 ख रण
11 ख सपत्तु
12. पट्ठु, क छुट्टु ।
13. क वट्ठु,
14. घ. अप्फिय
15. ग. हत्थ
16 क. धुणहें
17 क. जें

घत्ता—इय जा भड गच्छहिं, पहरण सज्जहिं, णिव[1] पसाय परितुट्ठ मण।
ता पुहवीपालहो, रिउ खय कालहो, सचल्लिय रण दप्प घण ॥ 12 ॥

(13)

ता[2] पोमणाहु रणतूर सद्दु, सचल्लिउ ण खुहियउ समुद्द ।
सिव सामा[3] वायस[4] खर उलूय, एए सुह सद्द वाम हूय ।
सइ मत्त विजय गय पुणवि मत्त, सारंग णउल दाहिण पवत्त ।
अणुकूल समीरणु सुहु[5] सणाहु, रायहो परियउ दाहिणउ बाहु ।
इय सवण पणुल्लिउ चलिउ जाम, पुहवीपालु वि सचलइ ताम ।
पहु लहिवि विसहरु गयरु तासु, उट्ठ तउ खु टइ लग्गु[6] वासु ।
हत्थहु वियलिउ असिवरु तुरतु, वाहे पाडिउ अप्परि चडतु ।
छिकिउ सम्मुहु उद्धमु अग्गि, कुविय भणइ पहु सचलिउ लग्गि ।
इय असवण पिट्टु तु वि सगव्वु, पुहवी[7] पालुवि अवगणिवि सव्वु ।
सपत्तउ सइ णिय बलिहि तित्थु, ठिउ पोमणाहु मडेवि जित्थु ।

घत्ता—ता वज्जिय तूरहिं, धाइय सूरिहि, दुण्णिवि बल अभिट्टिय[8] ।
ण पलय पणुल्लिय, सइ उच्छल्लिय, दो जलरासि पलुट्टिय ॥ 13 ॥

(14)

धूलि धारिउ गयणहो विमाणु, ण काल रत्ति भरु णट्टु भाणु ।
घणु टकारें जाणियउ जोहु, हक्कतु मुणिउ पडिवक्खु गोहु ।
घटा टकारें मुणिउ हत्थि, चक्कहो चिक्कारें रहु वि अत्थि ।
करिमय हय[9] लाला सुहड रत्ति, अइ गाढ़ गाढु सिंचिय धरित्ति ।
तारेणु पडलु हुउ विरलु जाउ, दिट्ठउ अण्णुण्णहिं बलहं आउ ।
गयणयलु सरिहि छायउ महतु, रवि तेउ णट्ठु भडु ताउ दितु ।
जइ बाणिहिं खडिउ बाण पुच्छु, तो वेए भिदहिं फलिहिं वच्छु ।
कासु वि अडु फरिसा खग्गहत्थु, णच्चइ सिरु रक्खइ णिरु[10] वरत्थु ।
कासु वि सिरु असिहउ गयणि पत्तु, महि आवतउ णिरु खग्ग खुत्तु ।
तहि सो गच्चइ रणि बहु विसेसु, जह सिलपुत्तिहि खट्टगु वेसु ।

1 क णिव्व, घ 2 घ ल
3 क. साम 4 क. वोयस
5 क सह 6. क. लग्घु
7. ख पुठवी 8 ख अज्झिझ्भ्या
9 ग हरि 10 क णिय

पर पायरण मरिण सचिउ किलेसु, कुवि तुट्टइ सिरिउ वहइ तोसु ।
ता एाच्चइ रिगयमरिग चितवतु, किं सीसें मह् बाहू जयंतु ।

घत्ता—किवि मडिय बहुरण, विलसिय पहरण, लुय रिगय सीसहिं जुज्झहिं ।
रणरस भावेसहिं, बहुम्र विसेसहिं, अप्पउ मुयउ ए बुज्झहिं ॥14॥

15)

कुवि सामियकज्जि रिगवद्ध गाहु, तुट्टउ पिक्खिवि दाहिरगउ बाहु ।
वामेरग पडतउ सिरु धरेवि, पायहु दुक्करु बघइ सरेवि ।
कुवि सारिवि सामिहिं तरगउ कज्जु, करिदततलिरिग किंत्तिए समज्जु ।
सोवइ दीहइ रिगद्दइ[1] अचितु, कण्णहु चमरिहिं[2] रिगरु वीइयतु ।
कुवि खग्गें करि सिरु हरगइ सूरु, विरघरइ जसु व मुत्तरहु पूरु ।
कासु वि हरि रुढहो पडिउ मुडु, बहु भल्लिहिं खिल्लिउ रगेय रुडु ।
कुवि पहग्इ दतिहिं हुट्ठु[3] पीडि, ए जीविउ रक्खइ दारु भीडि ।
सारिवि रिगय सामिहिं कज्जवग्गु, हे जीविय तुज्झ पयाणयुग्गु[4] ।
कुवि धणुहिं सहु बिद्धउ सरेरग, रग धाइवि गिलियउ जम मुहेरग ।
लुय कासु वि सयल वि पारिगपाय, तह विहु मुहु जपइ सुहडवाय ।
कासु वि जइ तोडिउ पडिउ वाहु, तह विहु रगहु मिल्हइ खग्ग गाहु ।

घत्ता—इय बलह भिडतह, पुरउ सरतह, बहु सो रिगउ जल सारिरिगउ ।
महियगरिग फ इय, पूर पराइय, भूम्र जाइ मरगहारि रिगउ ॥15॥

(16)

दुद्धरसर सल्लिय सयल गत्त, जा सुहड रगाह ऊसरगि पत्त ।
ता पुहविपालु मरिगधरि वि दप्पु, सचल्लिउ म्रासीविसु व सप्पु ।
तहो सरथोररिग धाराहिं सित्त, पडिवक्खु सुहउ रगासरग पडत्त[9] ।

---

1 ग निद्दइ
2 ख घ. चमरेहिं
3 क दतोट्ठ छुडु
4. ग घ जोग्गु
5. घ. ०वहइ,
6 घ. वियलिय,
7 घ सर,
8 घ. पिच्छिवि
9. ख. पवत्त, घ पवित्त

अरि पिक्खिवि गुणरय सिरि सणाहु, कुंजरि आरूढउ पोमणाहु ।
जा दोह वि हत्थिहिं दतिदत, अब्भिट्टहिं सिहि कण पायडत ।
ता पुहविपालु कोवारुणासु, णीसास धूमु मिल्लिवि दिसासु ।
पभणइ रे तुह गयवरहु सप्पु, महुसर पूरेसहिं तुट्ठु दप्पु[1] ।
ता पोमणाहु जंपइ मरोसु, रै फेडमि तुह दुव्वयण दोसु ।
रे पहरु पहरु पढमेण भग्गु, सव्वहु दुव्वयणहं मग्गि लग्गु ।
त णिसुणिवि णरवइ पुहविपालु, जुज्झइ रुद्धउ ण पलयकालु ।
जे जे सरसव्वल सो मुएइ, तै पोमणाहु णिप्फल करेइ ।
दुण्णिवि मदर गिरिवर समाण, दुण्णिवि पलयब्भहु बलपमाण ।
दुण्णि वि सायर गभीरधीर, दुण्णिवि बहु भडकोडीहिं वीर ।
जा दुण्णि विजयसिरि अतरत्थ, जा णिहणहिं बहु सत्थिहिं कयत्थ ।

घत्ता—ता कोव पलित्तें, जयसिरि सत्ते, पोमणाहु पुहवीसें ।
धणु गुणि आरोइउ, लक्खहो ढोइउ, अद्ध इदु[2] सरु रोस ।।16।।

(17)

मुक्कउ णहु सर जालेहिं रुद्धु, ण टलइ कम्मु व चिरकाल वद्धु ।
आइवि गल कदलि तासु लग्गु, ण जयसिरि लील्ला पोमुलग्गु ।
णिव डियउ सीमु सहु कुलवलेण, तट्टुउ भडयणु सहु परियणेण[3] ।
ता पोमणाहु पुहवी सरेण, वज्जाविय जयदुदहि सरेण ।
उत्तरि वि गयदहो सीसु दिट्ठु, सो णिय धूली पडलेहिं पुट्ठु ।
कुंडल मउडेहि वि णट्ठसोहु, झपडिय विरलठिय सिररु होहु ।
त पिच्छि वि राया मणि विसण्णु, चितइ हा माणुसु मोह पुण्णु ।
सिय जस हेय[4] मडइ अणत्थ, णहु जाणइ अच्चहु इय अवत्थ ।

1 ख दुट्ठदव्व 2 क अद्धदु
3 क परियरेणि, ख सिय जसेण,
4 ख घ सिरिजसह हेउ

मल मुत्तह पुट्टलु असुइ मडु[1], पुणु तह वि गुरुउ[2] हकार चडु ।
आरवत खलिय जें सरसमूहु, सो खेवइ णहु मत्थियह बूहु ।
जो जुज्झइ गुरु गयकुंभि चडिउ, सो णिक्करडिवि णिरु दत्त पडिउ ।

घत्ता—जो इय गल गज्जइ, समरु समज्जइ, बहु कोवग्गि पलित्तउ ।
हातहो सु डीरहो, भडसयवीरहो[3], सिरुधूलिहिं सहु[4] सित्तउ ॥17॥

(18)

इहु मइ णिह णिउं कोवेण अज्जु, भवि भवि मइ णिह णेसइ अणज्जु ।
को बधउ माणुसु चम्मचक्खु, भवि भवि अणु हुजइ णरयदुक्खु ।
कोवेण जि सचइ पावकम्मु, कोवेण पणासइ सयलु धम्मु ।
कोवेण वि खिज्जइ णिय[5] गुणोहु, कोवें पियरवि मेल्लति मोहु ।
कोवें चडवग्गु वि णयहो जाइ, कोवे खणेण चिर तउ पलाइ ।
कोवे सिय कित्तउ खयहु जंति, कोवे[6] णारि व धिय दूरि थंति ।
कोवें विवेय गुण विलय जाहिं, कोवे वाहिउ आसण्ण थाहिं ।
कोवे आवइ[7] पायडहिं णेहु, कोवे सपय मेल्लति गेहु ।
कोवे माणुसु सावय समाणु, कोवे सव्वह णिदाण ठाणु ।
कोवे खणि सुगुणु वि होइ मूउ, कोवे सुअणाह[8] बिकाल दूअ ।
कोवें अप्पाणुवि हणइ भत्ति, कोवे णिगोय णिच्चह धरित्ति[9] ।
कोवें समाणु णहु होइ[10] सत्तु ज णरु भीसणु दुहु पकिखत्तु ।

घत्ता—कोवग्गि पलित्तउ, समदम चत्तउ, किण्हलेस रसरगिउ ।
अप्पा दुह भावइ, सुक्खु ण पावइ, विसय कसाय पसंगिउ[11] ॥18॥

1 ख घ पिंडु, 2 ग गुरुय०,
3 ग ०वीरहु, 4. क ख. सणि
5 क ख घ कोवेण खइणिय गुरु
6. क. कोवेण 7. ग आवय
8 ग सुय० 9 ग. धरत्ति
10. घ कोवि, 11 क, पहुतउ,

(19)

अण्णु वि दिठ माण पिसाय रुद्धु, कासुवि ण णमइ[1] ण सूलि छुद्धु ।
सइ णिग्गुणु णिंदइ गुण महत, सइ पाउ वि णिब्भच्छइ महत ।
सइ णिव्वुवे[2] गुरुयणि करइ रोसु, अप्पहु मण्णइ बहुगुण विसेसु ।
माणे[3] णहु कासुवि लेइ सिक्ख, माणि मिल्लइ गहिया वि दिक्ख ।
माणि णहु सुयणह होइ पासि, माणे सपज्जइ लोय हासि ।
माणे चिर तव गुण खयहु जंति, माणे मित्तवि पडिवक्ख होंति ।
माणें खर मडल मुड जोणि, माणें घरु पंगणु णरयखोणि ।
माणे दगडय डुववि हवति, माणे टुटुल मटुल हवति[4] ।
माणु जि सव्वहं अविणयहं कदु माणु जि पावो वहि वेल चदु ।
माणु जि कोहाहिय दोस मूलु, माणु जि सव्वह उरि तिक्ख सूलु ।
माणु जि मिच्छत्तदु माह बीउ, माणु जि सम वल्लिहिं हत्थि खीउ ।

घत्ता—तह माया सप्पिणि दस वियप्पिणि जाह हियइ विलि णिवसइ ।
ताह वि जण णासहि, विरसु पयासहि, धम्मु वि सुहफलु रूसइ ।।19।।

(20)

माया तव सीलह सव्व णासु, माया दुक्किय कम्माह पासु ।
माया मयलहं दुह फलहं, साउ, माया गुण सेलह वज्जवाउ ।।
माया भवोहि पीयूसगासु[5], माया अकित्ति फुप्फुवइ फासु[6] ।
माया पडिदूतिय भवहो जाणि, माया खडत्तण लोह खाणि[7] ।
माया तिरियह जाणेइ मग्गु, माया जस वल्लीह णाणि खग्गु ।
माया मुहगइ गेहहो कवाडु, माया सुपुट्ठु धम्मग साडु ।
माइउ वचइ पढमेण अप्पु, पच्छा बधव पिय माय वप्पु ।
माइउ मजारहो अणु हुरेइ, मणिहि सिरु कोमलु सरु करेइ ।
माइउ मल मडु व[8] पडि बिहाणु, सव सुज्जय ते उव असुद्द ठाणु ।
माइउ खरमल गूढय[9] सहाउ, अब्भतरि णिरु णीरसउ भाउ ।
मायायउ णरु फेडिवि सुधम्मु, पावइ थीय अहव विऊम[10] जम्मु ।

---

1 ख णवइ
2 क णिंदुवि
3 ग माणि
4 ग हवति,
5 =ससार सर्पस्यामृतग्रास
6. क. पुंफवइ फासु, ग फुफुवइ पासु,
7, क जोणि
8 क सडुव,
9 क गुहय,
10 क. अहनिवस०, ख. अहवा निउ, निउस=नपुंसक

घत्ता—अण्ण[1] वि तहु लोहें, पसरिय मोहे, अम्हारिसु जणु बद्धउ ।
काउ व भवसायरि, बहु दुहदायरि, णिवडइ तिय सवि[2] गिद्धउ ।।20।।

(21)

लोहु जि कुंकम्म सयलह णिहाणु, लोहु जि पावहु उप्पत्ति ठाणु ।
लोहु जि लोयह चंडाल गेहु, लोहुं जि सव्वहु दोसाहु देहु ।
लोहु जि अविरइ गिरि नईय मेहु, लोहु जि दुहु[3] लच्छिहिं दिढु सणेहु ।
लोहु जि गुण कक्खहु पवि किसाणु, लोहु जि जस कुमुयहु सहस भाणु ।
लोहु जि दोहग्गहु होइ खोणि, लोहु जि अपाय सजणण[4] जोणि ।
लोहु जि लज्जा दक्खिण्ण णासु, लोहु जि मित्तत्तण दयहु तासु ।
लोहिउ सिरि मण्णइ माय ठाणि, भोगिच्छइ तें न छिवेइ[5] पाणि ।
जोगी खणि घल्ली सिरि सुहाइ, णिय णरय गमणु पच्छाणु णाइ ।
लोहिउ मग्गिउ उट्टेंवि जाइ, सिरि जण णिहिं, गालिसुं णेवि[6] णाइ ।।

घत्ता - इय मूलकसायहिं, जणिय पमायहिं, हुउ चउगइ सतत्तउ ।
एवंहि कउ[7] मिल्लमि[8], भवसुह पिल्लमि, जिण तवचरणहिं सत्तउ ।।21।।

(22)

हक्कारि वि पुत्तु सुवण्णणाहु, दिण्णउ स रज्जु महि सिरि सणाहु ।
पुहवीपालहु सुउ[9] सोयजुत्त, णिय जणणरज्जि थप्पि वि सुभत्तु ।
दिण्णिय तहो सिक्खा नउ सरिज्ज, थिरु कणयणाह सेवा करिज्ज ।
पयपडियमति सामंत लोय, अवगण्णिवि बहु पायडिय सोय ।
सइ पत्तउ तुरिउ वणंति जित्थु, सिरिहरु णामेण मुणिंदु जित्थु ।

1. ग बहु
2. ग. घ सव
3. क दुह
4. ख सजण
5. ख. खिवेइ
6. क. वलि वि सुणिवि
7. ग. धुम
8. ग. मिलम्मि
9. क सुतु

तवतिव्वतेय ताविम्र1 सरीरु, बहुकम्म सुहड गिद्दलण वीरु ।
ससार समुद्दह कु भ[3] पुत्तु, इ दियजरण कम्मह देम्र[2] सुत्तु ।
गुण सेढि गिसेरिगहि हणु व देउ[4], गिम्मल सीलावासहो सुकेउ ।
बहु सुत्तसमुद्दह तिरिय लोउ, जारिणवि म्रणिट्ठ जे चत्त भोउ[5] ।
बहुणरयुम्रासरण धूमकेउ सुह सुर मदिरिण मूलदेउ ।
गिरु खति सति पिय बद्धराउ, मोहारि हणगि वट्टिय पयाउ ।
मिच्छामय गुरु कारणग किसाणु, पच्चक्खु वि इह ण सुद्ध गाणु ।

घत्ता—तहो पयपरण वेप्पिणु, करमउ लेप्पिणु, विणए[6] गरवरु भासइ ।
पइ सामिय दिट्ठे, जगमरग इट्ठे, भवकलिमलु दुहुणासइ ॥22॥

(23)

तुहु सिवसुह नाणइ सत्त गेहु, तुहु दुह दावाणल समणमेहु ।
पुहु भवभीरुह म्रणमित्तु[7] वधु, तुह पावपलित्तह म्रमल सिधु ।
तुहु चितामणि चितामणीणु, तुहु कामधेणु कामय गवीणु ।
तुहु कप्प हिउ कप्प हि वाण, म्रहिय[8] फलु देहि मणोरहाण ।
तुहु भवजगलछलि[9] म्रमयकु डु, पासम्मि सहल रभारुकु डु ।
तुहु गुणग्यणह रयणाहरहु, तुहु जणचितातिण पलयदाहु ।
तुहु णाण लच्छि मणहरणु रूउ, पइ बुज्भिउ म्रप्पहु थिर सरूउ ।
पइ रइ वि[10] पलाविय विहव सीलु, गियमरण होप्पाडिउ म्रासकोलु ।
पइ देवहु[11] फेडिउ घोरुमाण, मिल्लिवि सयलह इच्छाहु ठाणु ।
म्रदस वि पइ पिल्लिय[12] पायमूलि, ज सइ गिवसइ[13] गिरि गहरणकूलि ।
तुहु सव्वह जीवह करुण भाउ, महो दिक्खदाणि किज्जउ पसाउ ।

1 ग ०ताविय
2 ग दैय
3 म्रगस्त्य इत्यथ
4 ग ०म्रवेउ
5 क जे वत लोउ
6 ग विणय
7 ग म्रणिमित्त०
8 क म्रहिउ
9 ख ०थलि
10 क ख रवि, घ रयवि
11 ग दैवहु, घ घ दइवहु
12 घ घल्लिय
13 ख गिवसहि

घत्ता—इय वेयएं भासिवि, गुज्झु[1] पयासिवि, केस भारु उप्पाडिउ ।
ण पावहो मूलहु, सुह पडिकूलहु, भरु दूरें णिद्धाडियउ ॥23॥

(24)

मिल्लिवि[2] वत्थालंकरणभारु, सगहिउ जिणिंदहो चरण सारु ।
तित्थयर णाम बंधणह पासु, सोलह कारण तउ सिद्ध तासु ।
पढमे सम्मत्तहं करइ सुद्धि, मिल्लिवि सकाइय दोसबुद्धि ।
गुरु तव सय बुद्धह विणयवंतु, बयसीलहं मल दूरें[3] चयंतु ।
अणवरउ णाणु उवऊय[4] जुत्तु, सवेयपरम भावम्मि सत्तु ।
जे अभयदाण पमुहाइ[5] दाण, तै वियरइ रक्खय जीव पाण ।
बारह विहु तउ सोतवइ तिव्वु[6] रयणत्तउ रक्खय सुद्ध दव्वु ।
सो जुग्गहु वइवाविच्चजुत्तु, जिणगणि वेहुसुय पवयणह भत्तु ।
वच्छल्लवंतु सुयसाग्रराह, अपमाइउ छह आवासयाह
दसण पाहावण बहुगुणेहिं, सो कीरइ रंजिय बहुजणेहिं ।[7]

घत्ता—इय सोलहकारण, भवदुहतारण, भाविवि तहिं तिय सुद्धऊ ।
सामिय जिणहहो, सुक्ख सणाहहो, णामकम्मु तें बद्धउ ॥24॥

(25)

इय सो[8] दुद्धरु चिरु तउ[9] चरेवि, मणु मक्कडु अप्पहु बसि करेवि ।
इ दियवलु संयलु वि णिज्जणे वि, हियहु सल्लउ तउ उक्खणेवि ।
णिरु मोह महाभडु रणि जिणेवि, कोहाइ कसायहं कुल हणेवि ।
तह अट्टरुद्द भाणए चएवि, थिरधम्म सुक्कलइ मणु ठवेवि ।
तिविहेण विसल्लेहण कुणेवि[10], बहु दुट्ट परीसह अवगणेवि ।
णिय सयहो खम्मावण करेवि, परगमु[11] चरियक्कमु[12] अणुसरेवि ।
गुरु दिण्ण सिक्ख थिरमणि[13] धरेवि, ससारहु दुक्खइ सभरेवि ।

---

1 क, गुमु
2 मेल्लेवि
3 ग गल
4 क उवऊअजुत्त
5 पमुहाय, घ पमुहाइ
6 ख तत्थु
7 घ कीरइ रंजिय सो वुद्धजणेहिं
8 — मुनि पोमणाहु
9 घ तउ चिरु
10 क विसल्लेहणाहु णेवि
11 ग परगम
12 ग ०कम, घ परगणचरियाकम्मु

मणि सिलि अरिहक्खरु उक्किरेवि, सुद्धप्प सरूवहु कल चरेवि ।
कुवि कप्प सुण्णु भावण धिरेवि, सुद्धप्प रसायणि पयसरे वि[1] ।
सिवसुह छायाफलु खणु धरेवि, णिच्चलु पडिय मरणें मरेवि ।

घत्ता—सुहजोय पहावे, विग्रलिय पावें, बैजयंति सपत्तउ ।
उववायहो सपडि, सुहर सिलपडि, सपण्णउ सुहसत्तउ ।।25।।

(26)

णिरुवम तेयाणुहि णिप्पण्णउ, णिरुवम आहरणेंहि खण्णउ ।
णिरुवम देवावहि सपण्णउ, णिरुवम[2] ससारिय सुहपुण्णउ ।
णिरुवम सुक्कलेस पडिवण्णउ, णिरुवम सत भाव सकिण्णउ ।
णिरुवम बभचेरु आयण्णउ तित्तीसोवहि[3] जीविय घण्णउ ।
तित्तिय पक्खिहि सासु समज्जइ, तित्तीय वरिस सहासिहि भु जइ ।
वियरण केलि सहावय मुक्कउ, ईसागब्विहि दोसिहि मुक्कउ ।
अहमिदत्तण लच्छि महतउ, हत्थ पमाण देह सुपसतउ ।
सुरहिय सुरतरु लविय मालउ, सुद्ध गुणणि णिव्वाहिय कालउ ।
अहणि सुसुह भावण सलीणउ, ससारिय बहुभावहि खीणउ
सतोसामयरसि मज्जतहु, जाइ कालु णे मुत्ति वसतहो ।

घत्ता – वज्जिउ भवभावहि, तण्हा ताविहि, सो सिद्धु व ससरीरउ ।
तहि सुहफलु माणइ, सुह सवि जाणइ, थिर भावेण गहीरउ ।।26।।

इय सिरिचदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणो पोमणोह
अणुत्तर गमणो छट्ठो सघी समत्तो ।।

(ग्रन्थ सख्या 248 ।।

13 ग. चिरमणि
2. क णिरुपम
1. घ पइसिरे वि
3. ख वत्तीसो०

सत्तमो संधि

(1)

भणिउ भवप्पवचो, चदप्पह सामिणो समासेण ।
गब्भाइय कल्लाणह, णिरुवय सपय भणिमो ।

अह इच्छु पसिद्धइ भरह खेत्ति, गगा-सिंधू णइ जल पवित्ति ।
देमह अइउत्तमु पुव्वदेसु, सिरुपुण्णगामपुर हय किलेसु ।
जहि कलमि छित्त+सुरहिय समीरु, उच्छुय रसणई[1] सीयल सरीरु ।
दिसि दिसि मणिविभिउ दूरिजाइ, केरिसु सुदुच्छ इअ मुणण णाइ ।
✻जहि गहवइ पुत्तिउ धणहरेण, भूमि वि गह पिच्छमि गिरि समेण ।
तो[2] धुत्त कारणहु[3] दूरजाहिं तहि पयमूलि वि केयारु✻ खाहि ।
गायतिहिं गोवलवालियाहि, खज्जिय ण अलिमुहिं डसहि ताहिं ।
तहिं कणरासिउ अइ उच्छवति[4], जहिं सुरवासह चिंता मुयति ।
जहि दुक्ख पहिउ पुण्णेण लद्धु, णिहु आणिहि अमु व गेहि छुद्धु ।
ज मग्गइ तनहु देइ जुट्ठ गामिय कप्प हि व सरिससिद्ध ।

घत्ता—इय सिरिविरिहिं, पयडियसारिहिं, गामहि पुरहिं पसगउ ।
आलवण मुक्कउ, ठाणह चुक्कउ, सग्गु व पडिउ सरगउ ॥1॥

(2)

जा आयरुव्वरयणायराह[5] जा सावरुव्व बहुकणजलाह
जो[7] सुक्ख सुगालहु[6] मूलगेहु, जो दुक्खजलण उवसमण मेहु ।

---

1 क रमई
2 ग ता,
3 ग कारनहु
4 ग घ. उच्छवति
5 ख ग घ आकरु०
✻ ख घ जहिं गोगण उब्भिवि पुच्छ केउ, सुरधेणु हि तज्जहि दुद्धहेउ ।
6 ग जो सयल सुमगह,
7 = देश
\+ = क्षेत्र, ✻ = क्षेत्र

जो बहुसिरि णच्चणि भरहं गयु, जो णइ वरिए[1] पहियहि[2] रायपंधु।
जो सुक्ख भव्वगण समवसरणु, जो दुहकम्मह जिण णाहवरणु।
जो उववण मेहह गवण ठाणु, जो भववल्ली[3] कट्टण किवाणु।
जो धम्मकुसुम सोरह वसन्तु, जो रोयसोय[4] नासण करतु।
जो पवरसत्त सताण कामु, जो महुणइ[5] मायरि जणिय थामु।
जो उण्ण-जल णह णेहबधु, जो जण पोमण भरि दिण्णुखधु।
जो चउ वयकरिउल विज्भवासु, मो सव्वह विहविह सुक्खवासु।

घत्ता—तहि देसि मणोहरि, वहुविहपुरवरि, **चवउरी** णामेण पुरि।
जा मव्वह सग्गह, विहवसमग्गह सपण्णीण[6] मिरिउ वर ॥2॥

(3)

गयणत्यफलिह मालिहि[7] महतु अवलवण मुक्कउ खडहडतु।
जे धरिउ सग्गु सइ णिरवसेसु, अवगणिवु अप्पहु भर किलेसु।
ज सेवइ पडिहा मिसि समुद्द, रयणासउ मइ णिरु रयणलुद्ध।
जहि पोमराय माणिक्क गेहि, बाला लायति ण घुमिणु देहि।
जहि तु गनीलघर किरण थति आइच्चु वि मग्गहु करइ मति।
जहि रयणगेह सिहरेहि विद्ध, णह मडल असि छाया सणिद्ध।
तहो[8] पिच्छट्ट तारा विवरलक्ख, पच्चय उप्पाइणि निम्व लक्ख।
जहि चदकेतिघरसिहर णीरु, णह णइ यहि आणइ रन्नि पूरु।
जहि णील सिहर किरणेहि छण्ण, गग वि कालिंदी सलिलवण्ण।
जहि रयणगेहि दीहरसिरेहि, सग्गु वि उज्जालिउ भासुरेहि।

घत्ता—जहि सिहरि वइट्ठी, णियमणि तुट्ठी, दप्पण मत्तिए चदहु।
बाला मणु धल्लइ णिय करु पिल्लइ, णियवयणहो पडिछन्दहु ॥3॥

(4)

जा सव्वह सग्गह लच्छिकोसु, जा सिद्धेण वि सजणइ तोसु।

1 ग घ धणि
2 ग घ पहिवहँ
3 ख भयवल्ली
4 घ समु
5 = नय
6 क ख सपन्नीण
7. ग लहि
8 तह

जा भूय[1] भूमि सारेण सिद्ध, जा तिजयप्पवण सचयणि बद्ध ।
जा धम्म ग्रत्थ कामहु णिहाणु, जा णिरुवम भवसुक्खाहु ठाणु ।
जा हेमगिरिहि ण लज्जभारु, ण रोहण सेलहु ग्रजास सारु ।
ण मलय विडवण पडहु राउ, ण णदण कवहु वि गोग्र[2] भ उ ।
ण ग्रमय कुण्ड गण-गब्भणासु, ण कप्परुक्खहु कासु तासु ।
ण रवि-ससि रुइमाणहो पणासु, ण फणि णयरहु सिरिमय विणासु ।
ण धणय सुणिहि ग्रवभेयघासु[3] ण सव्वहु सारहु इक्कु वासु ।

घत्ता—तहि रयण मणोहरि, मणिमव बहुहरि, महसेउ[4] णामेण णिऊ ।
जो धरपालनउ, पिसुण हणतउ, ग्रणहु जइ णिरु परममिउ ॥4॥

(5)

जसु रिउ तिय उरकामेण मुक्कु, पहु ताडण इरिए ण सोहचुक्कु ।
जसु ग्रसिवर धाराजल समुद्द,[5] भूमीहर कुलु वोलइ रउद्द ।
ग्ररि ग्रजसम णिहि[6] मयलिउ निलोउ[7] जसु किति ग्रभय सावरि वपोउ ।
ग्राकप्पु[8] तरतउ मज्जिलाइ, सेवल वल्लरिहि गुत्तणाइ ।
जसु जयसिरि णिवसइ बाहुदिण्ड, ग्रसि पडिमा णीलोप्पहु खडि ।
जसु चामरगाहिणी पडिम ग्रगि, ण महिमलच्छि विय पयडरगि[9] ।
जसु पयतलि णिव सिर पोममाल, ण लुय ग्ररि सिरि वहुघर रमाल ।
जसु खधि णील ताडक तेउ, ण धरणि भार किण कसणभेउ ।
जसु वेरिय पुरिसायारमुक्क, सव्वउ ग्रबला होए वि थक्क ।

घत्ता—तहु बहु गुणरासिहि, सिसु ससिहासिहि, तहु बभडु विब्भरियउ[10] ।
जहि बधिहि तुट्टइ, तडयडि फुट्टइ, दिसिवालेहि विसूरियउ ॥5॥

(6)

तहु कायकति लायण्णु तासु, जहु मयलइ सिरिहिमि करहु फासु ।

1 ग भोय०
2 घ वि गोव
3 ख ग्रवभेय० घ ग्रवलेव०
4 ग महसेणु, घ महसेणु
5 घ ग्रकपु ख ०धाला०
6 क जसु सम०
7 ख निलोगु
8 ब ग्रकपु
9. घ पयइरगि
10 क विप्परियउ

तह गुरुमाहप्पहो परुपयासु, जह दइउ वि दूरिट्ठियउ तांसु ।
मंगल किर सेवहिं तासु पाय, महिमवि वहु मण्णइ तासु छाय ।
कल्लाण वि इच्छहिं नासु सगु, सुक्ख वि कखंहिं तसु मणहु रगु ।
आसीवाय वि अहिलसहिं सेव, वरदाणं बि पभंणहि देव देव ।
सुदस वि दासत्तणि पइ पउत्त, गुणंगउरुव[1] सारवि चेड भत्त ।
लच्छीए वि लच्छी तेण होइ, विज्जाणं वि विज्जा करइ सोइ ।
सूरत्तणु सूरउ होइ नित्थु, सुयदेवि वि सिक्खइ अवरु गथु ।
सु विवेउ तित्थु जायइ विवेउ, देवत्तणु सिज्भइ परमु देउ ।
सच्चहु मपज्जइ अवरु सच्चु, उद्दारत्तणि गुणु अवरु णिच्चु ।
सिद्धी ण वि तू सिवि देइ सिद्धि, बुद्धी ण वि दरिसइ परम बुद्धि ।
णाणा ण वि पयडइ परम णाणु, झाणाण[2] वि परउव दिसइ झाणु ।
सत्तीए वि सो मघडइ सत्ति, णाया ण वि देइ सुणाय[3] जुत्ति ।

घत्ता—रूवहु रूवत्तणु, वलहु वलत्तणु, सीलहु तें सीलत्तणउ ।
मण्णउ फुडु दिण्णउ, मणहरु वण्णउ वग्गहु पुणु वग्गत्त णउ ।।6।।

(7)

तसु **लक्खण देवी** णाम कंत, गुंण सीलरूवसोहग्गवंत ।
जा सुद्ध वस धणु लय कराइ, पुणु गुणि वकत्तणि णंव थाइ ।
जा मुणि वाणि व णिरु चारु वण्णु[4], एयत सत्त पुणु तहु सयण्णु ।
जा लच्छिव अजडासयहु पुत्ति, जा गोरि व णहु उप्पण्णि[5] गुत्ति ।
जा लीलामंदिर बहुगुणाह, कीलावणु सयलह तियकलाह ।
कदप्पहो जा दिढ दप्पगंठि, सुक्खहो किर अहिणव जम्मसिट्ठि ।
सिंगारहो अहिणव जीवकोसुं, विब्भम सुविलासहो परमतोसु ।
लावण्ण समुद्दहो णयहु[6] वेल, सोहग्ग गयंदहो णाइ लील ।
तारुण्णहो णावइ परम सिद्धि, रूवहो णं सिद्धी परम रिद्धि ।
अणुरायहो णं किउ पट्टबंधु, जणयणयह[7] ण सपुण्ण[8] बधु ।

1 ग घ गुणगउरव
2 क रज्झीणा
3 घ सुणाह
4. ग. घं चारुवण्ण
5. ग उप्पण्ण
6 ख घ णाइ
7 क. घ. जणणयह
8 घं सपण्ण०

घत्ता—जा पिक्खिवि कामहो, ससि ठिय णामहो, णियवाण विवेरीह वहिं ।
दिठ उरिपयसना[1], मम्मुछिवता, अणुदिणु सल्लिउ वउ दर्महि ॥6॥

(8)

मालय[2] सोरहु अणु अमयसारु, उज्जालिय हेमहो किरण भारु ।
चन्दहु[3] लायण्णु वि कमल कंति, णव सिरस कुसुम केसरहं पंति ।
कदप्पहु दप्पहु सिरि पहाउ, सरसइ देविहिं बहुकल कलाउ ।
कोइल वीणा भमरालिराव, विद्रुम[4] बिंबीहल सोण भाव ।
वासा घण रत्तिहिं बहुलु थतु,[5] गभीरत्तणु सायरहु[6] कतु ।
मयमत्तह हसह गइविलासु, मुणिणाहह णिम्मलसीलभासु ।
करि कुंभ पिहुत्थणु सीहमज्झु, कदप्प सरासण चारुगुज्झु ।
एडत्तिय ले विणु चारुदव्व, अण्णुवि मेलिवि रससारसव्व ।
विहिणा णिम्माविउ एहु रूउ, उवमाण वि वज्जिउ सुह सरूउ ।

घत्ता—मुत्तिव सहु देहे, सुहरस णेहे, तहु हुइ[7] मणहारिणिय ।
अप्पहु सिव सत्तिव, विणयहु[8] भत्तिव, चित्तहु बछा कारणिय[9] ॥8॥

इय जा दुण्णिवि सुह णेह सत्त, वग्गत्तय फल सभारमुत्त[10] ।
ता सुरवइ आएस पउत्तउ, धणउ मेह वरिसणह पहुत्तउ ।
वरिसइ णिम्मल मणि वहुधारिहि, रुइ णिज्जिय रवि ससि गुरु सारिहिं ।
आणिवि आणिवि सुरवइ कोसहु[11], पुण्ण पहाव जणिय मणि पोसहु ।
दिणि दिणि वारह कोडिउ रयणह[12], पंचासवि लक्खह बहुकिरणह ।
पच वण्ण अमुल्लइ वरिसइ, दालिद्दहो णाउ वि कह हवि सइ ।
बहु पुण्णहो महग्घु किं सीसइ, रयणायरु जल हीणु व दीसइ ।

---

1. ग ०पइ०
2 घ मालए
4. विदुम०
3 ग चदहो,
6 क सायहो, ग सायरहो
5 क थंतु
8 क वियणहो, ग विणयहो
7 क. एत हुइ, ख सातहो हुय
10. घ साभार०
9. ख घ करणिया
12 क. गयणह
11 ग घ कोसहो

मणि विट्ठहिं जा णरवइ हिट्ठिउ,   विम्हिउ जा मणि गेहि वइट्ठउ ।

घत्ता—ता दूरि वि गयणहु[1], सरहिय पवणहु, तेउ पडंतउ दिक्खइ ।
सहि सहु उक्कधरु, पुहवि धुरधरु, सदेहिउ ऊलक्खिइ ।।9।।

(10)

कि पुप्फयंत ते तिरिउ जांहि,   कि जलणजालते उट्ठुभाहि ।
कि तारा ते दिणि णहु फुरंति,   कि विज्जुल घण विणु णहु हवंति ।
इय जा ससउ णियमणि करेइ,   ता अच्छर गणु फुडु अवयरेइ ।
थिर थोर पीणथण भारभग्गु,   मुहि परिमल धाविय भमरवग्गु ।
मंदारदारमयरंदलित्तु,   हारावलिकचिय दामजुत्तु[2] ।
हरियंदण सुरहिय दहदिसासु,   सुरकुसुम गंधकिय णयर वासु ।
आवेप्पिणु पणणि दिण्णपाय,   णेउर झुणि[3] धावियहं मराय ।
सिरिकंति कित्ति धिदि वुद्धि णाम,   अण्णु वि ही लच्छी वहुलधाम ।
णिय णिय वाहण परिवारेयुत्त[4],   बहुदेव भोय ससार मुत्त ।
आविप्पिणु[5] जय कारियउ राउ,   मयणहो मक्कहो ण सिरि सहाउ ।
पभणिउ परमेसर ति जयणाह,   णिण्णि वि भुवणह पइ किय सणाह ।

घत्ता—ता भणइ णरेसरु, ण ति दिवेसरु[6], अच्छर गणु धरि आयउ ।
कि कारणु पुच्छमि, कज्जु णियच्छमि, सग्गहो पुण्णु परायउ ।।10।।

(11)

ता जपइ सिरि[7] णामेण तित्थु,   तुहु धण्णु धण्णु णरवइ कयत्थु ।
तुह मंदिरि अट्ठम तित्थ णाहु,   छहि मासिहिं होसइ तिजय णाहु ।
ता सक्के पेसिउ तुम्ह पासु,   सोहणु इह देविहिं गब्भवासु ।
ता राय लक्खण देवि गेहि,   पेसिय धय पोइय धवलमेहि ।
ता तहिं जाइवि तिहिं दिट्ठ देवि,   बहुराय महिमि किय पायसेवि ।
पिक्खिवि मुक्कउ णिय रूवमाणु,   चिरकालु वि ज पिणि बद्ध ठाणु ।

1 ग ०णहो
2 ०गुत्तु
3, ग सुणि
4 ग घ जुत्त
5 घ आवेप्पिणु
6 दिणेसरु
7 श्रीदेवी इत्यर्थ

अवरुप्प[1] रुजं पहि एहु रूउ, कत्थवि णहु दिट्ठउ फुडु सरूउ।
इदाणि वि पयहो होइ दासि, महलच्छवि लज्जइ हुअ पासि।
को चद बिंबु को अमयकुंडु, को मयणदप्पु को कमलखडु।
को परमणेहु को रइविलासु, को कुसुमवासु को सुक्खफासु।
को चदणु[2] को किर सग्गु सुक्खु, को गेयसारु को परमसुक्खु।

घत्ता—इहु रूउ उवतहं, हरिसु वहतह, एण विकासु विभासहिं।
अह एहा दिट्ठी हियय वइट्ठी, ता एह वि पडिहासहिं ॥11॥

(12)

पण विप्पिणु णिय आगगण कज्जु, विण्णवियउ सयलु विवि णियसज्जु।
पारंभिउ सेवा कम्मु सव्वु, मिल्लिवि देवत्तण णाम गव्वु।
कुवि आणिवि[4] खीरोवहि जलाइ, सुहण्हाणु करावइ सीयलाइ।
कुवि आणिवि सुरचदणु महंतु, हिमु मसिणु सुगधिहि मह महंतु।
आणिवि देविहि निपेइ अगु, ण णिहणइ सुअण णहो ताव मगु
कुवि पारिजाय मदारमाल, सिरि वधइ महुअर भुणि रमाल।
कुवि णण णाहिं बहु पत्त मग, गडच्छलि विलिहइ[5] जणिय रंग।
कुवि हार कडय ककण किरीड, केयूर रसण कुडल मुचूड।
णेउर मुद्दिय पालबभेय, आहरणपवर पयडिय विवेय।
ढोवइ आहरणइ मणि णिरुद्ध, हरि तियह वि जे किर देहिं सद्ध।
कुवि रयण कति सण्णिह सुचीर, पहिरावइ णिरु सुहई सरीर।
कुवि वासइ अगरहु धूमिदेहु, कुवि सुरहि वासु अप्पइ णिरेहु।

घत्ता—कुवि[6] थई यहि गाहिणि, मण अवगाहिणि, कुवि भोयण रस आणइ।
कुवि फल दल भारइ, णयण सारइ, ढोवइ जे मणि माणइ ॥12॥

(13)

कुवि लेइ[7] दंडु[8] पडिहारि धाइ कुवि धवलछत्त सधरण धाइ।

1 घ अवरोप्प
2. घ कंचणु
3. घ वेप्पिणु
4 घ आणेवि
5 क शब्दोऽय नास्ति
6 ग किवि
7 घ लेवि
8 घ देदु

कुवि उज्जल चामर गाहि णीउ, कुवि रयण उवाणह वाहिणीउ ।
कुवि असिवर;हत्थिय अगरक्ख, किवि सिज्जा पालहिं सुह मसिक्ख ।
किवि[1] भक्खणीर[2] मदिरि णिउत्त किवि गेह कम्म भारे पउत्त ।
किवि णच्चहिं जाणिवि भरह भाउ, किवि गायहिं वुज्झिय परम साउ ।
किवि वसवीण सुणि[3] अमयधार, सवणे सुरिवरहि णिरु सुक्ख सार ।
किवि मद्दल तिवलहिं पडहराव, देविहिं उप्पायहिं[4] सुक्ख भाव ।
किवि वाडु चवहिं चारणह भास, किवि मडलु मडिवि देहि रास ।
छहिं भासिहिं किवि णिरु कवहि कव्वु, किवि इदजालु दक्खहि सव्वु ।
किवि मरस कहहिं सा गाहवत्त, किवि सवाहिहिं देवीहिं गत्त ।
किवि वक्खाणहिं जिण समय भेय, किवि दरसहिं तहिं फलपत्त छेय ।

घत्ता- -इय बहु सुररमणिउ, सुर मण दयणिउ, तहिं जिण मायरि सेवहिं ।
पित्ताइय दोसह, बहु मलपोसह, मोहण विहिणा देविहिं ।।13।।

(14)

इय जातहि सोहिउ गब्भवासु, समधाउ करणि णिम्मल पयासु ।
ता लक्खण देवी सयणि सुत्त, चिंताइय दोसहिं दूरि चित्त[5] ।
जा किर अरुणोदयहो फुरइ कालु[6] ता दिट्ठु सिविण सचउ रमालु ।
दिट्ठउ अइरावणु पढम इत्थु, मेहुव गज्जतउ उद्धहत्थु[7]
जगम केलासुव वसह णाहु, मीहहो किसोरु विप्फुरिय वाहु ।
लच्छी दिट्ठी कमलासणच्छ, मदारमाल जुअलु वि पसच्छ ।
णिल्लछणु दिट्ठउ धण मियकु, दिट्ठउ ऊवतउ वालु[8] अक्कु[9] ।
मणिकु भ जुअलु रयणेहिं पुण्णु, णिम्मलु सरु दिट्ठउ सिरि रवण्णु ।
मीणह मिहु णुल्लउ तरलु तिच्छु, दिट्ठउ सरवरि केली कयच्छु ।
दिट्ठउ गज्जतउ जलणिहाणु, सिंहासणु सीहिहिं वुज्झमाणु ।
णहमडवि दिट्ठउ सुरविमाणु, अण्णु वि णायालउ लच्छि ठाणु ।

1 घ कवि
2 क रक्खणीर
3 ग घ झुण्ण
4 घ उप्पयहिं
5 ग घ. वत्त
6 सूर्यकालात् प्राक् स्वप्न दृष्टा ।
7 ख उड्ढहत्थु, ग. उद्धहेत्थ
8 ग वाल, ण
9 घ लक्कु

दिट्ठउ मणि सचउ विप्फुरतु, णिद्धूमउ अलणु वि धगधगतु ।

घत्ता—इय सोलह सिविणइ, सुहफल णिउणइ, पिच्छिवि सा पडिबुद्धी ।
वहु मगलतूरिहिं, ण[1] सुहपूरिहिं, सालिगण पारिद्धी ।।14।।

(15)

ता करिवि पहायहु णिच्चकम्मु, अण्णु वि सपाइवि साहुधम्मु ।
णाहहु पासम्मि पहुत्त झत्ति, अरिकय सिविणावलि दिट्ठि जुत्ति ।
त णिसुणिवि णरवइ दिट्ठि सत्थु, सिविणय फलु अक्खइ ताह तित्थु ।
तुह तिहु अणि[2] धण्णी देवि इत्थु, तुह तिय जम्मु वि जायउ कयत्थु ।
तुह होसइ णदणु तित्थ णाहु, ऐरावइ कर पाल व वाहु ।
ऐरावें दिट्ठे[3] दाणवतु, जगभारु धरइ[4] धवले महतु ।
सीहे[5] मह विक्कमु तेय जुत्तु, सिरि दसणि तिहुयणि लच्छिभुत्तु ।
मालइ सुरेहि सिरि धरिय पाउ, चदें[6] सोहग्गहो सीम ठाउ ।
सूरिति लोय पसरिय पयाउ, कलसे सवलहो मगल पहाउ ।
मीणे सीयल सिव णयर ठाणु, सरवरि उप्पाइय विमल णाणु ।
जलणिहिं[7] दसणि[8] भवजलहिं सोसु, सिंहासणि पयडइ भविय तोसु ।
सुरजाणे सुरवर णाह विंदु, णायाले णायहे देइ णदु ।
मणि पूरे रयणत्तयहो हम्मु[9], जलणेण दहइ ससार कम्मु ।

घत्ता—सु विहाणइ दिट्ठउ, मइ फुडु घुट्ठउ[10] सिविणउ तुरिउ फलेसइ ।
तुह पुण्णपमाणे, वहु सुह ठाणे[11], सक्कु वि दासु हवेसइ ।।15।।

(16)

अह भु जिवि बद्धउ आउ कम्मु, अवगाहिवि सयलु वि सार सम्मु ।
छडिवि विमाणु सो वेजयतु[12], अहमिंदु चवे विणु दिट्ठि वतु ।

---

1 क. णे
2 यणि
3 क दिट्ठि
4 घ. धरह
5 घ सिंहि
6. क चदि
7 कलणेंहि
8 ग दसणें
9 क रम्मु
10 ख. ग सिट्ठउ
11. घ णाणे
12 ख वंजयतु

पच्छमि दिसि खित्तहु[1] किंव्ह पच्छिल्ल, ससि वेसुधरे विणु चारु रिक्खि ।
लक्खरा देविहिं अवइण्णु गब्भि, रा चंदु पइट्ठउ सरय अब्भि ।
रा सुत्ति मज्झि साय वु बिंदु, पडिबिंबिउ सरवरि राइ चंदु ।
रा पोमिणि दलतलि ठिउ[2] तुसारु, रां दत कु पि पारयहो सारु ।
रा सो जिरिा लीराउ वेजयंति, रा सिद्धु बुद्धु[3] मोक्खहो[4] सिलंति ।
रा परमप्पउ रिाय अंतरप्पि, सिद्धत्तणु रा भवियारा अप्पि ।
रा दव्वतव्वु जिरा समय मज्जि, रा परम धम्मुदय चग्गामज्झि ।
रा सच्च[5] वयणु मुरिागरामुहम्मि, रा पडिवण्णउ सज्जरा जराम्मि ।
रा सुक्खु परिट्ठिउ धम्मवंति, रा कित्ति पसरु गुरा दारावंति ।
रा वग्गत्तउ रिारु पुरिसयारि, रा रिाच्चु राेहु बहु दारासारि ।
जह सुक्खे[6] एअच्छंति इत्थु[7], तह देउ परिट्ठिउ गब्भितित्थु ।

घत्ता—सुर दुंदुहि वज्जइ, तिहुअरा गज्जइ, ता सुरहरिसें[8] पिल्लिय ।
रिाय रिाय परिवारें, दरिसियसारें, तहि पुरवरि सचल्लिय ॥16॥

(17)

चउवीसइ द कप्पामराहं, वत्तीस जि सामिय विंतराहं ।
चालीस सक्क भवराामराहं, रवि चंदु जुवलु जोइसवराहं ।
ए आइवि रिाय रिाय वाहरोंहि, दरसिय आहररा पसाहरोंहि ।
अच्छर कोडाकोडीहिं जुत्तु रिायलच्छि रिद्धि रा मारमुत्त[9]
वेउव्वरा दरिसिय वहु पयार, रिाय वाहरा पयडिव वेयसार ।
हय वारह कोडिउ सद्ध तूर, वरिसिय गंधोवय कुसुम पूर ।
आहवि पुरु तिपयाहणु करेवि, महसे राहु मंदिरु अणुसरेवि ।

---

1. ख ग. चत्तहु
2 क थिउ
3 क घ सुद्धु
4 घ मुक्खहु
5 घ. सव्व॰
6 घ सुक्खि
7 घ एच्छु
8 घ हरिसि
9 क घ. सभार मुत्त

लक्खरण देविहि पार्याहं पडेवि, रयणाहर रिएहिं पूया करेवि ।
महसेण पुरउ जोडे[1] वि हृत्थ, पुणु भणइ तुम्हि दुण्णि वि कयत्थ ।
दोहिवि जीवाविउ जीवलोउ, दोहिमि तय लोयहु हणिउ सोउ ।
दोहिमि[1] ढकिय णरयाहृ[2] दार, दोहिमि सुघडियउ भवियसार ।

घत्ता—इय वहु सुपससिवि, ग्रसुह णिहसिवि, गन्भट्ठिउ जिणु सथुणिवि ।
हरिसें[3] णच्चता पुलउ वहता, गय सुरठाणहु सुहु कुणिवि ॥17॥

इय चदप्पहचरिए महाकइ जसकित्ति विरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे ।
गब्भावयरणो णाम सत्तमो सधी समत्तो ।,7।।
(ग्रन्थ सख्या 160)

1 घ जोरे
2. ख दोहवि
3. क. रयण'हं
3 ख. घ. हरिसिं

अट्ठमो संधि

(1)

जह जह तहिं जिणु परिपुण्णदेहु, तहँ तह तहिं ववसिय किरण गेहु ।
देवी सा ण फलहिं[1] घडिया, ण अमयपिंडले विणु[2] मढिया ।
ण णिम्मल[3] पुण्णिहिं परियरिया, ण णिम्मय जिणु जस विच्छुरिया ।
णं गब्भ धवल किरणहे कलिया, ण सोक्खर सायण रमलुलिया ।
उअरिण[4] वलि तिउ भारेण भग्गु, ण जीवय जम्मु जरत वग्गु ।
कम्मे सहु यण जुउ कसणवत्तु, मोहे सहु उज्जमु मद सत्तु ।
कोहे सहु कपइ पयह चारु, माणे[5] सहु झीणउ सरपयारु ।
ससारें सहु भोयणु वि मदु, कम्मे[6] सहु णट्ठउ वसण विंदु
णिद्दइ सहु वट्टइ तिजय पुण्णु, आलसि सहु धावइ समहु सिण्णु ।
धम्मे सहु थणहरु होइ तुगु, लोह सहु णिम्मलु होइ अगु ।
ज भाइय सहु दय वहु फुरेइ,[7] तेए सहु तउ[8] पसरणु करेइ ।
उवरें सहु वट्टिउ भुवणणेहु, अगे सहु धवलिउ तिजय गेहु ।

घत्ता—इय सा गब्भालस, सुह भरलालस,[9] णाह णेह रस सत्तिय ।
दोहलय समज्जइ, जिणपय पुज्जइ, धम्म भाव बहु सत्तिय ।। 1 ।।

(2)

उप्पण्ण ताहिं दोहलय भाव धरि केलि पक्खि गोयण सहाव ।
वदिहिं मिल्लिय अरियण कुलाइ, चिर मोयण परिसें सकुलाइ ।

---

1 ख फलिहेहिं
2 ख ग बेंणु
3 ग णिम्मले
4 घ उयरिण०
5 ग माणे
6 क कामे, ख कम्मि
7 क उरेइ
8 ख ग वउ
9. ग ०लालल

अण्णु वि बंधइ णरणाई दार सभोडेण रम्भिय अणपयार ।
पिहुला वणि इच्छा सम्मवारि विहडावणि सच्छा मुक्खवारि[1] ।
खीरोवहि सलिलें[2] भाविण्हाणु[3], दच्चइ सुवण्ण कमलेसु जाणु ।
जाणइ सुरमउडइ[4] देमि पाय, मच्चइ लिहु छत्तहं तणिय छाय ।
भावइ मित्तत्तणु हरि गयाहु, इच्छइ पडिवोहणु मइ हयाहु ।
तिहुयणि उज्जालउ अहिलसेउ, परमप्पहु लग्गउ मलु फुसेउ ।
जाणइ जणु बोलमि अमियकु डि, जाणइ सामु वीवमि अउजलडि[5] ।
जाणमि[6] पीयमि संतोस सारु, जाणमि[7] णिद्धाडमि कम्म भारु ।
जाणमि जइ मोडमि कामबाण, जाणइ अवगाहमि पवणाण ।

घत्ता—जे करइ मणोरह, मणवल्लावह, ते सुरवइ सविपूरइ ।
जिणभत्ति गहिल्लउ, मणह पहिल्लउ, धाइवि दुक्खइ चूरइ ॥2॥

(3)

त णवमासाह पारपुण्ण दहु, णाणत्तय जुत्तउ पुण्ण साहु ।
पोसहु एयारसि किण्ह पक्खि उच्चट्ठिय सयलहिं रायरिक्खि ।
देविए जणियउ जिणु धवलु वण्णु, सहु सुट्ठुत्तर लक्खण पवण्णु ।
समचउरसु सठाणेण जुत्तु, पढमें सहणणें घडिय गत्तु ।
अ गुरूभव सोरह महमहतु, सिय दुद्धधवल सोणिउ वरंतु ।
मलसेए वज्जिउ[8] विप्फुरंतु, लोयाहिउं वीरिय भरु[9] वहतु ।
सयला हिय रूवें सिरि महतु, पियहियवाणी ससारवतु ।
तेइ सूई हउ भासयंतु, भुवणु वि तक्खणि उल्लासयंतु ।
अछभयणिग्गउ णं बालसूरु, ण वारिणिहिं णिग्गउ अच्छपूरु ।
ण अरणिहि जलण फुलिगु दिट्ठु, ण वम्महो सुहफलु जणिउ इट्ठु ।
ण चरणहु हुवउ परमु णाणु, ण सत्तहु जायउ परमु दाणु ।
ण णाणहु उवसमु हणिय कामु, ण समहु हुवउ सिव सुहु सुधामु ।
ण सिवहु हुउ णियरस[10] सहाउ, ण अप्प सहावहु परम भाउ ।

---

1 क सुक्खदारि
2 ग. सलंलि
3 घ भाइण्हाणु
4. घ सुरमउडहिं
5 घ भरहक्खडि
6. घ जाणइ
7 घ जाणइ
8 ख. मलसेइ विवज्जिउ
9 ख , घ णिरु ०घ. लोयाहिउं
10 क हवउ तिरियण

घत्ता—ता हरि सिय तिहुग्रणु, णच्चिय सुरयणु, वाहिय लोयहं[1] खुहु गय ।
अण्णु वि सोयतहु, करणुरुग्रतहु,[2] जीवहु णट्ठा सयल भय ॥3॥

(4)

खोणिहि उट्ठाइय मणिणिहाण, ण दुच्छहु उप्परि करिय याण ।
फुल्लिय छह समयहु दुमह जाइ, अट्ठारह धण्णहि पुहइ[3] भाइ ।
राए वद्धावउ[4] अप्पतुल्लु, अप्पिवि किउ णिय पुहवीहिं मुल्लु ।
णच्चहि सिरि हरि मणि तुट्ठियाउ, णिय पुण्ण मणोरह[5] पुट्ठियाउ ।
वायउ सीयलु तहिं मलय वाउ, गघोवय विट्ठिहिं सुह सहाउ ।
जो रयणिहि वरिसिउ तीस पक्ख, सो धणउ मेहु सुर कुसुम लक्ख ।
वरिसइ अइवीहरधार जुत्तु, बहु हरिस पुण्ण सभार मुत्तु ।
णिम्मलु जायउ तहि गयण मग्गु, अइ धवलु धवलु हुउ[6] दिसिहिं वग्गु ।
इदहु कंपिय सिंघासणाइं, कप्पिहिं उट्ठिय घंटारणाइं ।
जोइस घरि जाया सिंघाणाय, वितरघरि वज्जिय पडह धाय ।
बज्जइ सखावलि भवण ठाणि, किं किं णहु कीरइ पुण्णखाणि ।

घत्ता—णिक्कारणु वज्जिअय, मेहव गज्जिय, णिय णिय तूर सुणे विणु ।
णिय अवहि पउ जहिं, ससउ भजहिं, मणि वहु हरिसु कुणे[7] विणु ॥4॥

(5)

णाणें जाणिवि उप्पण्णु णाहु, सुरवइ गणुवहु भत्तिए सणाहु ।
उट्ठिवि णिय णिय सिंहासणाइं, मणि भार किरणभाभूसणाइं ।
तद्दिसि जाइवि पयसत्तजासु, भूयलि लाइवि[8] सिरु किय पणामु ।
ता दाविय दुद्दहि हरिगणेण, आयण्णिय देविहि थिरमणेण ।
सोहम्मि[9] चिंतिउ णिय करिंदु, वेउव्वि वि ण सिय गुरु गिरिंदु ।
आयउ जोयण लक्खिक्क माणु, वत्तीस हिंवयणिहिं[10] भासमाणु ।

1 ख लोयहु
2 ग घ. ०यतह
3 ख पुहवि
4. ख. बद्धाउ
5 क मणोहर
6. ख वलु हुउ
7 ख घ जणे
8 ग घ लाएवि
10 क. वयणिहि
9 घ सोहम्मे

तहो मुहि मुहि दंत वि अट्ठ अट्ठ, केलाससिंग सारिच्छ सिट्ठ ।
तहो दंति-दंति सरवरु विसालु, वत्तीसहिं कमलहिं अइ रमालु ।
णिय कमलि कमलि वत्तीस पत्त, दलि दलि णव्वहिं वहु हरिणणेत्त ।
बहु चमरहिं मंडिय बहुय कण्ण[1] तहिं मणि किंकिणि लक्खेहिं खण्ण ।
वहु णमिहिं मयजलु णिज्झरतु, ससि सूरु वि घटा जो[2] वहतु ।
विज्जुलमाला णिह कक्खवतु,[3] मणि पचवण्णक वलु वहतु ।
वहु रयण पिट्ठ[4] अइ चित्त देहु, सव्वह अयसय णाणाह[5] गेहु ।

घत्ता—केलासु व जगमु, चउपय सगमु, मेरु व जिण जसि धवलियउ ।
विंज्झु व हिमभारे, पसरिय सारे, आइवि ण णिरु सवलियउ[6] ।5॥

(6)

जे गिरि पमुहइ उवमाणु तासु, दिज्जहिं ते सव्वइ होंहि हासु[7] ।
जो हरिहि पयावउ धवलु वण्णु,[8] तेयहो गेहु व सिय भार वण्णु ।
देवह जिण भाउ व मुत्तिवतु,[9] भावह ण वेउ व सत्तवतु ।
सत्तह णिव्वाहु व कायवतु, कायह सघाउ व जीववतु[10] ।
जीवह पूरु व हकार वतु, हकारह तेउ व थामवतु ।
थामह आवेसु व लच्छिवतु, लच्छिहिं अहिठाणु व गुण महतु ।
गुण महिमहं वासु व कित्तिवतु, कित्तिहिं सठाणु व दाणवतु ।
दाणह गेहु व सु विवेयवतु, ...
सुपयासह वासु व सिय दिसासु, सुविवेयह णाणु व फुडु पयासु ।
वहुभेय पुट्ठि उब्भिभय सुकेउ, दिसि वयणह मडणु गय विलेउ ।

घत्ता—तं पिच्छि वि सुरवरु, वहुविहु अच्छरु, मणि सतुट्ठउ जायउ ।
लीलइ आरूढउ, हरिसे गूढउ, कुट्ठय मज्झि परायउ ॥6॥

1 =वहुकर्णं — 2. ग जु
3 = कक्षायुक्त — 4 =तूर्ण
5 ग ठाणाहिं — 6 क सवलिउ
7 =सर्वपर्वतानां हास्यं भविष्यति — 8 =हस्ती इन्द्रप्रताप इव
9 = जिन परिणाम इव मूर्तिवान् — 10 =कायानां सघात इव जीववान्

(7)

कोडी सत्त वि भणु कोडि वीस, इ दणिय इत्तिय तहिं[1] गिरीस[2] ।
भारूढ मूलदेवीय[3] इत्थु, को सखेसइ[4] परिवारु तित्थु ।
तित्तिय तिय गणु[5] पडिहरिहिं चलिउ, बहु हरिस भत्ति भावेण कलिउ ।
सव्वह कप्पह सचलिय देव, णिय णाहिहिं सहु जिण विहिय सेव ।
णिस्सखा जोइस चलिय सव्व, वितरगण चल्लिय गलियगव्व ।
भवणामर हल्लिय तक्खणेण, विज्जाहर धाविय सहु मणेण ।
भइ पिहुलु वि णहु सकडउ जाउ, दिसि मग्गु वि हूवउ तुच्छ भाउ ।
वेमाणिहिं धासइ फुड विमाणु, जाणिहिं मज्झहिं फुडु सिविय जाणु ।
भाहुट्टइ रहुरह[6] वरिहिं तित्थु, गयवरु छउइ[7] गयवरह पत्थु ।
छत्ते णिह सिज्जइ धवलु छत्तु, विंधि भालुद्धइ[8] विंधु गुत्तु ।

घत्ता—बहु पूमा पत्तिहिं,[9] ठिय सयववत्तिहिं, पूमपत्त णिह सिज्जहिं ।
बहु मगलदव्वहिं, भवरिहि सव्वहिं, भवरुप्परु तहिं भज्जहि ।।7।।

(8)

णहु छत्तिहि दीसए धवलवण्णु,[10] ण कोडाकोडिहि ससिहिं छण्णु ।
धयवडिहि[11] मगलक्खेहि किण्णु, चमरिहिं ससिकइ जालेहिं पुण्णु ।
णीलुप्पलु मउ[12] सीयरि चएहिं,[13] रभा घडियउ कयली सएहिं[14] ।
रविकुल सकुलु[15] कणयहु[16] कुडेहिं[17], जउणा सकडु[18] मरगय पडेहिं ।
कुरू विदहि ण भरुणेहि भाइ [19], महणीलिहिं मह भधारु णाइ ।

---

1 क तिंह,
2 ग णिरास, = ईर्ष्या रहित ,
3 = इन्द्राणी,
4 = सख्यां करोति.,
5 ख गुणु,
6 = रथ रथेन संघट्टते,
7 ग छुट्टइ,
8 क भालुरिवि, घ. भालुभिवि,
9 क तूया० = पूजापात्राणि,
10 =नमो छत्रै- कृत्वा उज्जवल जातम्,
11 ग धयवडहिं,
12 =नीलोत्पल निष्पन्न,
13 =छवीससमूहै ,
14 = कलि इन्द्रणीव तथा घटित नम ,
15 =सूर्य समूह सकटम्,
16 ग कणयहो,
17 = सुवर्ण कुम्भै ,
18 = यमुना नदी सकटम्
19 =रक्तनेत्रै केलिशनै कृत्वा,

ससिकंतिहिं गावइ चदखित्तु, वेरुलियहिं गावइ हरियगुत्तु ।
सञ्झाकालु व विद्दुमह पुरु, रमणिहिं गहमण्डलु गाइ सूरु[1] ।
सुरकुसुमहिं मालहिं कवु गाइ, गब्भिहिं सोरह सच्छण्णु भाइ ।
दु दुहि सद्देण पिहुल थाइ[2], गेय ग कल्लोलेहिं जाइ ।
णच्चेण सयलु वि णच्चवतु, भारेण सयलु वि तलिल्ह सतु ।

घत्ता—चउ सुरहणिकायहिं, गयणि अमायहिं, बभडु वि तह पूरियउ ।
जह वाहण देवहिं[3], कयपहुसेवहिं, सकडु मग्गु वि सूरियउ ॥8॥

(9)

कुवि सुरु पभणइ लहु मग्गु देहि, महु[4] सीहहो गयवरु दूरि णेहिं ।
कुवि पभणइ केसरि करहि दूरि, सरहिं हउ[5] पच्छा मावि सूरि ।
कुवि पभणइ हरिणु म आणि पासि, महु दुद्दहु[6] वग्घहो दूरि णासि ।
कुवि भणइ म पिल्लहि भाइ इत्थु, सेरह[7] भग्गइ हरि जाइ कित्थु ।
कुवि भणइ वसहु चित्तयहु टालि[8], उम्परहु[9] मलेवि मासूलु[10] चालि ।
कुवि पभणइ सदणु दूरि किज्ज, आणिवि गय उप्परिमाधरिज्ज[11] ।
कुवि भणइ मेहु वयहु णसाडि[12], मा उप्परि आणिवि मूढ फाडि ।
कुवि भणइ सप्पु परमग्गिणेहि, मा गरुडहु आणिवि मुहि करेहिं ।
कुवि भणइ हसु मकडि म घल्लि, मज्जारु गिलेसइ सीलु पेल्लि ।
कुवि भणइ मोरु तुह अइरमालु, पुणु मज्झु सुणहु[13] णियडउ करालु ।

घत्ता—किवि भणहि सुरेसर, वहुवाहणधर, अम्हि पत्थइ जाए महु ।
पइसिवि अइ सकडि, पाडिय चयवडि, णहु वाहणइ गमेसहु ।

(10)

इय जह जह पुरि आसण्णहुति, तह तह सुरवाहण लहुय थति ।

1 = मालिभि व्याप्त नभः
2 क वा इ
3 = वाहन देवै
4 क महो,
5. = अष्टापदै हत
6 क दुद्दहो, ध दुद्दहु
7 क सरह
8 चित्रकात् दूर कुरु
9 सर्पात्
10 ख उवरहो नकुल
11 = गजोपतिमाधारय
12 वातात् दूरी कुरु
13 = स्वान

आइवि तहिं पुरि किय कुसुम विट्ठि, गंधोवय रयणिहिं जणिय सिट्ठि ।
दु दुहि[1] अप्फालिय कय विसेस, तूरत्तउ[+] पवडहिं सुरवरेस ।
ता इदाणी सई उत्तरेइ, णियकज्जहो अवसरु मणि धरेइ ।
आइवि वद्धाविउ जिणहु[2] ताउ णियहह्[3] किउ मगलह्[4] भाउ ।
जाइवि सूई हरि भत्ति जुत्त, दिट्ठी[5] लक्खण देवी सपुत्त ।
दिट्ठउ परमेसरु तिजयणाहु, कप्पूर धवल सोहा सणाहु ।
रोमचकचु हुउ सयलु देहु, लोअणजुउ[6] ण सावणह् मेहु ।
हिय उल्लउ हरसि[7] पूरियऊ, बहुलोयण हेउ विसूरियउ[8] ।

घत्ता—जिण मायरि ससिवि, कुलु वि पससिवि, माया सुउ तहिं अप्पि वि ।
जिणणाहु लएप्पिणु, हरिसु वहेप्पिणु, पुणु रवि गयणु वि सप्पि वि ।10।

(11)

अप्पिउ सुरणाहहो परम देउ, जय जय भणेइ हरिगणु सुमेउ ।
करकमलइ मउलइ सुरह सत्थु, अहिणउ पिच्छिवि[9] जिणचंदु तित्थु ।
सुरणयणइ पूरइ हरिस वाहु, जगि दुल्लहु जिण दंसणह् लाहु ।
पुर पभणहि षण्णउ सहसचक्खु, सहसक्खु वि सेसक्खिहिं[10] समक्खु[11] ।
से सुवि[12] तहिं दुत्थिउ[13] रूउ पेक्खि, कह होइ तित्ति अवरह समिक्खि ।
णयणाहिय लक्खण पिक्खि सक्कु, अणिमिस लोयणु होए वि थक्कु ।
देवग पिहिय सुक्खरि सिरम्मि, सक्के संठवियउ कोमलम्मि[14] ।
ईसाणें धरियउ धवलु छत्तु, पिंडे[15] वि तासु जिण जसु पवित्तु ।
साणक्कुमार माहिंद णाह, चामरढालणि जाया सणाह ।
जे अवर पवर देवाह् णाह, ते करजोडिवि ठिय सेवगाह ।

घत्ता—इय तहिं सोहम्मे, माणिय सम्मे, अइरावइ सचालियउ ।
सीयर आसारिहिं, मयजलधारिहिं, णहपहु पुरउ करावियउ[16] ।।11।।

1 ख ग दुदुहे
2 ग जिणहो, घ जिणहु
3 ग हच्छह्
4 क मगलह्
5 क ग दीट्ठी
6 ग लोयण०
7 ख घ हरिसें
+ = गीत नृत्य वादित्राणि
8 = बहुनेत्राणि यदि भविष्यन्ति तदा जिनस्य रूप सर्वं पश्यामि इति विषाद कृतं ।
9, ख पुच्छिवि
10 क सेसाक्खिं
11 = सहस्राक्ष्य शेषनेत्रैं रूप पश्यति,
12 = धरणेन्द्र
13 घ दुत्थिउ,
14 = कोमलवस्त्रादिछादिते
15 घ पिंडि एकीकृत्य
16 = नभपथाने पुरकारापित

(12)

ता चल्लिय चारिवि सुरणिकाय, भूमंडलु ढकइ चयह छाय ।
बहु जाणहिं गयणु ण कहवि दिट्ठु, जगमु भुअणत्तउ णाइ सिट्ठु ।
जोयणसयसत्त वि णउव[1] जाम, महिं छंडिवि तारा दिट्ठ ताम ।
तह उप्परि रवि जोयण दहेहिं, चदु वि असियहिं दिट्ठउ सुरेहिं ।
णक्खत्तइ चहु चहु बुह पहाणु, तिह सुकुतिहु जि सुरगुरु सुजाणु ।
तिहु मगलु तिहु पगुलह[2] ठाणु, तहु अग्गइ सुद्धउ णहु वियाणु ।
उडुगणु सुरकरि सीयर सरिच्छ, पसरिय मणिणज्जहिं गयणि अच्छ ।
णहणइ रत्तुप्पल[3] मति मूढ, कुवि सुर करि केली भावगूढ ।
आइच्चवि वि[4] तह खिवइ हत्थु, जहिं पिच्छिवि विहसइ सुरह सत्थु ।
दु दुहिरव तट्ठउ ससि कुरगु, ता णिम्मलु हूवउ त सु अगु[5] ।
सुरणारिहि सकिवि मुहहु तुल्लु, आणिवि अप्पिउ सइ हरिणु मुल्लु ।
तह गेए णिच्चलु कियउ तासु, जह चदहो छुट्टइ णेम[6] पासु ।

घत्ता—इय णह पह मु जिहि[7], सुरह मणुज्जहिं, बेए णहु अइकतउ[8] ।
ता दिट्ठउ मदरु, बहु सिरि[9] सुन्दरु, सम्मुहु ण आवतउ ।।12।।

(13)

सुरगिरिणा पिक्खिवि तिय समेय, माणिक्क दित्ति दीविय सुतेय ।
णिज्झरण तुमारिहि छइय देय, सुरतरु कुसुमेहिं पयरइ भरेइ ।
मणिसिलसिघासणु पाय डेइ, चमरी पु छहिं चामर खिवेइ ।
वाय दोलिर[10] तरु मिसि णमेइ, थल कमलिणि तलि णइ[11] सठवेइ[12]
करिभजिय चदण इसु पुरेइ, कप्पद्दुम दलचीरइ घरेइ ।
मयणाहिहिं परिमलु विक्खरेइ, मारुअ[13] हल्लिय तार्डिहिं णडेइ ।
कोइल झुणि गेयइ पायडेइ, मारुअ[14] पूरिय वसिहिं रणेइ[15] ।
[6] हणेय, लोलिर लयाहि पडिहारु[17] होइ ।

1 घ णउअ
2 = शनि
3 = नभ एव नदी कमल
4 ग, वें,
5. चन्द्रस्य शरीरम्
6 घ गेइ,
7 ग नेय,
8 घ बुज्झिहिं,
9 = अतिक्रान्त , उलघित ,
10 घ विह,
11 क ख वात दोलिल
12 क तणइ
13 = थल कमलान्येव शय्य स्थापयतीति मेरु
14 घ मारुय
15 ख घ, हल्लिर
16 = शब्दयति
17 = मरु प्रतिहार करोति ।

पभणइ कूरह मारहउ कोइ, — — — . — — — —
सुरतरु कलियहिँ रोमंचि अगु, देवहिँ दिट्ठउ मंदरु सरगु ।

घत्ता—उज्जल सोवण्णिहिँ, घडिउ सुवण्णिहिँ, बहुविह रयणिहिँ सजडिउ ।
सच्चउ भूणारिहिँ, तिहुअणसारिहिँ[1], उरयलि पदकु व संघडिउ ।।13।।

(14)

जो भूयो ण्हुण वीयकोसु[2], उवरिट्ठिय घण अलि जणिय तोसु ।
फणि भवणहो सिरि ण कणयकुमु, णहे[3] गगधवल[4] घयवड[5] विभमु ।
ण धम्मकरिंदिहो हेमथमु, रविससि चामर जुअलिहिँ अदमु[7] ।
ण णहसिरि करि[8] इहु माहुलिगु, उप्परि घणपत्तिहिँ अइसुरगु[9] ।
ण दियवउ[10] इहु किउ मोक्खमग्गि, ण कणयणि सेणी चउण सग्गि ।
तसणाडि वस मज्झम्मि दिट्ठु, गोरोयण पिंडु[11] व णाइ सिट्ठु[12] ।
ण सम्मणिहाणु व सधर हिट्ठ, बहु हेमकोडि सर्जणिय सिट्ठु ।
ण रोदसि पजरि चक्कवाउ[13], ण णहमूकीलण कील भाउ ।
ण जिणवरण्हाण सुवण्णपीढु[14], बहु गहमुत्तिय रगालि लीढु ।
ण जयकडिसुत्तहो कणयखेल, उडुगण रयणिहि मडिय सुमेल ।
ण दहदिसि वेल्लिहिँ पिंगु कदु, इय दिट्ठउ सुरगिरि लेय रुदु ।

घत्ता—सुरतरु मय रदिहि, परिमलु रुदिहि, जो ण पिंजरु आयउ ।
अह जिण जलण्हाणिहिँ, घुसिण समाणिहिँ चिरु लिपिउ सच्छायउ ।।14।।

1 ग. तिहुयण०, 2. कवलपोकरी मजरी मध्यप्रवेशा:
3 आकाश-गगाया: पूजापट्ट, 4. ख दडी,
5 घ. धय धवड, 6. ग. घ. जुयलिहिँ,
7 =मायारहितो मेरु, 8. हस्ते,
9. ख घ. सरगु, 10 ग. घ दीवउ,
11 =गोरोचन पिण्डु इव, 12 ग सिट्ठि,
13 =आकाशपृथिव्यो: पञ्जरे चक्रवाक इव मेरु,
14 ग सुवण्णवीढु

(15)

तहुं[1] उप्परि पंडुय[2] वणु रमालु, जोयण सय पंचहिं जं विसालु ।
छहिं ऊणिहिं सुरतरु जाय[3] छण्णु, चउदिसि चउ चारु सिला पवण्णु ।
पडुय सिल तहिं ईसाण कोणि, उत्तत्तकणय किरणाह खोणि ।
अद्धेंदु सरिच्छी पीयवण्णु, जोयण सउ दीहत्तणि पवण्णु ।
जोयण पचासज्जि वित्थरेण, अट्ठ जि जोयण उदयत्तणेण ।
सिंहासण तिण्णि जि णिव्वतित्थु, मणिमय पभणइ जिण समय सत्थु ।
धणुसय पच जि उदयेण हुंति, पच जि धणुसय वित्थरिण थति ।
उप्परि तहो मज्झहिं ठिय विसाल, बहु रयण चित्त सोहारमाल ।
तहिं आविवि सुरगण जिणसणाह, दुंदुहि सरवहि रिय भुवण णाह ।
सुरगिरिहिं पयाहि ण विहि करेवि, चिरण्हव[4] ण विहाणइ[5] संभरेवि ।

घत्ता—ता वायकुमारिहिं, बहु परियारिहिं, तहिं रयपडलुउ[6] सरियउ ।
णिम्मलु आदरिसहु, पयडिय हरिसहु, सण्णिहुं[7] भूयलु कारियउ[8] ।15।

(16)

गधोवउ वरिसि वि घणकुमार, कुंकुम रस लिंप्पहिं भत्तिसार ।
कणदेविउ तहि कुसुमइ खिवति[9] मुत्तिय रंगावलि णिरु भरति ।
ता इदें हत्थिहिं जिणवरिंदु, उत्तारि वि ण अकलकु चदु ।
विणि वेसिउ मज्झिमि सिंहवीढि, कोमल सुरवडि[11] अयच्छाड लीढि ।
दाहिण सिंहासणि पढमु सक्कु, वामइ ईसाणहु इदु थक्कु ।
अवरह कप्पह जे देवणाह, ते छत्त चमर धारण सणाह ।
चउभेय[12] तूरवितर सुरेस, वायहिं[13] पयडिय भारह[14] विसेस ।

1 क. तहो, घ तहु,
2 क पडुय
3 ग. जाल,
4 = पूर्वजिनस्नानविधानेन
5. ग. घ विहाणे
6 = रजसमूह·
7 क, ख. सन्निहु
8. घ करावियउ
9 = मेघकुमार,
10 ख. खिवेहिं,
11. = वस्त्र·
12. घतत वीणादिक वाद्यं इत्यादि चतुर्विध,
13 ख. वायहे
14. = सगीत

भुवणेसर गायण पइणिसण्ण, एड सावि परिट्ठिय जोइ घण्ण ।
दिसिपाल केवि पडिहार जाय, सोवण्ण दंड विप्फुरिय काय ।
देवगण गण मगल भणति, दिसि कण्णउ मगलकरि फुणति ।
बहु धूव धूम पायउण सार, तहि जाया णिरु अग्गिय कुमार ।
अवर वि जे केइय देवसत्थ, ते पतिकरणि जाया कयत्थ ।
देविहिं सेणी किय मिलवि ताम, सुरगिरि खीरोवहि मज्झु जाम ।
दोसेणिउ[1] दो सक्कह णिबद्ध[2], खीरोवहि जलु ण्हाणणि सुसिद्ध ।

घत्ता — इय मिलवि सुरेंदिहिं, बहु आणंदिहिं, ण्हवण करणु पारद्धउ ।
णिय रिद्धि पहावें, णिम्मल भावें, जारि सुणिय सिरि सिद्धउ ।।16।।

(17)

ता देविहिं करि किय कणयकुंभ, बहुगंध कुसुम मगल वियंभ ।
जे बारह जोयण उदय तुंग, पिहुलत्तणि जोयण अट्ठरंग ।
मुह वित्थरु जोयणु इक्कु[3] जाह, को तहि सखा जाणेइ ताह ।
हत्थहु हत्थें सवरहिं ताम, खीरोवहिं[4] जिणवर अगु जाम ।
दाहिण सोणिहि सोहम्मु लेइ, वामहि ईसाणेंदु वि भिलेइ[5] ।
दुण्णि वि कप्पेसर जिणु ण्हवति, बहुभत्तिभार[6] णिरु पायडति ।
णिय हत्थिहि ढालहि कलस लक्ख, कप्पूरपूर परिमल परिक्ख ।
तेत्तिव[7] सलिलि[8] बालु वि जिणिंदु, णहु खुहिउ माण गुवि ण गिरिंदु ।
खीरोवहि जलु खीरहो समाणु, जिणकंति मिलिउ अइतेय ठाणु ।
ण[9] मंदिरु जायउ धवलवण्णु, ण फलिह घडिउ केलास वण्णु ।
ण पिडिय सयलु वि हिमहो सेलु[10], ण भुवणहु मुत्तिय एक्कमेलु[11]

1 = द्वे श्रेणीबद्ध
2 = सौधर्मेशानौ निबद्धे
3 घ एक्कु,
4 घ क्षीरोवहि,
5 ख विलिलेइ,
6 ख ०भत्ते०,
7 क तत्तिय,
8. ख घ सलिले,
9 क त, ख ते,
10. = हिमाचला पर्वता,
11 = भुवणस्य मुक्ताफला एकत्रीकृता,
12 क ख घ सख,
13 घ पडिउ,
14 चन्द्रकान्तिमाणिभि जटित

णं सक्क[12] करय कप्पूर घंडउ[13], ण चंदकंति खौलेंहिं जडिउ[14]।
ण पारय लित्तउ हेमपिंडु, ण पिंडउ चिउ[1] जिण जसहु खंडु।

घत्ता—ण णिम्मल चदहिं, जुण्हारु दिहिं, सव्विहिं सुरगिरि ढकियउ[2]।
महु जुय बहु पुण्णिहिं,[3] जिणपयपुण्णिहि, आइवि ण परिअकयउ[4] ॥17॥

(18)

जय जय पभणंतिहिं सुरगणेहिं, गधोवउ वंदिउ सुहमणेंहिं।
ज सयलताव सहारठाणु, ज चिर बहुजन्म मलाव साणु।
ज सचिय बहुरय पडलणासु, ज सयल लोइ सघाय तासु।
ज भुवणरज्ज अभिसेयतुल्ल, ज मुक्खमहाफल जणण फुल्ल।
ज सयलरूव सोहग्ग हेउ, ज अयल विजय सठाणकेउ।
ज धम्मवल्लि पल्लव[5] णमेहु, ज णिम्मल गुण-गण केलिगेहु।
ज सग्गलच्छि उवभोयधम्मु, ज सयलह धम्मह सव्य[6] कम्मु।
ज सव्वह दयभावह विवेउ, ज सयल विवेयह जइण[7] होउ।
ज जिणहेउ मिच्छत्तहारि, ज मिच्छाहारिणिहि जइणवाणि।
ज जिणवाणिहि दिढकम्मछेउ, ज कम्महो छेयहु गठिभेउ।
ज गठिहि भेयहो काललद्धि, ज कालहो लद्धिहि दव्वसुद्धि।
ज दव्वहो सुद्धिहि भव्वभाउ, ज भव्वहो भावहु णिय सहाउ।

घत्ता—तहि काल मणाहरि, सुरगिरि उप्परि, ज गधोवउ वदिउ।
सुरयणु ते णिज्जरु, ठिउ बहु अच्छरु, अमरत्तणि अहिणदिउ ॥18॥

(19)

ता सक्क पविसुद्द णिब्भिण्णाइं, हुयइ[8] मणोहर णाहहो कण्णइ।
मणिमय कुडल जुअलें[9] मडिय, ण ससि सूरे सइ अवरुडिय।
रयण घडिउ सेहरु सिरि वद्धउ, ज भुवणत्तय सारसमिद्धउ।
उरयलि हारदाम अवलविय, मज्झहो सुयवीय[10] व पडिविंबिय।

1. क, ठिउ, 2 ख ढंकिउ,
3 = दीप्तिबहुपूर्णे जिनपादपुण्ये, 4 घ परियकिउं
5 क पवण०, 6. ख सुदयकम्मु
7 ग. घ. जोणि 8. ग हुयइ,
9. घ युयुलि 10 = घ सुयव = यज्ञोपवीत

मणिकिंकिणि मेहलकडि सठिय, ण मदिरि गहुपति परिट्ठिय ।
ककण केयूरहिं बाहुजुग्रलु[1], मडिय रयणावलि कति सबलु ।
करसाहा मुद्दिय बहुरमाल, रमणच्छलि ठिय पालवमाल ।
मय जुग्रल चारु णेउर महतु, ग्रप्पु बलच्छि सोहा वहतु ।
देवग चीर सछण्ण[2] गत्तु, मदारमाल सभार मुत्तु ।

घत्ता—इय वहु ग्राहरणिहिं, पसरिय किरणिहिं, सुरणाहहिं सो पुज्जउ ।
णियलच्छि पमाणे, मण उवमाणे, णिम्मल पुण्णु समज्जिउ ।।19।।

(20)

जग मडणु मडिवि मडणेहिं,[3] — — — — — — —
जग चदणु चच्चि वि[5] चदणेहिं जग भूसणु भूसिउ[4] भूसणेहिं ।
जग सोरहु[6] साहिवि सोरहेहिं,[7] जगमगलु माणि वि मगलेहिं ।
जग रगहु लाइवि घुसिण रगु, जग तिलयहु कारि वि तिलयमगु ।
जग विघहु उब्भिय चिधपत्त, जग छत्तहु धारिवि धवल छत्त ।
— — — — — — जग रयणहो रयणवरु ठवे वि।
जग गेयहु गेयइ[8] पायडे वि, जग दीवहो णीरायणु करेवि ।
जग पुज्जहो पुज्जाविहि चरेवि, जग उत्तमु उत्तम पय धरेवि ।
जग णाहहु सीसत्तणु सरे वि, जग सेवहु सेवाभरु करेवि ।
जग कित्तिउ कित्तिहिं वित्थरेवि, जग पणमिउ वहु पणमिहिं णवेवि ।

घत्ता—ता सयलु वि, सुरवर सिरि, सठियकर, थुवणहु सइ पारभहिं ।
णिय बुद्धि पहावें, णियमयभावें, ग्रइ वहु भत्ति वियभहिं ।।20।।

(21)

जय जय परमेसर सिद्धबुद्ध, जय परमप्पय णिय भाव सुद्ध ।
जय भावाभाव सहावभाव, जय जाणिय णेम्मल फुडु सहाव ।

1 ग पयजुयम०
2 क. सच्छण्ण
3 क. मडणहिं
4 ग. भूसिवि
5 क चच्चिउ
6 ग सेरहे
7 ग सेहुरेहिं
8 ग गेयइ, घ. गीयइ (गीतानि)

जय मप्पमेय परमप्प माण, जय सत्तभंगि विण्णाण ठाण ।
जय परम परपर परमबोह, जय समरस णियरस जणिय सोह ।
जय सयल ग्रमल ग्रकलंक देह, जय केवल सयल कलाह गेह ।
जय ग्रजय ग्रजर ग्रजरामरेस, जय भाविय परम कला विसेस ।
जय ग्रभय[1] ग्रभाव ग्रभेय रूग्र, जय जाणिय दव्वट्ठिय सरूग्र ।
जय णिहुग्र[2] णिरंजण जोइणाह, जय रय विय दुक्ख ससारदाह ।
जय परमवभ वभाणवभ, जय णिह णिय मोह महा वियत ।
जय ईस विसेसर परमणिच्च, जय पयडिय जीवाजीव तच्च ।
जय विस्सरूग्र[3] विस्सिक मुत्ति, जय जाणिय सुद्धायारजुत्ति ।
जय कारण करणातीदणाण, जय णाणें हविय मुणिय पमाण ।
जय उवसम वीरिय एय ठाण, जय कामय[4] रयणत्तय णिहाण ।
जय सव्वह तेयह परमतेय, जय णिह णिय बहु मिच्छत्त भेय ।
जय परमभाणि भाणह दुलक्ख, जय जीवह[5] पयडिय पयउ मोक्ख ।
जय करुणा सायर गुण महत, जय जय जग सामिय सहज सत ।

घत्ता—इय थुणिवि जिणेसरु, वहुगुण गणहरु, ग्रइ हरिसें पडिबद्धउ ।
सुरवरह णिकायइ,[6] पसरिय कायए, सइ तंडउ पारद्धउ ॥21॥

(22)

वेउव्वि वि णच्चहिं सुरवरिंद, पय सक्ख पाविय गिरिवरिंद ।
दीहर हत्थिहिं हयचद सूर, कर ग्रगुलि पाडिय जोइ पूर ।[7]
इदहु इदहु सह सिक्कु हत्थु, दीहत्तिण लघिय दिसह सत्थु ।
भमि वारिय हरिथहिं बिलु पिय,[8] भारें सत्त वि भुवणइ कपिय ।
णिसमइ[9] मेरु[10] वराहु[11] धुरुक्कहु, कुम्भ करोडि मुडइ फणि लुक्कइ ।

---

1 क ग्रभव
2. क. णिहुय
3. ग. विस्सरूव
4. घ कामद
5 क. जीवह
6 क. णिकायइ
7 ज्योतिषी देवा
8. क विलु विय
9 क णिसमइ
10 =वेदयति मेरु
11. =सूकश्चलति चपलो भवति

दिग्गय दंत पर्डहिं महि डुल्लइ, कुल गिरि मूल बंधु दिढ हल्लइ ।
सायर सस वि मह्यियलु रिल्लहिं, वेलधर[1] धाइ बि जलु पिल्लहिं ।
भुवरण भड उत्तरुडि ढलक्कइ,[2] दिसि चक्कु वि णिय ठियहिं सलक्कइ ।
गयणु विरण सव्वच्छवि फुट्टइ, वायवलय वधुवि रग तुट्टइ ।
ग्रइ वेएरण सुरिंद भमता, तिहुवरण चक्कु व रिगरु फेरता ।
विंभय भय हरिसें जगु पूरिउ, दिसिपालहिं[3] किर जाम विसूरिउ ।
ता ग्रयसय सर जलिहिं[4] रिगलुक्कउ, सुरवर रिगच्च वि रिगच्चल थक्कउ ।

घत्ता—तउउ राच्चतह, हरिसु वहतह, जो रसु तहि सजायउ ।
सो राहु* वण्णतह, सुरह कहतह, रिगय हिययम्मि समायउ ।।22।।

(23)

ता खीरोवहि तलु रिगज्जलेवि, मलयाचलु सिल सेसउ करेवि ।
णदणवणु रिगम्मि वि डग्लसेसु, ग्रगरुहो वणु कारिवि खय पएसु ।
कप्पूर घुसिरग ग्राकर पएस, ते सव्वि वि कारवि[5] रगामसेस ।
पूऊ वरगइ[6] थोवइ ठियाइ देवह चित्तइ ग्रइ वित्थराइ ।
हिययइ[7] लहु ग्रइ[8] ग्रइसकडाइ हरिसइ ग्रइविच्छर लपडाइ ।
हरिसइ थोडइ बहु भत्तिभारु, भत्तिहिं विंभउ ग्रइबहुपयारु ।
विंभउ थोडउ[9] जिरण गुरग ग्रणत, ता पिच्छिवि[10] पिच्छिवि तण्हवत ।
ता कहवि कहवि सोहम्मराहु, रिगय करिवर कर सारिच्छवाहु ।
मिल्लिवि विंभिय मुच्छा विसेस, ग्रालोइ वि सयल वि सुरवरेस ।
गिण्हइ[11] करकमलहिं जिरण वरिंदु, ग्रारोहइ लीलइ करिंदु ।

घत्ता—ता चल्लिय सुरवर, वहुदु दहि सर, जिरण रायरम्मि पहुत्ता ।
बहुमगल पुण्णउ, लच्छिरवण्णउ, रायहो घरु सपत्ता ।।23।।

---

1 =देवा
2 ख ढलक्कवइ, क ख ढलक्कहिं
3 =दिग्पालाः
4 =समुद्रवेलाजले
*=स्वामी
5 क कीरिवि, घ कीरवि
6 क. ० रगइ
7. क यइ
8 ग यइ, घ यइ
9 क थोडव, घ थोवउ
10. क विच्छिवि
11 क गिण्हइ

(24)

अप्पि वि जिणु पियरहं[1] लच्छिवतु, आहरण किरण जालिहिं फुरतु ।
चदु व पडिहासइ जेण धामु, चदुप्पहु त्ति तें कियउ[2] णामु ।
अक्खिवि पियरहं[3] इय णामु तासु, सुरगण सगय णिय णिय अवासु ।
दिणि दिणि परमेसरु णाणवतु, जग हरिसें सहु वट्टइ तुरतु ।
वामकरहो अगुट्ठउ धावइ, तहिं पीऊसहो णिज्जरु पावइ ।
माया पियरहो किं कुणइ[4] तासु, सुरवर दासत्तणु करहिं जासु ।
अकलकउ चदु वि बिद्धिवतु, ण कप्प विव कदलु ललंतु ।
ण धम्मवीय अकूर वडु, ण णाणकमल विस सरल कडु ।

घत्ता—इय वट्टइ वालउ, णिरु सोमालउ, तिहुअण[5] जण मणहारउ ।
बहुलक्खण वतउ, लच्छि महतउ, गुण गण सोहा सारउ ।।24।।

इति सिरि चदप्पहचरिए महाकइ जस कित्ति
विरइए महा भव्वसिद्धपाल सवण भूसणे
जम्माहिसेउ णाम अट्ठमो सधी
परिच्छेउ समत्तो ।।8।। ग्रथ सख्या 264।।

---

1 क. णाह
2 घ. त
3 क. पियरहु, घ पियरह
4. क. तिहुयण
5. घ किं कुणहिं

णवमो संधि

(1)

आविवि[1] वहु देवकुमार तित्थु, सिसु जिणु खिल्लावहिँ[2] सुहकयत्थु
ता कमि कमि चल्लइ वालु णाहु, कोमल दीहर[3] विसकड बाहु।
थिर कप तावइ दितु भाइ, अइ भरु मेसहो[4] सकेइ णाइ।
किवि कदुग्र लीला[5] पायडंति, किवि अग्गइ सिसु वाहण हवंति।
किवि धतहो वालहो पुरउ थाइ[6], किवि वइ[7] सतउ[8] वइ सेविथाइ[9]।
किवि जलकीलतहो सहरमति, णिय छाय[10] व सुर इय अणुमरति।
अह णिसु दिव्विहिं भोएहिं सक्कु, सेवतउ[11] णाउ कइया वि थक्कु।
परमेसरु मेल्लइ[12] वाल भाउ, परियाणइ फुडु विज्जा सहाउ।
पणवाइय अक्खर[13] सभरेइ, सद्दागम सयल वि परिचरेइ।
वहु भेयगय मणि वित्थरेइ चउविज्जा[14] वहि पारुत्तरेइ।
वालु वि परमेसरु तिजयणाहु[15], वह णिम्मल कलसोहासणाहु।

घत्ता ता ‍िउ तरुणत्तणि, रजिय तियमणि, रूवहु रूउ वि जायउ।
अह जुव्वणु[16] तारुण्णहो[17], णरु सपुण्णहो, तेयहु तेउव आइउ[18] ॥1॥

1 ख घ आइवि,
2 ख खेल्लावहिं,
3 - गबूला नाली अथवा कमलक नाली,
4 घ सेसुवि = धरणेन्द्र शका करोति इव,
5 ग कडुय = कदुकदण्डी,
6 घ थाहि,
7 ख घ वय
8 घ सतहु,
9 ख सेविताहिं,
10 = निज प्रतिबिम्ब इव,
11 ख घ सिवतउ,
12 ख घ मिल्लइ
13 = ओकारादि अक्षर,
14 = प्रथमानुयोगादि,
15 ख घ तिजगणाहु,
16. घ जोव्वण,
17 ग. तारुण्णहु,
18 घ आयउ,

(2)

विवरम्मुह सिरि कुंतल कलाउ, ण जिणदिट्ठिहि ठिउ तम[1] कलाउ ।
चित्तु व मइ वित्थरु भालु तासु, सुत्त[2] व लोयण णिम्मलु पयासु ।
बुद्धि व सरली णासा विहाइ, मुह सोरह[3] सोहे णमिय णाइ ।
णिज्जती[4] मायावल्लि णाइ, तहु सिय वकिय मूवल्लिणाइ ।
णिम्मल मइ वीउ व दसणहीर[5], अइवहुल किरण चंदिण गहीर ।
हिययहु उग्गिण्ण[6] वरायभाउ, बिंबाहरु इय सोहा सहाउ ।
तिहुअण[7] मण पासु व तासु कण्ण, अह दय रव महिं[8] डोलय रवण्ण ।
धम्म हि व डालि व बाहुदंड, अह णरयदार परिघ व पयंड ।
धम्म हि व पल्लव णाइ हत्थ, अह सम सररत्तुप्पल पसत्थ[9] ।
केवल णाणु व अइ पिहुलवत्थु, अहवा णियगुरु अत्तण[10] सरित्थु[11] ।
ससारु व खीणउ तासु मज्झु, माहप्पु व उड्ड[12] णाहि गुज्झु ॥
जस पसरु व पिहुलउ णिरु णियबु, कोमल परिणामु व ऊरु बिंबु ।
तिहुअण सिरि कमलु व चरणपोम, पय णह मदह[13] तहो अमल सोम ।
घत्ता—इय अवयव रूवें, फुरिय सरूवें, सो लावण्णें पुण्णउ ।
सव्वहि गुणसारहिं, महिमपयारहिं, अवरेहि वि सो धण्णउ ॥2॥

(3)

ता पिच्छिवि[14] ताय तरुणु पुत्तु, णिरुवम लायण्ण कलापउत्तु ।
कमलप्पह णामे रायकण्ण, णिरुवम सरूव सोहग्ग पुण्ण ।
परिणाविउ णिरु उत्तमि[15] णिमित्ति, परिपुण्ण उच्छव सुहगह पवित्ति ।
ण चदहो मेलिए बहुल कति, णं कामहो अप्पिय बाणपति ।
ण सुत बहो[16] जोडिय परम खति, ण णाहहो[17] आणिय विमल सति

---

1 क. घ. तल

2. ख मुत्तुव – सिद्ध इव

3 क ०सोरहो,

4 = निर्जिता ,

5. क वीउवदसणहीर

6 ख घ. उग्गिण्णु = निःसरित,

7. ग तिहुयण,

8 क माहिं

9 क पयत्थ,

10 ग यत्तण,

11 ख सरित्त,

12 घ उड्डु =अगाध.,

13 क ख णदह = तस्य दीप्त्या शोभा मवा जाता ।

14 क. पिच्छि०, ख पेछिवि ताए,

15 ख उत्तमे

16 ख घ. सुतबहु,

17 क णाहहो

ण धम्महो ढोइय जीवरक्ख, ण विणयहो देसिय साहु सिक्ख ।
ण सुगुणहु भिरइय धवल कित्ति, ण णायहो सढिय सहल सत्ति ।
ण तक्कहो[1] अप्पिय भवल जुत्ति, ण विहवहो[2] दरसिय दाण उत्ति ।
ण सूरहो साहिय भ्रमल बुद्धि, ण सिद्धहो भाविय भ्रचल[3] सिद्धि ।

घत्ता—ता तहिं महिराए[4], हरिस पराए, णिय[5] रज्जुम्मि परिट्ठिउ ।
जो सक्कहिं मंदिरि,[6] बहु सिरि सुंदरि, तिहुयण पइसइ[7] सठिउ[8] ॥3॥

(4)

णिय वीढिणि वेसिउ सइ णिवेण, सो णिच्छतु[9] वि हरिसिय मणेण ।
ठालिय जल ऊरिय कणयकुंभ, वहु मगल भेयहि सिरि वियभ ।
गयणहो गधोवउ कुसुमविट्ठि, मपण्णी ति जययहो हरिस पुट्ठि ।
भ्रइ णिम्मलु फुडु णहयलु पयासु, दिसि चक्कु पसण्णउ कय विलासु ।
चउ भेयतूर सद्दिहिं रमालु[10], रायगणि बहु गेयहिं विसालु ।
राए सइ लेविणु कणयट्ठु, पण वाविउ णिवगणु गव्व चडु ।
कुल मतिहिं करि किय चमरछत्त, इय सेवहिं सयल वि रायभत्त ।
करि हरि सामिय भ्रण्णेवि जेवि, जोडिय कर भ्रग्गइ[12] हूम्र[13] तेवि ।
बहु णायर जण पणमहि भरेण, लज्जजलि घल्लहिं णियकरेण ।
भ्रविहव[14] गायहिं णच्चति तित्थु, णिव ढोयहि[15] पाहुउ सारवत्थु ।

घत्ता—तिहुयणु वि समामिउ[16], सिरिभर णामिउ, किं पुणु वव्वमि महिवलउ ।
ज सामिउ पालइ, णाउ णिहालइ, धम्मलच्छि चदण तिलउ ॥4॥

1 क तहो
2 क ०बद्दु,
3 ख. घ ग भ्रचलसिद्धि=शरीररहित मुक्ति,
4 ख घ ०राइ,
5 क णिय णिय रज्जमि,
6 क घ. पइ पइ = त्रिभुवनपतीना पति,
7 =इन्द्रैः मंदिरे,
8 क सिद्धउ,
9 भ्रवाछन् सन्
10 ग, ०रेमालु,
11 क लिवुणु,
12 ग भ्रग्गइ
13 ग हूय,
14 =पुत्रभर्तृवती स्त्री,
15 क ठायहु, ख घ ढोवहिं,
16 =समस्तत्रिभुवनस्य स्वामी,

(5)

ता भूयलि णासहिं सयलदोस, सपज्जहिं सुक्खिहिं पइरतोस ।
घणवरिसहिं चिंतउ भमयधार, वायति वाय भइ सुहमचार[1] ।
खर किरणु तवइ सुपयास मित्त, ससि पुणु विलसइ[2] पसरिय पहुत्तु ।
हिमकालु ण लोयह देइ दुक्खु, सव्वु वि सपज्जइ जणिय सुक्खु ।
दुक्कालु णासु जमुपुरि पइट्ठु, रोयह गणु केण वि णेयदिट्ठु ।
ईति वि मिल्लवि देसहो पएस, भ्रण्णाय सस्स भक्खहिं भ्रसेस ।
तहिं वोरिज्जइ जइ मणु जणेहिं, भ्रच्छरिय हेउ पयडिय गुणेहिं ।
तण्हा गुणोसु तहिं णिरु जणाह, णहु पुण विसाय वित्थर[4] मणाह ।
घम्मम्मि मणोरह[5] णिरु णराह, भ्रवगण्णिय लच्छी सुहभराह[6] ।
नहिं पावहो वीहइ सयलु लोउ, णहु[7] भ्रण्णहो कासुवि गलिय सोउ ।
गह पीडुप्पाइय जेवि केवि, सव्व वि विलयगय सुट्टु तेवि ।

घत्ता—दालिद्दिहिं मुक्कउ, दुक्खिहिं चुक्कउ, चिंताभर परिवज्जियउ ।
तहिं जणु सुहि णदइ, सग्गु वि णिदइ, जिण पइ गुणगण रंजियउ ।।5।।

(6)

इय जा पालइ महि परमेसरु, कुल किंकर ठिय सयल सुरेसरु ।
ता सोहम्मे[8] णियमणि चिंतिउ, तिहुयणजण उवयारु सुमतिउ ।
इहु जिणु जीवइ दह पुव्वलक्ख, परमाउ गणणि जाणिय परिक्ख ।
परमेसरु माणिय केलि सुक्ख, भ्रकलत्तु[9] भ्रढाइय[10] पुव्वलक्ख ।
भ्राहुट्ठ तिण्ण ठिउ पुव्वलक्ख, चउवीस पुव्व भ्रगइ भ्रदुक्ख ।
इत्तिउ पालिउ सत्तगरज्जु, किह[11] भ्रज्जवि ण करइ भविय कज्जु ।
जाणिवि[12] इण्हे[13] वेरग्गकालु, मुत्तउ चरियावरणउ विसालु ।
जइ कि पि वि किर वेरग्गहेउ, पिच्छइ ता बुज्झइ परमदेउ ।
ता उप्पायमि वेरग मित्तु, जह तव यरणहो जिणु करइ चित्तु ।

---

1 क मदचार,
2. ख विलेसइ,
3 ख घ मेल्लिवि,
4 ख विसएसु विथि०
5 ग मणोहर,
6 क इय पक्ति नस्ति,
7 क णेहु,
8 क सोहम्मि
9 =कुमारकाल,
10 ग भ्रढाइ,
11 क ख. किह्,
12 जाणेवि
13 ख इण्हि

इय चिंतिवि ससिरहु गामदेउ, बुल्लाविउ गिरु पायडिय सेउ ।

घत्ता — वदउ रिहिं जाइवि, जिणहरु पाइवि, करि किं पिवि त बेयरु ।
ज पिक्खिवि तक्खणि, चिंतिवि णियमणि, पडिवुज्झइ सो जिणवरु ॥6॥

(7)

ना आइवि ससिरुड रायदारि, बहुभेय लच्छि सभारसारि ।
होइवि अइदुक्खरु[2] लट्ठि हत्थु[3], अइ सिढिलु सिढिलु पहिरे विवत्थु ।
पुक्कारइ सामिय रक्खि रक्खि, हउ कालें किज्जमि अप्पभक्खि ।
ता णाहें तहो णिसु णेवि सद्दु, पभणिउ किं भणइ एहु भद्दु ।
हक्कारिवि पुच्छिउ तासु दुक्खु, सो भणइ णाहु तुह भवणचक्खु ।
जर रक्खसि महो भक्खेइ अगु, बहु[4] रोय चोर णिह णेहि रगु ।
जम वग्घुवि इह घुरु हरइ पासि, इय पीडहिं साभिय तुज्झ वासि ।
एवहिं करि लहु रक्खणउ वाउ, जावहिं[5] णाहु घुट्टहि मज्झु आउ ।
त णिसुणिवि चिंतइ इहु[6] कयत्थु, जर रक्खसि मारणि[7] को समत्थु ।
अगहो रोय वि णाहु जाहि दूरि, लहरिउ णाह फिट्टहिं जलहु पूरि ।
कालु वि को रक्खइ आवडतु, सइ णाइ गयण मडलु पडतु ।
अत्थउ किर एयहो तणियवत्त[8], अम्हाणवि को करही परित्त ।
जगि[9] को णावि कासु वि रक्खवालु, सव्वह सामण्णु जि एइ कालु ।

घत्ता—इह[10] कियणिय कम्मे, सुहदुहधम्मे, सयलु वि जगि[11] उप्पज्जइ ।
अण्णु वि णाहु कारणु, विग्घ णिवारणु, जीवहो[12] भवि सपज्जइ॥7॥

1 ख. घ वइयरु, क. बेअरु, 2 =अतिवृद्धः
3 क ग यत्थु, 4 =बहु रोगा एव चोरास्तै पीडिताग
5 ख जावेहि, 6 ख पहु,
7 ख वारणें, ग वारिणि 8. ग ०वत,
9 क घ. जणि, 10 ख इय,
11 ख घ जणि 12 ख घ जीवहु,

(8)

ज अत्थि चराचरु वत्थु रूअ, त सव्वु वि खणभंगुर सरूउ।
धणु जोव्वणु जीविय तणु पवचु, जलवुव्व व[1] सण्णिहु[2] त अणिच्चु।
दिणि वद्धउ जसु सिरि रायपट्टु, णिसि तहो उप्परि किउ मरणु घट्टु[3]।
विणि जो गाइज्जइ मगलेहिं, णिसि सो रोइज्जइ तिय[4] कुलेहिं।
दिण जो दिट्ठउ गयवरहो खधि, णिसि सो बधिउ णिरु चोरबधि[5]।
दिणि जो दिट्ठउ धणयहु समाणु, णिसि सो दीसइ मग्गतु खाणु।
दिणि जे बधवहु णेहवत तक्खणि सत्तु व दीसहिं[6] हणत।
जे पुग्गल चिरठिय सुक्खभाव, ते खणि सपज्जहि दुह सहाव।
जे पिंड घडणि परमाणु हुति[7], तहु[8] पिंडहो खडणि ते हवति।
फेणु व णिस्सारउ मणुय[9] जम्मु, खणि णासइ जह गयणयलि हम्मु।
खणि धम्म भाउ खणि खयहो जाउ[10], खणि णेह भाउ खणि वेरु थाउ[11]।
जे पिय सुय जणणी जणण मिच्च, ते सव्व वि तक्खणि इह अणिच्च।
कर सलिलु व जीविउ णिरु अणिच्चु, सव्वु वि विण्णासिय वयणु सच्चु।

घत्ता—अण्णु वि इह असरणु, दीसइ तिहु यणि, सव्वु वि इक्क समाणउ।
जीवहु भवि यतहु,[12] दुक्खु सहतहु, णहु कुवि रक्खा ठाणहुउ ।।8।।

(9)

णहु कोवि[13] अत्थि सो पुरिसु इत्थु[14], जो जमु लघिवि हूयउ कयत्थु।
इद वि णिवडहिं हाहा भणत, दिसिपाल वि पडिहहिं वहु कणत।

1 क अ,
2 क. ख. सणिहु
3 क ग घुट्टु,
4 ख. णिय,
5. क मोर०,
6. ख. ते णिसि दीसहिं सत्तुव०
7. ख. होति,
8 क एहु, ख तहो,
9. क मणुअ,
10. ख. घ. जाइ,
11. ख. थाइ घ थाइ,
12. ख. घ. जीवमुहो भवियतहो, क जीवहु भविच्छतहु,
13. ख. कोइ,
14. क. यच्छु,

अवरवि जे केईय बल पहाण, ते[1] असरण सवि मिल्लंति[2] पाण ।
अवरह णरकीडह को पमाणु, जमि रुट्टइ सक्कु वि किमि समाणु ।
जणि मुअइ[3] णिरु सोयति[4] मूढ, अप्पाणउ णहु जम[5] वयणि छूढ[6] ।
जे सपुरिस कवलिय जमि ण इत्थु, तह णाम वि जमि इह मति कित्थु ।
जम्मु जि कारणु मरणहु[7] णिरुत्तु, जो अण्णु भणइ सो मोहगुत्तु[8] ।
जे जायहु[9] जीवहो दिवस जति, ते जमपुर पहहु[10] पयाणहुति ।
मणि मतो सहि तावहि फुदति, जावहि जमढक्का णहु सुणति ।
जणु[11] परहु मरणु पिच्छति हुतु णहु अप्पउ[12] आसण्णु वि पडतु ।
माणुसु सुमणोरह[13] विल्लिपूरु, जमु उच्चाइ वि घल्लेइ दूरु ।
सासहुच्छलेण जीविउ णिरेइ, खणि खणि मूढउ णहु सभरेइ ।
जइ वज्जहो पजरि पइसरेइ[14], तो असुरणु जणु णियमे मरेइ ।

घत्ता—अण्णु वि भवसायरि, वहु दुह दायरि, णहु किं पि वि त सारउ ।
ज किरइ इह लोयहो[15], पयडिय सोयहो, णिमि सुविथिर सुह कारउ ॥9॥

(10)

चउगइ भीमणु भवजलहु मज्झु, को सक्कइ वण्णण तासु गुज्झु ।
जहि सक्कु मरिवि मलकीडु थाइ, मलु[16] कीडु वि सक्कहो ठाणि जाइ ।

1 ख त
2 ख मेल्लति
3 ख घ. मूवइ, ग मूवव जेने मृते सति ।
4 क घ सो अति०
5 ख जमि०,
6 –जना आन्मान यममुखे क्षिप्त न जानन्ति,
7 क मरणह, ग मरणह,
8 ख माह●,
9 ग जायहु,
10 ग पह,
11 क ख जण,
12 ख अप्पहो
13 क ख , घ समणोरह,
14 क पइसरे वि,
15 ख. लोयहु,
16 क. मणु०,

बमु वि[1] चडालहो लहइ जोणि, चडालु वि बभहो सरद्द खोणि[2] ।
मित्तु वि सपज्जइ इत्थु[3] सत्तु, सत्तु वि सपज्जइ[4] अचलु मित्तु ।
मायरि वि कत[5] कता वि माइ, बप्पो वि पुत्तु सुउ जणणु थाइ ।
भवणाइउ णच्चतहू विसालु, जीवहू सजाउ अणतकालु[6] ।
माणुसु उप्पज्जइ जोणि मज्झि, विलसतु ण लज्जइ तासु गुज्झि ।
वालु वि तिय थण फसणु[7] करेण, तहू अब्भासें तरुण वि भरेण[8] ।
बहु दुक्ख विडवण पाव-भारु, इत्तिउ कहिअउ ससार सारु ।
भव भाव कालु दव्वेण सोइ, खित्ते सहु पचपयारु होइ ।
त णत्थि दव्वु ज णेय जुत्तु, त णत्थि खित्तु ज णेय छित्तु ।
सो णत्थि भउ ज णेय[9] जुत्तु, सो भउ ण अत्थि जहिं णेय खुत्तु ।
कालु वि अतीदु मुत्तउ अणतु, इय सहिउ दुक्खु दुक्खिहिं महतु ।

घत्ता—अण्णु[10] वि इक्कल्लउ, पीड सहिल्लउ, इह मु जइ णिय कम्मफलो ।
बहु जोणि सरतहु चउगइ घतहु, कामु वि किंपि वि णेयवलु ।।10।।

(11)

इक्कक्किउ[11] बधइ विविहकम्मु, इक्कु जि अणुहु जइ परम सम्मु ।
इक्कु जि वइतरणिहि पियइ णीरु, इक्कु जि उप्पज्जइ सुरसरीरु ।
इक्कु जि तिरियत्तणि महइ दुक्खु, इक्कु जि विलसइ महिरज्जु सुक्खु ।
इक्कु जि पीडा परवसु कणेइ, इक्कु जि[12] रमणीरय रसु मुणेइ ।
परिवारहेउ बधेइ पाउ, इक्कु जि अणुहु जइ तासु साउ[13] ।
इक्कु जि जम्मइ इक्कु जि मरेइ, इक्कु जि भवसायरि ससरेइ ।
इह रत्ति वि जइ[14] दुहु महइ इक्कु, तहो परभवि सुहदुह फल गुरुक्कु ।

---

1 =विप्रोऽपि,
2 चडालोऽपि विप्रस्य योनि लभते
3 ख एच्छु,
4 ख सज्जइ
5 क माइरि कता,
6 क. सजायउ णत कालु,
7 ख फसइ
8. =बालाभ्यासेन सयौवना स्त्री मूनान् स्पर्शयति ।
9 ख. णेअ,
10 एकत्वानुप्रेक्षा कथयति,
11 क ख ग इक्काकिउ,
12 एक्कु जि,
13. ग जहृ,
14 =स्वाद

जह णिसि वायस तरुनलि मिलति, सिरिवनह तह परिवारुहुति ।
णियकज्जि मिलइ सव्वो विलोउ, पुणु इक्कुजि मु जइ जीउ सोउ ।
परु अप्पा मणइ मूढ चित्तु, णिय परमभाउ सब्भाववत्तु ।
इक्कु जि तोडइ चिरकम्मपासु इक्कु जि पावइ सिव सिरि बिलासु ।

घत्ता—इय मिण्णउ जीवहु, सुद्ध सरूवहु, सव्वुवि फुडु परिहासइ ।
परु अप्पु मुणतउ[1], अप्पु हणतउ, अप्पा मुज्झिवि णासइ[2] ॥11॥

(12)

जीवहु अण्णु भाव णिरु चेयणु देह हु अण्णुजि पयडुवि वेयणु ।
अप्पा अवलु अमुत्त अणिदिउ[3] देहु[4] समुत्तु सुबलु वहु इ दिउ ।
जह जल जलणह अणण्णु भाउ, तह जीवहो देवहो परु सहाउ[5] ।
देहु वि जहि जीवहो अवरु दिट्ठु, कह होही अप्पणु अवरु इट्ठु ।
भवि भवि अण्णण्णइ पिय रहुति, भवि भवि अण्णण्णइ मायथति ।
भवि भवि अण्णण्णइ पुत्त मित्त, भवि भवि अण्णण्णइ चेडभत्त ।
चिरजम्महो सुअणइ तहि रुवति, इह जम्महो[6] वहु मगल कुणति ।
चिरजम्मुहो सुय पाडति गिड्ढु, इह जम्मुहु हत्थहु लेंहि खडु ।
चिरजम्मुहो पियविरहेण तत्त, इह जम्मुहो घाइवि कठि सत्त ।
मूढउ जणु चिरभउ वीसरेइ, इह जम्मु मूक्कु मोहे करेइ ।
जिह पहिय दूरि देसमि जति, अण्णुण पयाणिहिं वीसमति ।
मसार घोर अडविहि भमति, जीव वि भवि भवि इहवीसमति ।
जइ वयइ कह वि इहु अण्णु वत्थु, णिय भाव लीणु[7] ता हुइ कयत्थु ।

---

1 = पर आत्मान मन्यते
2 = अन्यत्वानुप्रेक्षा कथयति
3 ख मुणिदिउ
4 क देहो
5. क जम्मइ, ख. जम्महु
6 ~ अन्यस्वभाव
7 क जम्महु, ख जम्महु
8. 1 ०खीणु

घत्ता—अण्णु वि इहु देहहु[1], असुइहिं गेहहु[2], पूयगब विलसावण्णउ ।
णव दारिहिं विट्टलु, बहुमल पुट्टलु मज्भुरोय[3] भीसावणउ ॥12॥

(13)

मलवीउ एहु माणुसहो देहु, तह गब्भासउ मलभड गेहु ।
सब्वहं मल गवहं देहु जोणि, सब्वहं मलदारहं देहु खोणि ।
अइ मलिण सत्त धाउहिं दुगधु, अइ गाढु गाढु मल पिंडु बधु ।
जइ मज्भ कह वि बाहिरउ होइ, देहहो ता पिच्छइ णेम्र कोइ ।
अण्णु वि ज कि पि वि मलिणु होइ, त सयल बत्थ खणि[4] देहि जोइ ।
कु कुम कत्थूरी पमुह दब्व, छुहु देहि लग्ग ता मलिण सब्व ।
मलि कीडु व सुद्धप्पा सरीरि, तहु मज्भि लीणु बहु दुह गहीरि ।
जइ वहु चम्म ढकिउ ण हुतु, ता मच्छिय कायहं को अवतु ।
णिच्चु वि सव्वहं रोयाहं वासु, णिच्चु वि णवदारिहि मलपयासु ।
णिच्चु वि जममुहि पडणिक्कसीलु, णिच्चु वि पचेंदिय[4] विसयसीलु[6] ।
देहहो कारणि जणु करइ पाउ, तहो देहहो दीसइ इहु सहाउ ।
णारी सरीरि जणु करइ रगु, जाण तुवि ण मुणइं तासु मगु ।
वस तेयहो तहो लायण्णु णामु, मलरस सिंदणु सोहग्ग थामु ।
जइ तियवउ पिच्छइ सत भाउ, ता जणइ माणुसु तहो सहाउ[8]।
दुद्धरतवयरणें एहु सारु, एएहो फलु अण्णह दुण्ण यारु[9]

घत्ता—मिच्छामइ णिवणिहिं, तणु मणवयणिहिं[10] जीउ कसाइहिं रत्तउ ।
आसवइ सहावें, हयसुह भावें, मणु[11] अविरइ ससत्तउ ॥13॥

1 ख देहु
2, ख गेहु
3. ख, रोय सोय०
4 क वणि
5. ख पचिंदिय
6 ख घ. ०लीलु
7 माणुसु ता जाणइ तासु मउ
8 ख. दुहपयारु
9. ख ०मणव्व०
10 ग. मलु

(14)

जह[1] जलहिं मज्जि ठिउ जाणवत्तु, छिद्दिहिं सलिलें भरियइ णिरुत्त ।
तह[2] भवि सायरि जीउ वि भमतु, जोयहिं कम्मु वि ठिउ आसवतु ।
सुह असुह रूअ आसउ दुभेउ, सुह जोयहिं सुहु पयडिय विवेउ ।
अण्णु वि जम णियमिहिं उवसमेहिं, वेरग्ग तच्च भावण कएहिं ।
इय भाविहिं सुह आसउ मिलेइ, विवरीयहिं असुहु जि समिलेइ ।
मिच्छत्तु[3] पमुह आसवहो[4] ठाणु, तह अवरइ णिरु वट्टण विहाणु ।
दीहरिहिं कसायहिं बद्धमूलु, जोयहि पुणु भवभावहिं[5] कुसूलु ।
इय असुहासउ वट्टइ तुरतु भवजलहि तेण गज्जइ महतु ।

घत्ता—आसवहु[6] णिरोहणु[7], चिरमलसोहणु, सवरु बहुगुण सारउ ।
दो भेयहि दिट्ठउ, मुणिगण इट्ठउ दव्वभाव सुपयारउ ।।14।।

(15)

आसव णिरोहु मदरु पउत्तु, सो दव्वभाव दोभेय जुत्तु ।
जो कम्मु पुग्गला दाण छेउ, सो दव्वहु सवरु सुक्ख हेउ ।
जो भवकारणकिरियाणिवित्ति, सो भावहो सवरु समहो[8] जुत्ति ।
सजम बम्म जो णिहिय गत्त, तसु आसव सर विहलहिं[9] णिरुत्त ।
जो जस्स सत्थु सो तेण हणइ जो सवरु दुविहु वि करण मुणइ
खम सत्थे णिहणइ कोहवीरु, मद्दविण माणु दिढ गव्व धीरु ।
माया डायणि[10] मरलत्त ठोण, मण चवलत्तणु धीरत्तणेण ।
लोहु वि णिरु सग वि वज्जणेण, मोहु वि जिणणाणु समज्जणेण ।

1 ग तह
2 ग तहु
3 क मिच्छुत्त ख मिच्छत्त
4 क आसवोहो ख आसवहु
5 क भावहु
6 क ग आसवहो
7 क गेहणु, ख रोहणु ।
8 ख सवइ
9 = आश्रववाण निष्कला, ख राउवि
10 घ डाइणि

रागु वि दोसु वि समभावरोग, णेहु वि णिम्मम समावरोग ।
मिच्छत्तु वि सम्म दसरोग, भव भाउ वि मुत्ति णिहसरोग ।
मयणु वि वउ[1] तच्च णिहालरोग, परिसह वि णरय सभालरोग ।
अण्णु वि जो जसु पडिकूल भाउ, त तेरा हराइ[2] सवर सहाउ ।
इय विहिरा जे सवरु कुरणति, आसव भव लीलइ ते हरणति ।

घत्ता—ता किज्जइ रिगज्जर, वहु दुह रिगज्जर, कम्मगंठि दिढ दारिरिगय ।
रय मल परकालिरिग, गुरगगरग मालिरिग, मोक्ख रुक्ख जल
सारिरिगय ॥15॥

(16)

साणिज्जर भासिय फुडु दुभेय, अप्पहु मल रणासिरिग जा अभेय ।
सा होसइ[3] कामा[+] मुरिगवराह, अइ घोर वीर तवा दुद्धराह ।
अण्णह जीवह वीया अकाम, चडगइ दुहभावहि जरिगय थाम ।
जह अामफलइ दढजलरणपक्क[4], अण्णइ पक्कइ कालेरा[5] थक्क ।
तह हठि[6] आरिग वि मु जेइ कम्मु, मुरिगवर सकाम रिगज्जरहि हम्मु[7] ।
सइ मु जि[8] कम्मु परिरणामि जाइ, त पुरा अकामरिगज्जरहि थाइ ।
जलरणावत्तिउ[9] मुज्झइ सुवण्णु, तह जीउ वि रिगज्जर भर पवण्णु ।
वारह विह विरतव ताव तत्तु, खरिग खरिग परमप्पा हुइ पवित्तु ।
वावीस परीसह थिरु सहतु, रिगज्जरइ कम्मु घोरु वि महतु ।
वहु उत्तरगुरग सभारमुत्त, अप्पाहुइ मल पडलहि विजुत्त ।

घत्ता—अण्णु वि इह तिहु अणु, पभरगइ वुहु जणु[10], चउदह रज्जु
पमाणउ[11] ।
कत्ताइ[12] वि वज्जिउ[13], गयरिग समज्जिउ, छह[14] दव्वह रिगरु
रणारगउ ॥16॥

---

1 ख वय — 2 ख. हवइ
3 ख. ना होइ सकामा — 4. क जरगरग
5. क कोलेरग — 6. क हवि, ख. हवि
7 =अधर्म, — 8. क. मजि
9. ख ०धत्तिउ — 10. ख वुहयणु
11. ख स — 12. ग. कत्ताइ
13. =ब्रह्मादि कर्तृ नाशरक्षरगरहित — 14 क ०छह + = सकामनिर्जरा

(17)

जहिं णह पएसि ठिय पंच दव्व, त लोउ भणहिं जिण समय कव्व ।
सो चउदह रज्जु तु गु होइ, पिंडेण सत्त रजूपलोइ ।
कडि किउ[1] हत्थिउ जारिसउ गोहु, इहुतिहु अणु तह आकार सोहु ।
तलि सत्त रज्जु पिहुलत्तणेण, एक्क जि रज्जू महि वित्थरेण ।
पंच वि रज्जू ठिउ सग्ग ठाणु, ठिउ एक्कु रज्जु पिहुश्र सिरपमाणु ।
तिहिं वायहिं वेढिउ अइघणेहिं, अयवेय महावल सघणेहिं ।
णहु आइ[3] भाउ अवसाणु तासु सइ सिद्धु मुक्क कारण पयासु ।
सो तलि वित्तासणु सरिसुभाइ[4], झल्लरि णिहु वट्टलु मज्झि ढाइ ।
मद्दल सरिच्छु उप्परि णिसण्णु, इय आयारिंहि तिहु अणुर वण्णु ।
ठिउ जीवाजीविहिं[5] गाढ पुण्णु, जम्मत धुव्वु+ धम्मिहिं पवण्णु ।।

घत्ता—इय धम्मु जि दुल्लहु, बुहजण[6] वल्लहु, जिणणाहेण पउत्तउ ।
ते[7] विणु मणयत्तणु, अहहु, वुहत्तणु[8], रयणु व जलहिं पचित्तउ ।।17।।

(18)

दह[9] लक्खणु त जिणवर[10] कहति, ज[11] लग्ग भविय भउ उत्तरति ।
जिणधम्मु ति जय जण कप्परुक्खु, जिणधम्मु ति जय जणि देइ सुक्खु ।
जिणधम्मु सयलु दुक्खह पठासु, जिणधम्मु सयलु आवइ विणासु ।

1 घ किय
2 क. ख पहु,
4 ख सउभाइ,
6 क. बहुजण,
8. क बूहत्तणु,
10 जिणवरु,

+. = उत्पादव्यय धौव्य युक्त
3 = आदि-अंत रहित
5. क.जीवाजेविहिं,
7 ख त,
9 ख ग दस,
11 क जें,

जिणधम्मु ति जय रक्खण समत्थु, धम्मु जि पीयूसहू सारवत्थु ।
कूर वि धम्मेण हवति संत, धम्मेण जलण थक्कहिं जलत ।
धम्मेण मेहवरिसहिं प्रयालि, धम्मेण होइ धरि कणय पालि ।
धम्मे गयणहु हुइ रयण विट्ठि, धम्मे उप्पज्जइ सग्गसिट्ठि ।
धम्में हवति तित्थयर देव, धम्में इदरि सुर जणिय सेव ।
धम्में प्रइसय गुण सभवति, धम्में सव्वच्छवि बिजय हुति ।
धम्नें पूरिज्जइ[1] सयल काम, धम्में णरवर बहु[2] प्रतुल धाम ।
धम्में णिह णिज्जइ सयल दुक्खु, धम्में कमि कमि फुडु होइ मोक्खु

घत्ता - इय दुल्लहु जाणहिं, णिय मणि माणहिं, बोहिरयणु प्रइ णिम्मलु ।
ति लद्धइ लद्धउ, सिवसुहुसिद्धउ, प्रण्णु बि जायउ जम्मफलु ॥18॥

(19)

बहु थावर जावहिं सचरतु, जिउउ हिंड भवसायरि भमतु ।
ता कहवि कहवि विय लक्खजोणि, तत्थवि दुक्खें पचक्ख खोणि ।
प्रइदुल्लहु तत्थवि मणुय जम्मु, तत्थवि प्रइदुल्लहु[3] जिण[4] सुधम्मु ।
बोहिहि हवति बहु प्रंतराय, बहुकम्म सुहउ किय सपराय ।
मणुयत्तणि णहु हुइ दीहु प्राउ[5], तत्थ वि णहु हुइ धम्महि[6] उवाउ ।
णीरोयत्तणु प्रइदुलहु तित्थु, तत्थवि णउ जाणइ जिणह सुत्तु[7] ।
जाणतु वि णहु हुइ सतु चित्तु, सतु वि णहु हुइ मुणि णाहु भत्तु ।
भत्तु वि बेरग्गहो णेइ जाइ, बेरिग्गउ णहु चिरु कालु थाइ ।

---

1. ख. घ. पूरिज्जहिं, 2. क. प्रइ,
3 ख. दुल्लहउ, 4. ख. जिवर,
5 क. प्रऊ, 6. क धम्महो,
7. ख सत्थु,

कुवि लहि विवोहु[1] जइ पुणु बमेइ+, सो सिवि पइ सेंविणु णिक्कमेइ ।
हा[2] ते मणि जलणिहिं जलि खिवंति, कप्प[3] घिउ[4] जालि वि हिमु हणंति ।
पीऊसिहिं[5] ते धोवति चीर , माणिक्कहि ठवलु कुणति धीर ।
हा लद्धउ बोहि[6] पलाइ जासु, हाहा इहु[7] को उवमाणु तासु ।

घत्ता—इय अविणय चडिहिं, बहु पासडिहिं, सयलु वि जगु विट्टालियउ[8] ।
परमप्पहु[9] सोहिहिं,दुल्लहवोहिहि, मूढउ जणु णिरु टालियउ ।।19।।

(20)

इय बारह भामण भवयतु, जा अच्छइ भावदुह ससरतु ।
वर चदहु पुत्तहो रज्जु दिंतु[10], महि भारु सयलु मतिहिं णिसत् ।
अप्पहु डुद्धरु तउ चित्तवतु, ———————।
ता आइय तहिं लोयत देव, बहु भत्ति करणि णायडिय सेव ।
ते पभणिय मामिय तिजयदीव, उद्धरिय सयल पइ भव्वजीव ।
वहु दुक्खमलिलवेला रउद्द, पइ विणु जसु बोलइ भवसमुद्द ।
जगु[11] पडइ णरइ मोहधयारि, णासिय सद्दसण रुइ पयारि ।
जय णाणदिवायरु जिणवरिंदु णहु भासइ तिहुयणु[12] कम्मचदु[13] ।
करि लहु जाणिय[14] पारद्ध कज्जु, तुम्हारिसु जम उद्धरणि सज्जु ।

1 ख. बिक्कोहि, घ. विक्कम्मु, 2 ख हो,
3 क कप्प, 4 ख हिउ,
5. क. पीयूसिणि, 6 क वोरि,
7 क हाइहु, 8 ख बिट्टालियउ ,
9 ख. परमप्पा, 10 ख विंतु रज्जु,
11 ख जइमु, 12 ख तिहुवणु,
13 ग ते परडु,
14. क. ज णिय +. = मोक्षे प्रविश्य निस्सरति,

उग्घाडहिं पहु सिवणयर दारु, तित्थय रत्तणि इह फुडउ सारु ।
धम्मामय सद्धिउ सयल लोउ, करि सामिय लहु केवल पलोउ ।
बहु विणय भाव पायडि पसेव, इय जर्पाह़ि जा तहिं बभदेव ।

घत्ता—ता तिय सुर कलयलि, दह दिसिणहयलि, दु दहि सरु सजायउ ।
अइ हरिस गहिल्लउ, भावर सिल्लउ[1], सुरवर गण तहिं आयउ ।।20।।

(21)

ता आइवि तहिं पणमति[2] सक्क, बहु भत्ति भार सभार थक्क ।
जा मउलिय कर सथुर्वाह तित्थु, ता उट्ठिउ जिणवरु समकयत्थु ।
आरूढउ सिविया जाणि झत्ति, विमला णामए[3] सुरजणिय भत्ति ।
सोहम्मी साणाहि दिण्णु खधु, कइवय पयाइ दिढभत्ति बधु ।
तह अग्गइ सिविया चदसूर, उव्वहहिं[4] पद रिसिय भत्ति पूर ।
तहिं[5] अग्गइ ठिय भवणामरिंद, उव्वहहिं विणयभारेण रुद ।
तह[6] अग्गइ बिंतर पहु हवति[7], णिय देवत्तणु णिरु सहलयति ।
दु दहि सरवहि रिउ भुवणमड्ड, फुट्टण मणु ठिउ ण पक्क अडु ।
सव्वत्थवि सुरगण बहु णडति, सव्वत्थवि सुम कुसुमइ पडति ।
सव्वत्थवि गायहिं देवसत्थ, सव्वत्थवि आणिय देववत्थ ।
सव्वत्थवि धयवड उल्लसति, सव्वत्थवि सुरवीणा रसति ।
सव्वत्थवि मगल हत्थणारि, सव्वत्थवि सुरतिय माल धारि ।
सव्वत्थवि णंदण वचणाइ, सव्वत्थवि सुरकिय वंदणाइ ।

---

1. ख, घ. वे इव हिल्लउ
2. ख. पणवति
3. ख णामइं
4. =शिविकाभि
5. ख. तहे
6 क. तह
7. ख वहति

घत्ता—समसिरि परमेस॰, तार्ताहि जिरणवरु, मइयणवरिण सपत्तउ ।
जा सुरहं विरत्तिय, बहु गुण जुत्तिय, तहिं तव सिरिहिं
सुसत्तउ ॥21॥

(22)

सयलुत्तय णामे त वणतु, पिच्छइ परमेसरु गुणमहतु ।
ज केलि करजिहि करवरेहि, करवीरिहि कयरिहिं किंसुएहि ।
क किल्लि कय विहि कचणेहि, कुडयहि कच्चूरिहिं[1] काकवेहिं ।
करहाउ कवट्ठु[2] कप्पूर एहि, ककोल कउह कणियार एहि ।
को सु तिहि कास कपास एहि, खज्जूरिहि खयरिहिं खरकरेहि ।
चपय चदरा चूयह चरेहि, जूही जायहि जा सवण एहि ।
तम्मालिहि ताली ताडिएहि, दीहर दाडिम दुम दमण एहि ।
घव धम्मरग धाहुडि धाइ एहि, णारंग णिवालिहि णिव एहि ।
लवली लवग लवा उलेहि, वावल[3] वव्वूलिहि बहु फलेहि ।

घत्ता—इय वहु तरु भेयहि, हयरवि तेयहि, गाठु गाठु सछण्णउ ॥
तव वनह जोग्गउ, हय उवसग्गउ, णिम्मल सिलहि रवण्णउ ॥22॥

(23)

त वणु पेक्खिवि तरु जालरुद्दु, जाणहु उत्तरियउ जिणवरिंदु ।
णिम्मल पासुय सिलतलि वइट्ठु, वियसिय तिहुवण णयणेहि दिट्ठु ।
पोसहु एयारसि कसिण पक्खि, समहिय दिक्ख तिहुयण समक्खि ।

1. ख कच्छूरिहिं 2 ग कविट्ठु
2. ख. वाउल

सिद्धाह णमोइय भणिवि मतु, सचिंति वि बहु संसारु[1] अ तु ।
उप्पाडिय केसहू[2] मुट्ठि पच, ण भव पायव मूलहू पवंच ।
मणिपत्तु धरिउ इ देण ताहं, तिहुवण सामिय सिरिवासु जाहू ।
उत्तारिय कुडल रयण दित्त, ण कामरहहो चक्काइ चत्त ।
हारु वि तोडिउ बहु मणि पयासु, ण कठहो दीहरु[3] मोहपासु ।
मुक्कइ केयूरय कंकणाइ, ण भवणिव कर मुद्दागणाइ[4] ।
कडि सुत्तु वि तोडिउ दूरिवत्तु, ण कामधणुहू जीवाहि[+] सुत्तु ।
णेउर[5] परिसेसिय रयण देह, णं पुत्तकलत्ताइय सणेह ।
मुक्कइ देहहो णिरु सुहमवास, ण चरणावरणिय मिलिय फास ।
इय अवर विवहु आहरण जाइ परि मुक्कइ भववधणइ ताइ[6] ।।

घत्ता—ता ठिउ थिर झाणें, वियलिय माणें किरियाकम्म विवज्जियउ ।
णिच्चल ठियचित्ते[8], चिंतावत्ते, णिय चरणेण समज्जियउ ।।23।।

(3)

सुरवर सजाया हरिसवत, पुलइय हरिस सुय जलवहत ।
पियरुवि अब्भुय विभइ ण जुत्तु, पभणइ को जाणइ जिणहू सुत्त ।
मायरि केवल सोएण भुत्त, अइ दुम्मण सोय सुय पसित्त ।
हरिसें सो एण वि सुयण दक्ख, सजाया पुलइय सुह वि[9] लक्ख ।
विभिय सोएण वि अबुह लोय, वियसिय लोयण सुहि ठिय ससोय ।
अतेउरु अइ विरहेण तत्तु, कोवि दुक्खेण वि अइवि गुत्तु ।
चिंता सोएण वि पुत्तु वालु, जायउ णिच्चल लोयण करालु ।

1 ख घ. ससार
2. ख केसेहू
3. ख. दीहहा
4 ख. ०मुद्दाघ० घ. मुद्दायणइ
5. ख. ज उर
6 ख णाइ
7 ख थिरसणें
8. ग. ०चित्तें
+घ. =प्रत्यचा
9 ख मुहवि

दह्[1] सय सखिहिँ राएहिँ दिक्ख, सगहिय मुणिय गाहहो[2] परिक्ख ।
खीरोवहि जलि घित्ताइ केस, सुरवइ[3] गाणिय हत्थें असेस ।
तहिँ गाइ वि गच्चि वि तिय सगाह, पूया थुइ बहु भत्तिय[4] सगाह ।

घत्ता—णिय णिय भावासहो, जणिम विलासहो, ता सपत्ता सयल सुरा ।
दुक्खेण मुवता[5], थिर पर्यविता, तहिँ पुरि पत्ता सुयण णरा ॥24॥

इय सिरि चदप्पह चरिए महाकइ जसकित्ति विरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवण भूसणे जिण णिक्खवण
कल्लाणो णाम णवमो सधी परिछेउ

समत्तो ॥9॥ (ग्रन्थ 234)

---

1 ख घ, दस
2. ख णाहहु
3 क. ख. सुरवय
4. ख. भत्तिए
5. क. सुवता

दहमो संधि

(1)

पंच महव्वय भार धुरधरु, पंचसमिदि परिपालइ तप्परु ।
पचेदिय दारह कय सवरु, लोय परीसहु विसहइ खरतरु ।
छावासय विहि णिहिमे पालइ, अच्चेलत्तहु ण वि मणु चालइ ।
अण्हाणत्तणु तिविह दक्खइ, खिदि सिज्जाहर चारु परिक्खइ ।
दतवणु[1] वि तिविहेण विवज्जइ, सुद्धउ ठिदि भोयणु वि समज्जइ ।
ग्य भत्त_ णिय मुवि परिहावइ, मूलगुणाइ इय णिम्मल भावइ ।
उत्तरगुण वहु भेयइ पोमइ, कम्मवधु दुद्धरु अइ सोसइ ।
बारह विहतवयरणइ सेवइ इय णिम्मल चारित्तहिं देवइ ।
णिच्चलु णिमणु णिग्गय वछउ, किय समभावणु हणिय दुगु छउ ।
सत्त_ वि मित्त_ बि सो समुवण्णइ, तिणु तवणु वि तुल्लउ अवगण्णइ ।
रउ रयणु वि समभावें पिक्खइ, सुक्खु वि दुक्खु वि समउ समिक्खइ ।
सक्कु वि रक वि तहो सम तुल्लउ अप्पगत्त_ परगत्त_ वि भल्लउ ।
पाउ वि पुण्णु वि तुल्लइ तोलइ, रज्जु वि वरणु वि समु मणि बोल्लइ ।
लच्छि वि भिक्ख बि सरसी भावइ, भव पुरु सिवपुरु सम परिभावइ ।

घत्ता—इय भावणावतउ[3], तवसमवतउ, सो दो दिवसइ थक्कउ ।
आहारहो कारणि, दोसणिवारणि, चल्लिउ मुक्क वि मुक्कउ ।।1।।

(2)

चितइ जिणवरु एसणहि सुद्धि, सजम परिपालण जणिय बुद्धि ।
आहारु वि णवकोडी विसुद्ध_ मुणि देसिवि जो[4] किरणेय रद्ध_ ।
सच्चित्तें मीसिउ जतु धाउ, सच्चित्त बड्डि तह उवरि ठाउ ।

1 ख दतधवणु वि
2 ख घ भावतउ
2 ख. उवगण्णइ
4 ख जे

छेयालीसहिं दोसेहिं[1] मुक्क, चउदह मलदोसिहिं दूरि थक्कु ।
तह वत्तीस वि ते अंतराय ते पालिव्वा भोयण अपाय ।
अग्गइ पाछइ[2] दायारथत्तु वज्जेवीजाणि वि सयल जुत्ति ।
पासडि लिंगि वज्जे वि दाणु, आकिट्ठि सत्तु यारु वि अमाणु[3] ।
वेसा णिद्धम्मह दोसि गेह, वज्जि वि तह दिट्ठिहिं कुट्ठदेह ।
वलि चरु[4] लाहण,कप्पिय भोयण, परभय भावें पिंड पढीयण ।
ए दोसइ मेल्लि वि मु जिव्वउ, सरसा सरसु ण किं पि गणिव्वउ ।
णिप्पणउ ज परहो णिमत्तें, लद्धउ सुद्धउ समइ[5] भमते ।
पाणिपत्ति ति परिक्खइ दिट्ठउ, पुव्वसूरि चरि आगमि सिट्ठउ ।
सजम जुत्ति मित्तु कवलेव्वउ, रसणिदिय लउ लत्तु[6] दलेव्वउ ।
लुक्खउ आरणाल सजुत्तउ, दाणरायभत्तह घरिपत्तउ ।

घत्ता—तह लोय विरुद्धउ दोसिहिं बद्धउ, भोयणि मुणिवरु वज्जइ ।
आयमि ज भणियउ, चिर जिणथुणियउ, त किर कवलु समज्जइ ।।2।।

(3)

इय चिंतिवि जिणवर ति जयणाहु, सुरवर करिकर सारित्थ वाहु ।
सचल्लिउ किय जुगमित्त दिट्ठि, अइमदु[7] मदु किय चरण पुट्ठि ।
छडतु अडइ वहुवण विसेस, मिल्लतु[8] सचित्तइ धरपएस ।
विसिय णय णिहिं लोएहि दिट्ठु ण कित्ति धम्म पिंडेण सिट्ठु ।
सो जतु जतु सपत्तु तित्थु, णामेण गलिणपुरु णयरु जित्थु ।
हिंडइ घरि घरि अगण ति भाउ, धरि उच्च णिच्चि थिरु देइ पाउ ।
जा णायर णर तहि सभमति, अग्गइ पच्छइ हरि सिय भमति ।
ता पहु सपत्तहु रायगेहि, बहु पचवण्ण धयवड सुसोहि ।
ता धायउ णरवइ सोमदत्तु, सियवत्थ जयलु मडिय सुगत्तु ।
जय जय पभणिवि वदइ त्ति वारु, ठाहुत्ति भणइ वहुभत्ति सारु ।

1 ख घ आयम दोसहिं सयलेहिं
2 क पाच्छय, ख पछइ
3 = वलिविधानादिसत्कार निमित्त
4 ग चरु
5 = मध्यान्हकाले
6 लोलत्व
7 ख मदु मदु
8 ख. घ मेल्लतु

दिक्खालइ फासुभ्र जलहं ठाणु, ढोवइ सिंघासणु सुहणिहाणु ।

घत्ता---ता जिणयइ चरणइ, सिव सुहकरणइ, अट्ठ विहाणें पुज्जिय ।
तिहुअण हुअ णतइ, बहुसिरिकतइ, पुण्णइ चारु समज्जिय ॥3॥

(4)

ता जिणु खम्मावइ सिद्धभत्ति, खीरण्णु खिवइ खिउ पालिपत्ति ।
णहयलि उट्ठिउ दुंदुहि णिणाउ, सव्वत्थ वि सुरयणु साहुवाउ ।
गयणहो सजायइ रयण विट्ठि, गधोवय वरिसणि जणिय पुट्ठि ।
बहु कुसुम वरिस सछण्ण गेहु, तिहुयणु जणु आयउ पुलउ देहु ।
भु जिवि परमेसरु जलु गहे वि, लोयहु चरियागमु[1] पायडेवि[2] ।
अक्खइदाणु भणइ भुणि रुदें, सजलमेह गभीर लुसद्दें ।
ता हुइ भोयणु तहि घरि अक्खउ, जो भावइ सो आविवि भक्खउ ।
पुणु जिणपय पुज्जइ सोमदत्तु, अट्ठगपुज्ज पायडइ भत्तु ।
गधोवइ पयडइ तिण्णिधार, चदणरस घल्लइ घुसिणसार ।
पुण्णकुर णिह तदुल खिवेइ, सियकुसुमिहि णिरु[4] पुज्जणु करेइ ।
णेवज्जइ[5] णेवइ[6] महु महत[7], दीवय उत्तारइ विप्फुरतु[8] ।
अण्णाण तमो हइ ण हणतु, धूवइ सधूवइ गधवतु ।
फलभारु वि ढोवइ महुरसारु, पुप्फजलि भामइ इय पसारु ।

घत्ता--इय पयपुज्जेविणु करमउलेविणु थुत्ति करण पारभइं ।
चिरभवसय बद्धइ कम्मइ खधइ, लीलइ राउ णिसु भइ ॥4॥

(5)

तुहु परमेसरु तिज्जइक्क णाहु, परउवयारइ वड्ढिक्क गाहु ।
पइ तिहुयण सयलु वि किउ पवुत्तु, पुणु सविसेसें महो धरु णिरुत्तु ।
पइ धण्णु पुण्णु किउ सयल लोउ, पुणु सविसेसि हउ गलिय सोउ ।
पइ सुपसिद्धउ किउ तच्च गामु, अण्णु वि महुकुलु ससि लिहिय णामु ।

1 क चरियायमु 2 क पाअडेवि
3 अक्खयदाण 4 ख णिउ
5 ग, घ णेवज्जइ 6 ग ढोयइ
7 ख घ महतु 8 ख ० रतु

पइ भव्वह फेडिउ[1] पक भारु, अण्णु वि महु सायरहा दोस सारु[2] ।
सा धण्णुभूमि जहिं देहि पाउ, कह पसरइ जहिं तुह अगवाउ ।
जे गहण वि पइ लीलइ दिट्ठ, ते तित्थ भणेवि[3] लोएहिं सिट्ठ ।
जहिं णिमि सुवि तुह खलीणु ठाणि, सग्गु वि मोक्खु वि त देइ जाणि ।
तुहु[4] परमप्पउ परमप्पयारु[5], तुहु णिम्मल केवल कप्पसारु[6] ।
तुहु सुक्खाहु[7] वि सजणहि सुक्खु, तुहु णिह णहि जीवह परमदुक्खु ।
को सक्कइ तुह गुण थुणण सामि, सक्कु वि सुव मक्कइ महिय णाणि ।

घत्ता—इय जासो जपिवि, विणउ पय पि वि, मोणें णिउ सजायउ ।
ता दिक्ख व णतरि, सुतरु णिरतरि, जिणवरु जाणे परायउ ॥5॥

(6)

णिव गेहहो चल्लिउ मदु मदु, इरिया समिदी पालण अतदु ।
सपत्तउ तित्थ जि दिक्ख ठाणि, तव णिव्वाहणि जाणिय पमाणि ।
वादीस परीसह सो सहेइ, बारह विह तवयरणइ वहेइ ।
तरु मूलि पडिच्छइ मेह णीरु, आसार[8] पसरदूमिय सरीरु ।
घणतम अधारइ रयणि मज्झि, बहुदस मसय तण जाल गुच्छि ।
घण गज्जिउ बहिरिय कण्णदारु, सो विसहइ[9] बहु दुक्खह पयारु ।
सो विसहइ[10] विज्जुल किय झडप्प, घणवाय लहरि किय काय कप[11] ।
चच्चरि ठिउ विसहइ अइ[12] तुसारु, हिमदड्ढ[13] सयल दलदुम पसारु ।
हेमतवाय सोसिय सरीरु, इह दहु तणु समु मण्णेइ धीरु ।
गिरि सिरि ठिउ विसहइ गिम्हयालु, खरकिरणपसर किय पलय कालु ।
अइ ताव जलिय दावाणलेसु आतावणु विसहइ[9] गिरि तडेसु ।
णिअ अप्प झाणु मुह रस पवीणु, णहु दुहु वेयइ वेरग्गा[14] लीणु ।

1 ख फेरिउ
2 = नाश
3 क ० भविण, ख तित्थरु भणवि
4 क तुहुं
5 ख घ परमप्पयाणु
6 ख ० रुक्खु
7 क सुक्खहेवि, ख सुक्खाहवि
8 धारा सपात आसार = मेघ
9 ख विहसइ
10 ख विहसइ
11 ख पव
12 ख अतुसारु
13. हिमदत्त
14 ख ० वरग्ग

घत्ता—इय तउ पालंतहु, वणि णिवसतहु, जाइ कालु सुह झाणें ।
इ वियइ जिणंतहु[1], कम्महु णतहु, रक्खिय जीव सुपाणें ।।6।।

(7)

ता णायरुक्ख[2] तलि तहिं वराति, वज्जासणि सठिउ पिहु सिलति[3] ।
आरंभिउ तहिं णिरु सुक्क झाणु, ज मोह महातम पलय माणु ।
ज आयम सहुण[4] णाइ थाइ, ज फुव्वधरह णिरु सिद्धि जाइ ।
ज खयमोहहु[5] विप्फुरइ झत्ति, ज केवल[?]णाणहु[6] जम्मसत्ति ।
चउ भेउ त जि ठिउ सुक्क[7] झाणु, धम्महु[8] दो भेयउ सो पहाणु ।
अग्गिम दो भेयउ केवलीण, घायक्खइ पयडण वहु[9] वलीण ।
दुहु पढमह लवणु सुत्त अत्थु, अवरह दुहु लवणु णत्थि वत्थु ।
पढभेउ सवितक्कउ सवियारउ, पित्थक्कत्तणि पयडिय णिसारउ ।
वीयउ सवितक्कउ अवियारउ पक्कत्तणि समुणिय पयारउ ।
जो यत्तय जुत्तह पढम भेउ, वीयउ जोगिक्कहु हुइ अछेउ ।

घत्ता—इय वीयहो झाणहो, मुक्ख पयाणहो, सो धरत्ति सलीणउं ।
चिर कालें बद्धउ बहुभव सिद्धउ, घाइ चउक्कउ खीणउ ।।7।।

(8)

पयडिय तिसट्ठि तोडिय तडत्ति, जहु केवल रुअणि फुरइ सत्ति ।
ता केवलु णिम्मलु फुरिउ णाणु, ज वत्थु पयासण पयडु भाणु ।
ज णिक्कलु णिक्कारणु महतु, ज णिच्च णिरजणु गुण अणतु ।
ज सव्वोदउ ज णियपवासु, ज छेय विवज्जिउ सुहु वियासु ।
ज परमप्पय भावेण थक्कु, ज भव भावण भावेहिं मुक्क ।
ज रयणत्तय परिणामसारु, ज ण तव उट्ठय ठिदि पयारु ।
ज इक्क समय सयलु वि मुणेइ, ज कालत्तय पसरणु कुणेइ ।

---

1 ख जिणतहु
2 = नागवृक्षतलि
3 = विशीर्णशिलोपरि
4. = वज्रवृषभनाराच सहनन
5 ख मुक्क
6. ख ०णाणहो
7 = शुक्लध्यान
8 ख घ छम्मच्छहु
9 क ख वगहु

भू उवि भविसु[1] वे जसु वट्टमाणु, पच्चक्खु फुरइ अमुणिय पमाणु ।
ज णतहृ दव्वहृ पज्जयाह, कालत्तय[2] वित्थर-सठियाह ।
जुगवज्जाणणि पयडियउ सहाउ, णेण[3] जि णणिज्जइ तहोव[4] पहाउ ।

घत्ता—ता तहिं परमेसरु, इयवम्मीसरु, दव्वजाउ णिरु पेक्खइ ।
कर ठिउ सुत्ताहलु, णाइ सु णिम्मलु, सयल वि फुडउ समिक्खइ ।।8।।

(9)

ता कपिय इ दह आसणाइ, मणि किरणभारभा भूसणाइ ।
घटा टकारिहिं बहिर कप्प, जाया सुरगण विभिय वियप्प ।
जोइम घरि उट्ठिय सिहणाय, दिग्गयमय सोसण किय[5] महाय ।
पडु पडह सद्द वितर घरेसु, सइ जाया विभिय वितरेसु ।
भुवणहृ घरि वज्जहिं बहुअ सख[6], विभिय भुवणामर वहु असख ।
ता सोहम्मे णाणे चितिउ, णाणु जिणेसहु इय मणि मतउ ।
अइ हरिसपूर पिल्लिय मणेण, जरकेसरु चिंतिउ तक्खणेण ।
आइ वि सो तहिं जोडे वि हत्थ, आइए सहि[7] भणइ सामिय कयत्थ ।
ता भणइ सक्कु करि धम्म कज्जु, जिण समयुज्जो वणि[8] होहि सज्जु ।
उप्प ण्णउ देवहो परमणाणु, करि समवसरणु जुत्ताउ पहाणु ।
त सुणि वि धणउ पभणइ सुजाणु, इहु करमि सामि आइसु पमाणु ।

घत्ता—ता णिय परिवारे, बहुय पयारे,[9] सहु जक्खेइ[10] परावउ ।
जिणुणाहुण वेप्पिणु, विणय थुणिप्पणु[11], णिम्मइ सह सिरि रायउ ।।9।।

(10)

समवसरणु णिप्पायउ जक्खे कम्म पयट्ठिय[12] परियर लक्खे ।

1 क भविसु, ख भविस्सु
2 कालुत्तय॰
3 = केवलज्ञानेन
4 = केवलज्ञानस्य
5 ख कय
6 ग ष बहुयसख
7 = आदेश देहिं
8 = जिनमतोद्योते
9 क. पराए
10 ख जक्खिहु ग जक्खदु
11 ॰ विणु
12. = कार्ये परिक्षित परिकरलक्षेन

सद्ध अद्ठ जोयण कय वित्थरु, मेलिय[1] पचवण्ण मणि पत्थरु ।
पच सहास धणुह धर मिल्लिवि[2], आरभिय सह णहयणु पिल्लवि ।
णीलिहिं बद्धउ तहिं तल महियलु, ण हरि अकुर[3] छण्णउ णिम्मलु ।
पचवण्ण मणि रेणु सुसिद्धउ, धूलि सालु पटमेण सणिद्धउ ।
सोहवि कत्थवि मरगय वण्णउ, कत्थ वि पोमराय संछण्णउ ।
कत्थ[4] वि माहणी लेहिर वण्णउ, कत्थ वि दित्त कणग णिप्पण्णउ ।
कत्थ वि चदकति सघडियउ, कत्थ वि कक्केयण सजडियउ[5] ।
बहु सोहा जुत्ताउ धूलिसालु, आइमु णिप्पण्णउ अइ[6] विसालु ।
चउदारिहिं चउपोलिहिं जुत्ताउ, मणिमयतारण तेम दित्ताउ ।
तहि वाहिरि णिम्मिउ मणि वावेउ, णिम्मल जल कल्लोल पराइउ ।
माणखमु अइ तुग मणोहर, तिहुयण माणदलण अइ दुद्धर ।
चउ सालिहिं चउ पोलिहिं मडिय, चउदिसि चउ जिण पडिम पयडिय ।
तहिं सरवर पोमिणि सछण्णउ, ठिउ बहु सुरपक्खेहिं रवण्णउ ।

घत्ता—परिहा जल णिम्मल, विय सिय सयदल, तहो तलि पिहपडिहासइ ।
तह तडि जिणगेहह, मणिमयदेहह, घरह वि सेणी दीसइ ॥10॥

(11)

परिहा परितडि वल्ली वियाणु, फल फुल्लपवर पल्लव पहाणु ।
तहु अग्गइ दीसइ कणय सालु, अइ तुग सयल सोहा रमालु ।
तहु अग्गइ उववणु अइ महंतु, पुण्णाइय तरुवर भरु सहतु ।
तहो अग्गइ वेई[7] रयणसार, तहो अग्गइ धयठिय बहु पयार ।
तहो अग्गइ पायारु सु णिम्मलु, णिम्मिउ हीरावलि रुइ पविडलु ।
तहो अग्गइ सुरतरु वर थक्क, चित्त रुक्ख पडिमहिं णिलुक्क ।
तहो अग्गइ वेईय रुइ रम्मिय, बहु पयार रयणेहिं विणिम्मिय ।
तहो अग्गइ सुरहरसुक्खधाम, जहिं णच्चहिं बहु देवाह राम ।
तहो अग्गइ सालु वि सालु इट्ठ, मणि किरण जाल संभार पुट्ठु ।

---

1 = समग्रहत्य
2 ख मेल्लिवि
3 ख यकुर
4 ख. कहवि
5 ख घ सघडियउ
6 अह
7 ख ०वइ०

तहु अग्गइ मणि फलहेहिँ बद्ध, बारह भित्तिहि अंतरि णिरुद्ध ।
अग्गइ पीवत्तउ रयणसारु, उप्परि असोउ बहु लच्छि भारु ।

घत्ता—तहोतलि सिंहासणु, भणिभाभूसणु[1], गधकुटी परिवारियउ ।
विय सिय मदारिहि, बहुय पहारिहि, मालिहि णिरु सभारियउ ॥11॥

(12)

चउ सालिहिं तहिं वेइय पर्चाहि, मडिउ समवसरणु मणि सचिहिं ।
सालि सालि तहिं पोलि पसिद्धय, पोलि पोलि मणि तोरण रिद्धिय ।
चउ दिसु वीस सहस सोवाणिहि, मडिउ इच्छु किक्कु पमाणिहि ।
पढम पोलि तहि वितर रक्खिहि, भव्वु लोग्र ग्रावतु[2] समिक्खहि ।
वीय पोलि[3] ठिय णाय सुरेसर, मुग्गर कुलिस पास सठियकर ।
णव णिहाण तहिं सठिय दीसहि, मणि दित्तिहिं जे दुच्छइ भीमहिं[4] ।
तहिं बहु मगल दव्वइ णियहिइ, अट्ठुत्तरु सउ सखामहियइ ।
पह उह दिसि दो णाडयसालउ, ठामि ठामि मडियउ विसालउ ।
ठामि ठामि तहिं धूव घडुल्ला, अयणिसु[5] सुरहिं धूम भरभल्ला ।
ठामि ठामि कीडागिरि[6] सुदर, सेवागय सठिय ण मदर ।
ठामि ठामि मणिरासिउ भासहि, तमु दालिद्दवि दूरिहि णासहिं ।
ठामि ठामि चित्तहिं[7] व णिम्मिय, जिण पडिमकिय[8] उरि ण धम्मिय ।

घत्ता—तहिं पोलिसु तिज्जिय, रयण समज्जिय, रक्खिय जोइ सदेवहिं ।
करि किय बहु सछिहि, सार समत्थिहि, पयडिय जिण पयसेवहिं ॥12॥

(13)

ता पोलि चउत्थिय फलिहसाल, तहिं भितर बारह गण विसाल ।
तहो अग्गइ[9] वेई धवल वण्ण, चउदाररयण पयडिहिं रवण्ण ।
तहो अग्गइ पीढत्तउ रवण्णु, बहुभेय रयण किरणेहि छण्णु ।

1 क भणि भामणु, ख घ भणिभाभूसणु
2 ख पउलि, 3. = अवलोकयन्ति
4 ग भीसही, 5 ख ग अह
6 ख ग कीलागिरि, 7 चैत्यवृक्ष
8 = प्रतिमा सहित चैत्यवृक्ष 9 ग अग्गल

पढमहो पीढहो[1] सिरिधम्मु चक्कु, सहु सारिहिं[2] जुत्तउ पुरउ थक्कु ।
बीयहु पीढहो सिरि ग्रट्ठकेय, देवगिहि लविय ग्रट्ठ भेय ।
तइयहो पीढहो सिरिदेव सिट्ठ, सठिय बहु❀सिरि पडिहेर ग्रट्ठ ।
तहिं उरि सिंहासणु खणसारु, जक्खिहिं बुद्धिहिं[3] णिम्मय पयारु ।
तहो वित्थरि सठिउ पोमजाणु, तहो उप्परि छत्तत्तउ पहाणु।
तहो तलि परमेसरु णिरवलबु, चउसट्ठि[4] चमर वीजिउ सुबिंबु ।
सिंहासणु बाहिरि गधगेहु, बहुदेव कुसुम सपुण्ण देहु ।
सुरवदण सिंचिय सयल खोणि, महमहइ गध कप्पूर जोणि ।
सव्वत्थवि णिवडइ कुसुम विट्ठि, मुत्तिय रगावलि जणिय सिट्ठि ।
ग्रण्णु वि ज तिहुयणि सारवत्थु, त किउ जक्खें णिरु सुलहु हत्थु ।
[5]छुडुसमव सरणु णि पुण्णु पुणु, ता सक्कविंदु ग्राइण पवण्णु ।

घत्ता—ता दुंदुहि वज्जइ, तिहुग्रण गज्जइ, चउणिकाय सचल्लिय ।
जय जय पभणता, पुलउ वहता, हरिसभाव परिपेल्लिय ॥13॥

(14)

एरावणि ग्रारुढउ सुरिंदु, बहु ग्रच्छर ढालिय चमर विंदु ।
दिसिपाल सबल चल्लिय महत, णिय वाहण णिय परिवारवत ।
दुदुहिरव गज्जइ णहु समुद्द, पयवड कल्लोलिहिं हुउ रउद्दु ।
बहु धवल विमाणिहिं केण जुत्तु, सुरवाहण जलयर कोडि भुत्तु ।
सुरकाय कति तोइ[6] विसालु, सिय छत्त कमल खडहिं रमालु ।
तहिं विद्दुम रमणइ विद्दुमनि, मुत्ताहरणइ मुत्ताहलति ।
बहु धूव धूम मडलु विहाइ, जलयाणहिं उट्ठिउ भेहुणाइ ।
तहिं सखहि सजाया सुसख, जलसिय[7] पक्खहि चमरहि[8] ग्रसख ।
सेवालइ सिक्किरि[9] सयसमूहु, जलसप्पइ मणितोरणहु बूहु ।
वाडव जलणा ग्रइ सूरु तित्थु, एरावड मदर तुल्ल जित्थु[10] ।

1 ग सारहिं, 2 क. बीढहो,
3 क. बुद्धि + = चैत्यवृक्ष ❀ = प्रतिमा सहित चैत्यवृक्ष
+ = ग्रारा 1000 धर्मचक्र, ❀ = श्री ह्रीधृतिकीर्ति बुद्धि लक्ष्मी = पूजा
4 = भवणवासी 20 व्यंतर 16, कल्पवासी 24, सूर्य, 1, चन्द्र 1
5 क बुडु, 6 ग तोए
7 = समूहै 8 = श्वेत पक्ष ख. ब चमरइ
9 = छत्री 10. ख ध, जेत्थु

घत्ता— वायत्तु[1] णडतउ, गेउ भणनउ, देवसत्थु तहिं आयउ ।
जहिं ठिउ परमेसरु, परमु जिणेसरु, परमणाण मपायउ ॥14॥

(15)

सह मज्झट्ठिउ दिट्ठउ[2] जिणिंदु, मडल मज्झट्ठिउ[3] णाइ चंदु ।
घाइक्खयदह अइसयहि जुत्तु, परमेसरु हुउ केवल पवित्तु ।
जहिं जहिं विहरइ तहि तहि सुभिक्खु, चउदिसि सय सय योयण परिक्खु ।
गयण गमणु जीवह सयल रक्ख, उवसग्ग मुत्ति वज्जण सभिक्ख ।
छाया वज्जिउ चउमुहउ रूउ, अप्फदु जाउ लोयण सरूउ ।
सजायउ विज्जा सयल णाहु, णह केसर विद्धि वज्जण सणाहु ।
इय अवसय दह णिम्मल हवंति, जगि तित्थयरहो णिच्चलह थंति ।
मित्ती सव्वह जीवाह जाय, सव्वत्त कुसुम फलदल सुछाय ।
घर णिम्मल दप्पण पडिमदिट्ठ, सीयल समीर सचरण सिट्ठ ।
मारुय सुरघर णिम्मल करेंहि, तिणकीडय कटयऊ सरेंहि ।
घण सुरवरि[4] सहिं गधोउ तित्थु, णह दिसि मडलु णिम्मलउ जित्थु ।
मगल अट्ठइ अणु धम्मचक्कु, मागहि भासा सहु अइ गुरुक्कु ।
अवरुप्परु सुरसद्दणु कुणति, णिरु पोमजाणु अग्गइ ठवति ।
अट्ठारस घण्णइ घर हवति, इय पनुट्टइ देवेहिं तासु थति ।

घत्ता—इय अयसयवतउ, णाण महतउ, देवहि तहि जिणु दिट्ठउ ।
जय जय पभणे विणु, पुरउ सरे विणु पणमिउ भावपघुट्ठउ ।

(16)

आइवि तहि[5] ति पयाहिणु करेवि, बहुभत्ति भारविणए णमेवि ।
जोडेवि हत्थ सयुवण नग्गु, चउगइ भवभमसमारभग्गु ।
जय जय परमेसर अप्परूअ, जय भाविय रयणत्तय सरूअ ।
पइ बुज्झिउ अप्पहु फुडु सहाउ, पइ मुक्कउ परदव्वाह भाउ ।
तुहु मु जहि णाणामय[6] सुसाउ, पइ उज्झिउ[7] भवभावह कसाउ ।
तुहु परमप्पउ तुहु परमदेउ, पइ दिट्ठउ णाणाणाण भेउ ।

1 = वाद्यानि वादन
2 ग दिठउ
3 ग ०ठिउ
4 क ०वर०
5 ख तेहि
6 = ज्ञानामृतस्य
7 = तेजित

तुहु एक्करूउ रिणमुक्करूम्र, तुहु सव्वहु परुरूग्रहं[1] ग्ररूम्र ।
तुहुं सीयलु सतउ सिवसहाउ, तुहु परमपरापर पर पहाउ ।
पइ कारक[2] रिणयरु वि दूरि चित्तु[3] कौ ग्रण्णु संगु पइ गाह छित्तु ।
ज दव्वजाउ पज्जायजुत्तु, तं तुह रणाणी वहि लविरण[4] सितु ।
जे तिहुयरिण वट्टहिं जीवभव्व, ते तुह ग्रसेहुग्र सुद्धदव्व ।
तुहु ग्रवरु[5] तुज्झ गुरण जो थुणेइ, सो[6] राहु[7] कइ ग्रगुल इय गणेइ ।
जो मणवयरिणहिं तुह गराहु थुत्ति, त मण्णउ कवलहिं गयरणभुत्ति ।
तुह बाहिरु ग्रसु वि मुरिणउ जेहि, दुक्खह सलिलं जलि दिण्णु तेहिं ।

घत्ता—इय थुरिणवि सुरेसर, सिरि सठियकर, हरिसपूर पर परमट्ठा ।
किय उवसम भावें, साहु सहावें, रिणय रिणय कोठि वइट्ठा ॥16॥

(17)

पढमइ कुट्ठइ मुरिणयर वइट्ठ, बीयइ कप्पामर रणारि सिट्ठ ।
तीग्रइ ग्रज्जिय सठिय सुसील, तुरियइ जोइस रणारिउ सुलील ।
वितरतिय पचमि सपवण्ण, छट्ठइ रणायइ रिण बहु कुलिउ सण्ण ।
सत्तमि भुवरणामर तेय पुट्ठ, ग्रट्ठमि वितर सयल वि पयट्ठ ।
रणव मइ जोइम बहु तेयरु द, दहमइ उवविट्ठा कप्प इ द ।
एयारह मइ सगय माणुस, बारह मइ तिरिग्रच ग्रतामस[8]
ग्रवरुप्परु जह चिरु वेर भाउ, ताह वि सपायउ सम सहाउ ।
वग्घी थणि धावइ तित्थु वच्छु, मूसउ मज्जारिहिं छिवइ वच्छु ।
णउलहु मुहु चु वई तित्थु सप्पु, हरि करि बि दोवि मिल्लति दप्पु ।
तहिं मरणु ण कासु वि णेय जम्मु, राहु भुक्ख तण्ह राहु कूरकम्मु ।
णहु रिगइ रोय कदप्प भाव, राहु पीडा भय दुट्ठा सहाव ।

घत्ता—इय तहिं बहु भवियण, णिरु णिम्मल मण, बारह कुट्ठय सट्ठिया ।
णिय उरि जोडिय कर, धम्मायरवर, ण लिप्पेण परिट्ठिया ॥17॥

इय सिरि चदप्पचरिए महाकइए महाभव्वसिद्ध
पाल सवणभूसरणे केवलणाण उप्पत्ती णाम
दहमो सधि परिच्छेउ समत्तो ॥10॥

ग्रन्थ सख्या—192, ग्रक्षर 19

---

1 ख रूग्रहं
2 = कर्ताकर्म क्रियादि
3 ग चतु
4 = लवरणपाणी, 'एकत्र' ग्रात्मा
5 क ग्रवर
6 = कवि
7 ग्राकाश,
8 क्रोधरहित

एयारहमो संधि

(1)

घत्ता—भवियण सुमण सवण परिपीणण, अमय[1] सहाव सगया ।
ता जिणणाण जलहि[2] गलगज्जिय, मागहवाणि[3] णिग्गया ।

दुवई–मेहहु गज्जिव फुडु वण्णु चुक्क, जोयण मणि विस्थरणि थक्क ।
णिय णिय भासा भेएण थाइ, सुरणर तिरियह परिणामि जाइ ।
वित्थेय सास[4] वज्जिय अगव्व, जुगव[5] पयडिय पज्जाय दव्व ।
तिणवइ गणहर वित्थरहि वाणि, संगह विचारु णिय णिय पमाणि ।
परमेसरु भासइ सत्ततच्च, ते वण्णिय भगुप्पाय णिच्च[6] ।
जीउ अजीउ आसव विबंधु, सवर णिज्जर मुक्खु वि अबधु ।
इय सत्त वि तच्चइ फुडु कहेइ, भवयह सदेहह अवहरेइ ।
दो भेउ पढमु इह जीव दव्वु, ससारि सिद्ध भावेण सच्चु ।
ससारिउ पुणु दो भेउ दिट्ठु, तस थावर भेए सो विसुद्धु ।
चउ भेयहि तहिं तस फुडु हवंति, पचहि भेयहि थावर सहति ।
अण्ण वि थावर दो भेय उत्त, सुह मइ वायर रूवेण जुत्त ।
तस थावर पुणु दो भेय हुंति, पज्जाए दर भावेण थति ।

घत्ता—पढमउ तस वण्णणु, भेय णिवण्णणु, चउगइ जाणिहिं वज्जरइ ।
भवियह मणि थक्कइ, मोहणि लुक्कइ, जिणवरु ससयु[7] ससरइ ॥1॥

(2)

वे इ दिय पमुहा समुम[8] उत्त, ते फास रसण इंदियहि जुत्त ।
ते इदिय घाणें सहु हवंति, चउरिंदिय णयणइ परिगणति[9] ।

---

1 = अमृत
2 = मेघ
3 = मागधी भाषा = प्राकृत
4 = श्वासोच्छ्वासरहित वाणी
5 = युगपत्
6 = उत्पादव्यय ध्रोव्य युक्त सत् ।
7 ख ससउ
8 ख तसए
9 ख घ परिगहति

पचिंदिय सवणहिँ सहवु लिंति, ताह वि केइ वि सण्णी[1] हवंति ।
जोयण बारह हुइ सख मगु, कोसत्तऊ खज्जूरय पसगु ।
भमरहो जोयणु इक्कु[2] जि पमाणु, जोयण सहासु मच्छहु पमाणु ।
इहु तसहो उक्किट्ठउ काय माणु, जेहउ भासइ केवलु सणाणु ।
वियलिंदिय वियडिय जोणि हुंति, गब्भुभव सपुड वियडि थंति ।
एयह अण्णु वि सीयरणह[3] जोणि, अण्णु वि तह मिस्सा कम्म खोणि ।
वेइंदिय बारह वरिस आउ, उक्किट्ठउ फुडु जीविय सहाउ ।
णव चालीस दिवस फुडु तिक्खह, उत्तउ छम्मासइ चउ अक्खइ ।
मच्छह पुव्वकोडी जीवेव्वउ, अवरह अवरु अवरु णाइव्वउ ।

घत्ता--पक्खिहिं ठिउ आउसु, इहु परमाउसु, वरिस सहस्स बाहत्तरि ।
सप्पाहु सुणिज्जहु, मति म किज्जहु, तहिं चालीस दु उत्तरि ।।2।।

(3)

बहु आयारिहिं इह होइ फासु, जव णाणु व ठिउ सवणहं पयासु ।
पोमहु[4] पत्तु व जीहा विहाइ, घाणु जि अइवतहु[5] फुल्लुणाइ[6] ।
वट्टलिय मसूरिय[7] पडिमु चक्खु, इय पडिमइ[8] भासइ विस्स चक्खु ।
अप्पुट्ठउ विदइ णयणरूउ, सवणु जि पुट्ठउ सद्दहु[9] सरूउ ।
पुट्ठापुट्ठउ सेसा[10] मुणंति, इय इंदिय गहणइ जिण भणंति ।
फासहो गंधहो रसहु णिरुत्तउ, णव-णव[11] जोयण विसउ पउत्तउ ।
सवणहो[12] जोयण बारह दिट्ठउ, सत्त चाल सहसइ णयणिट्ठउ ।
अण्णु जि जोयण दुसय दिसट्ठउ, चक्कवट्टि लोयण[13] परिमट्ठउ ।

1 क. सन्नी
2 घ = एक्कु
3 ख घ सीउण्हु
4 ख पोमहु
5 = अतिमुक्त पुष्पनाली तिल्ल फुल्लाकार,
6 ख फुल्लणाइ
7 ख मसूरी
8 = आकाराश्चक्षुषाम्
9 क सद्दउ, ख सद्दहो
10 = शरीर नाशाजिह्वा
11 ग णउ णउ
12 = विषय
13 = नेत्रविषय

मणु पुणु दो भेएहिं पउत्तउ,	दव्व भाय भेरण्ण गिरुत्तउ ।
दव्व चित्तु हिययम्मि वइट्टउ,	अट्ठवत्त कमलुव्व विसिट्ठउ ।
भाउ[1] जि पुणु सो अप्पयहो भाउ,	को वण्णरण सक्कइ तहो सहाउ ।
ईसीसि पयहु जो अप्पदेसु,	सो इंदिय भेय हुअ असेसु ।

घत्ता—जे तिहुयणि णिवसहिं, कम्मे विलसहिं, ते पर्चिदिय णिरु भरणइ ।
सुरणर णारइयह, णिय भवि तवियह, ताह विठाणइ सगणइ ।।3।।

(4)

पढमे इह वण्णइ णारय ठाणु,	ज रज्जु सत्त ठिउ[2] उट्ठमाणु ।
णारउ पढमु[3] तेरह पत्थडयहि,	उवरि उवरि परिमडिय थडयहिं[4] ।
पढमइ पत्थडि णारयइ हवति,	निसि दिसि एउरण पण्णास थति ।
विदिसि-विदिसि अट्ठय चालीसहि,	सेणीबद्धहिं ई दिय[5] दीसहि ।
हिट्ठिम पत्थडयह सेणिबद्ध,	एक्केक्की[6] हीणा ते णिरुद्ध ।
दिमि विदि[7] सतरि जे पुर हवति,	ते कुसुममह पयरत बहलस ।
सक्कर धर इ दय एयारह,	वालुअ धर नव ट्ठिय बुहसारह ।
पकप्पहि इ द जि सत्त[8] ठिय,	धूमप्पहि ते पच परिट्ठिय ।
तह पहि पच्छड तिण्ण जि भणति,	तम तम पहि एक्कु जि जिरण कहति ।
रयणप्पह[9] इ दय पुर माणउ,	दिट्ठउ माणुस रिक्त पमाणउ
सत्तम णारय मज्झि पुर वित्थरु,	जोयण लक्ख पमाणु सुदुद्धरु ।

घत्ता—रयण थहु तीसहिं, पुणु पणवीसहिं, तइयउ पणरहिं परियरिउ ।
जम्मरण विललक्खह, दुक्खसमिक्खह, दहेहिं चउ छउ परिसरयउ ।4।

1 = भावमन ;	2 ग जिउढ०
3 = प्रथम नरके	4 ग थडयेहि
5 ग इ दय	6 घ एक्केक्कें
7 = दिग्विदिग् मध्ये पुष्प प्रकीर्णका सति,	8 ग 3,
9 रत्नप्रभ मध्ये प्रमाण योजन 4500000	

(5)

पचमु तिहिं लक्खेहिं सु दिट्ठउ[1], पचऊणए लक्खिवक्कें छट्ठउ[2] ।
अइ बहु दुक्ख कोडि सतत्ती, सत्तमि पचहिं विलहिं णिरुत्ती ।
सत्तहिं [3]णरयह विलगणु घुट्ठउ, पढम णरय पढमिंदय जीविउ ।
वरिस सहास दसिहिं उद्दीविउ, परमाउसु तित्थु जिणु भासइ ।
गणियहिं वरिसहिं णउअ[4] सहासहिं, बीयइ इ दइ णव लक्खिहिं णिउ[5] ।
वरिसहिं आउ जहण्णु पगिट्ठिउ, णउ अहिं लक्खहिं तित्थु व किट्ठउ ।
तइ अइ एउ जहण्णु सुदिट्ठउ, ...
आउ असखहु बहु दुहगव्वह, उक्किट्ठ उ पुणु कोडी पुव्वह ।
गाढु-गाढु बहु दुक्खह भरियह, एउ जहण्णउ जीविउ तुरियइ ।
तहिं[6] परमाउ सुएहिं णिरुत्तउ, दहमु अ सुसायरहो पउत्तउ ।
तेरह मइ ठिउ सायरु जायहि, वट्टइ अहिउ अहिउ इय तावहिं ।
सायर सत्तय ठिय वालुप्पहि[7], तिण्णि जि सायर तहिं[8] सक्कर पहिं ।
छट्ठइ सत्तमि अहिउ पउवमि[9], दह सत्तारस तुरियइ पचमि ।
ए परमाउस भणिय णि रुत्ता, वावीसहि तेंतीसहिं जुत्ता ।

घत्ता—पढमइ ज दिट्ठउ आउ उक्किट्ठउ, ट्ठिठल्लि जहण्णउ ।
इय कमिठिउ सव्वह, अइ दुहदव्वह, णरयह आउपत्तउ ।।5।।

1 घ ०दिट्ठी
2 घ छट्ठी,
3 ग सत्तहिं
4 ख घ णवइ, ग णवय
5 क तिच्छु किकट्ठउ
6 ग तेहि
7 तह
8 ख घ बालुयपहिं
9 क पउवमि, ख घ पववमि,

(6)

पढमुइ इदइ देहु वि तिहुत्थु, उदए उप्पज्जइ सुट्ठु[1] दुत्थु ।
तहिं ग्रहिउ ग्रहिउ इय देसु होइ, तिरह[2] मइ घणुहुइ सत्त जोइ ।
तहण्हत्थ[5] तिणि ग्रगुलइ छप्पि, परमेसरु जपइ फुड विग्रप्पि ।
तह विउणु विउणु[6] तल मेयणीसु, उदएण ग्रमु हुइ दुहधणीसु ।
तह सत्तमि घणुहइ सयइ पच, तु गेण्ण हु ति पावह पवच ।
ग्यणप्पहि हुइ विवरीउ णाणु, चउकोस खित्त जाणण पमाणु ।
ग्रद्ध कोसु इय राह हीणु, जह कोसुइक्कु सत्तमइ लीणु ।
णारउ मरेवि पचक्खु जाइ, तिरियचु हवइ माणुसउ थाइ ।
सण्णी पज्जत्तउ कम्मखोणि[7], णहु वियलिंदिय[8] णहु देव जोणि[9] ।
सत्तम पुढविहि पुणु पसु जि होइ, णहु मणुयत्तणि सघडइ कोइ ।
णारइउ ण हरि बल चक्कि जम्मु, णरयहो ग्राइउ पावइ ग्रहम्मु[10] ।
तुरियहो णरयहु णउ[11] तित्थु णाहु, उप्पज्जइ बहु ग्रइसइ मणाहु ।
पचम णरयहो णहु चरम देहु, छट्ठउ णहु मुणि सजमहो गेहु ।
सावउ[12] सत्तमयहो णेय दिट्ठु, तिरियचु घोर कम्मेण दुट्ठ ।

घत्ता—इय सत्तह णरयह, वहु दुहयरयह, जीउ वि मरि[13] उप्पज्जइ ।
ग्रइ पावइ[14] माणइ, ग्रप्पु ण याणइ, घोरइ कम्मइ ग्रज्जइ ।। 6 ।।

1 घ उदय (ग्रहस्तेन दीर्घा), 2 ग सुख
3 = ग्रतिशयेन दुःखी 4 ख ग तेरह,
5 ख ते हेत्थ, घ ते हुच्छ
6 क. विवणु विवणु, 7 = कर्मभूमे सज्ञी पर्याप्तो भवति,
8. नारकी मृत्वा विकलत्रये 9. = देवो न भवति,
10. = ग्रधर्म, 11 क ण
12 = व्रतधारीन् 13. = मृत्वा
14. = ग्रतिपापानि मानयति ।

(7)

सण्णा बज्जिउ[1] पढमिल्लि जाइ, धरगोहा[2] पमुह बीइ थाइ ।
पक्खि तइअइ[3] आइ उप्पज्जइ, सप्पु चउत्थइ णरयहो वज्जइ ।
पंचमि केसरि णारिउ छट्ठइ, सत्तमि तिमि णर अइदुह कट्ठइ ।
पढमिल्लि णरइ हुइ अट्ठवार, णियमेण णिरंतर दुह पयार ।
इक्कक्कउ ण[4] इयरेसु जाणि, जह दुण्णिवार सत्तमइ णाणि ।
पढम तरु चउवीस मुहुत्तु इ[6], बीयइ दिवसइ सत्त णिरुत्तइ ।
तइयइ पक्खु जि मासु चउत्थइ, पचमि मास दुण्णि चउ छट्ठइ ।
अद्ध वरिसु सत्तमि दुह पुट्ठइ, ... ।
केवल णाणें जेम सयासिउ, इय णरयहं जणाह तरु भासिउ ।
तिय णरयहिं छह सहणणि आइ, तल णरय जुअलि पंचेहिं[7] भाइ ।
छट्ठइ चउ संहणणेहिं जुत्तु, सत्तमि आइउ संहणणि पत्तु ।
णारइ यहु णहु संहणणु कोइ, संठाणु हुंडु पुणु तह वि होइ ।
सव्वह णारइयह सड लिंगु, सपज्जइ बहु पीडा पसगु ।

घत्ता—दुहु पचपयारहु, पीडा सारउ, अहिड अहिड णरयह हवइ ।
अगि ताव पहावें, कम्म सहावें, धम्मि[8] विणु सो तहिं हवइ ।। 9 ।।

(8)

चउणरय भूमि अइ तावतत्त, तहं तिहि असिहिं पचमि पलित्त ।
पचम सुअणु छट्ठी सत्तमि, तह सीयत्तणु कहहउं वण्णमि ।

1 = असज्ञी,
2. = किरकंटिय विश्वभरादि
3 ग तइयइ घ तइए
4. क. ण
5 ख पढमि,
6 = प्रथम भूमौ चतुर्विशति मुहुर्त नारकाणामुत्पत्ति र्नास्ति
7 पचमहिं
8. ख घ. धम्मे ।

णरइयह असुईय जम्म ठाणु[1], हिट्ठामुह[2] किय भच्छय समाणु ।
तिमिर पूइ कटेहिं सुसड[3], तेसु हवंति जीव कम्मु भड[4] ।
किण्ह णील कापोय सुलेसिय[5], वद्ध घोर कम्मेण जि पेसिय ।
एय मुहुत्ति[6] परिपुण्ण देह, हिट्ठामुह णिवडइ पाव गेह ।
असि पत्ति खित्ति णिवड तितिच्छु[7], वहु पहरण लक्खइ तिक्ख जिच्छु[8] ।
अइ सुइ तिक्खइ तहिं तिणाइ[9], आइस गुक्खरु[10] सक्कर घणाइ ।
पूई किमि पूरिय जलणिहाण, अह ताविय तवय रसहु ठाण ।
सव्वु वि तहिं दीसइ कूरसत्तु, सव्वु वि दीसइ मारणह पत्तु ।
ज भक्खइ त गरल समाणउ[11], ज सुघइ, त फोडइ घाणउ ।
ज आयण्णइ त कण्ण सूल, ज करि फसइ त दुक्ख मूलु ।
ज पिक्खइ त त हणइ चक्कु, सव्वरय वि तहिं सभवइ दुक्खु ।

घत्ता—इय[12] लक्खणु कित्तहु, असुह णिमित्तहु सखेवेण पउत्तउ ।
वित्थरि पुणु वण्णण, णिय मणि मण्णण, जिणवरु देव पउत्तउ ।। 8 ।।

(9)

ताह सरीर दुक्खु जइ वण्णइ, सुय देविवि अप्पउ जइ मण्णइ ।
पच कोडि अडसट्ठिय लक्खइ, सहसइ णव णव दीयसु सखइ ।
पचसयइ चउरासी अहियइ, इक्क अगि इय मदइ[13] कहियइ ।
अगुलु अगुलु बहु गय[14] विद्धउ, णार पिडु एम णिरु सिद्धउ ।

9 ग ठाणु, 2. = अधोमुखी भावुडी समाना,
3 = सुसघट्टसयुक्ता, 4 = कर्मोद्भटा,
5 क क कायो अ सुसेविय 6. ख घ. मुहुत्ते,
7 ग तितेच्छु, 8 ख. घ. जेच्छु,
9 = नरके तीक्ष्णसूची समानतृणानि विद्यन्ते,
10 =लोहमय गोरव, 11 = विषममान भक्ष्यवस्तु,
12 ख इय, 13 =व्याधि,
14 = व्याधि ।

खणि खणि ताहं ण वल्लइं दुक्खइं, णिमि सुवि णहु[1] लहुति तहिं सुक्खइं ।
अण्णु वि माणस दुमिलहिं तप्पहिं[2], चिरभव दुक्खइ[3] समणि वियप्पहिं ।
हउ हरि पवि हरि हुउ चक्कवट्टि, हुउं रायहिं वढिउ रायवट्टि[4] ।
भू खेवइ[5] तहिं मइ जणिय राय, एवहिं विसहमि मुग्गरह घाय ।
अण्णु वि असुरिहिं पुणु चोइज्जइ, चिर भव वेरइ सभारिज्जइ ।
तुहु कारणि सगरि मारिउ, सीहें[6] गयवरु तुहुं संहारिउ ।
बंधिव तुहु हरिणुल्लइ खद्धउ, तलवरेण तुहु तक्करु बद्धउ ।
इय पमुहह वेरइ सभारिय, अणिलें जलणु व ते सचारिय ।

घत्ता—लई पिंगल केसउ, भल मसि[7] वेसउ, दीह दतु भीसावणउ ।
करि किय दिढ पहरणु, तहिं मग्गिय रणु धावइ हणण रोसावणउ ।। 9 ।।

(10)

बहु पहरणि चूरि वि कियउ चुण्णु, पुणु ज त मज्झि बहूण पवण्णु ।
पुणु खित्तउ तत्तय तिल्ल मज्झि, पुणु तिव्व खार कुंडयहु मुज्झि[8] ।
पुणु पुणु सो खणि हुइ पुण्णु देहु, बावहिं[9] णारय गय लेहु लेहु ।
पमणइ [10] धुव भावइ मसगासु, चम्मुक्केलि[11] वि भुहिं चिवहि तासु ।
तं वउ पावहि महु महु भणेवि, अबाल देहि उंवर[12] गलें वि ।
लोहहु पुत्तलि ताविवि सुतत्त, आलिंगावहिं पिय परकलत्त ।
इह रूअ विक्खि तुहु रत्तणाइ, पीणत्थणि पिहुलणिय व भाइ ।

घत्ता—इय पंच पयारउ, बहु दुहसारउ, णरयहु को किर वण्णइ ।
ज मणि चिंततउ णिउणु गणतउ, अप्पउ दुहि ठिउ मण्णइ ।। 10 ।।

1. ख. घ तहिं, 2. क. ग. तप्पइ,
3. ब. सुक्खइ, 4. = राजपट्टे,
5 = मया भूक्षेपेन राजा जिता विद्याधर भूमि च राजिता
6. ख. सीहिं, 7. ख. सभि,
8 ग लज्झि, 9. ख. बावहिं
10 ख अंगदीव, 11. = 1600,
12. = वज्रधातकी द्वीपे

(11)

सखेवे उत्तउ णरयचारु, एवहिं भासइ भवणह वियारु।
ते भवणवासि सुरदह पयार, खरभाइ वसहिं णव भेयसार।
घर पक बहुलि असुराह ठाणु, ताह अक्खमि जीविय देह माणु।
असुरह जीविउ सायरु णिरुत्तु, णायह[1] पल्लोवम तिण्णि वुत्तु।
गरुडह आढाइय[2] पल्ल आउ, दीवह पल्लह दुइ ठिउ पराउ।
सेसह सह जाइहिं सद्ध पल्लु[3], णाहु चुक्कइ जिणवर णाह वुल्लु।
पणवीस धणुह असुराह देहु सेसह दह[4] धणु इह धाम गेहु।
कसिण असुर अहिड अहिं सुसेय[5], गडुरुच्छणि य[6] दिसि[7] कुमरसुपीय।
विज्जु अग्गि दीवय हरि वण्णा, वायकुमार सुसक्कर वण्णा।
पक्खिक्कें असुरा ऊस सति, वरिसह सहसें णिय असणु लिति।
अहि गरुड दीव तेरह मुहुत्त, सट्टइ[8] अच्छिवि ऊस सण पत्त।
तेरहि दिवसिहिं सट्टेहि[9] मुत्ति, इय भासिय भोयण सास जुत्ति।

घत्ता—अवरह तिहिं वारिहिं, सुद्ध पयारिहिं, पाणायामु मुहुत्तिहिं।
बारहिं दिण माणिहिं, समय पमाणिहिं भोयण होइ
उपत्तिहिं ॥ 11 ॥

(12)

अतिम तिहिं जाइहिं होइ सासु, माहुत्त सत्त रुट्ठहि पयासु।
दिण सत्तिहिं सट्ठहिं असणचित, मणइच्छा भोयणि घुम्र समत्त।

1 = सुवर्ण द्वीपे, 2 ख महो उरय,
3 क भू, 4 ग पिसापय,
5. = व्यंतराणा दिसि पवपुराणि प्रत्येक जम्बूद्वीप प्रमाणानि,
6 ग कख 7 ख देस,
8 ख सढइ, 9 साट्टइहिं

असुरह उक्किट्ठउ अवहिंणाणु, गय संख कोडि जोयण पमाणु ।
सेसस णवहिं सम वितराह, सहसाइ असखइ णाणु ताहं ।
असुरह मुवणइ चउसट्ठिलक्ख, णायह चउरासी तेसु सख ।
बाहत्तरि लक्खइ गरुड गेह, बहु वण्ण रयण सघडिय देह ।
अग्गिम छह जाइहि मुवण[1] हुति, छाहत्तरि[2] लक्खइ जिण कहंति ।
वायह गेहइ छाणवइ लक्ख, णिय णिय वण्हि जाणिय परिक्ख
पडि भुवणि भुवणि जिण बिंबु दिट्ठु, बहु भुवण मउड पय घट्ठु वीठु[3] ।

घत्ता—वण्णिय भुवणामर, मिल्लिय वित्थर, ले सुदंसि पुहवि तलि ।
इह वण्णमि वितर, महि बहु ठिय घर, अणु सठिय जे उवहि
जलि ॥ 12 ।

(13)

भेयहि अट्ठहि वितर हवंति, दो भेय पक बहुलमि ठंति ।
सेसह छह भेयह पवरदीवि[4], ठिदि णिच्छल रवि ससि कय पईव ।
चउदह सहसइ भूयाह वास, रक्खह सोलह[5] विप्फुरिय भास ।
अजणि किदीवि किण्णर वसंति, किं पुरिस वज्जधादकि[6] सहंति ।
सोवण्णि[7] महोरग[8] वासुलिति,
मणिसिलकि वसहि गधव्व णाह, वज्ज वि जक्खाहि व सिरि सणाह ।
रजयम्मि दीवि ठिय रक्खसिंद, हिंगुलकि भूय[9] सामियह विंद ।
हरिदालि व सहिं ते बहु पिसाय,[10] अवरुप्परु सिरि दसण कसाय ।
चउ[11] दिसि एयह सठाण हुति, दिसि-दिसि पुर पच जि जिण कहति ।

1. क मुअण०
2. क बाहत्तरि
3 =भवनवासिदेवानां मुकुटै भ्रंष्टपादा
4 ख. अंगदीव,
5. = 1600
6. वजघातकीद्वीपे ।
7. सुवर्ण द्वीपे
8 ख महो उरय,
9. ख देस,
10. ग' पिसायव,
11 =व्यतराणा दिशि दिशि पन्च पुराणि प्रत्येक जबूद्वीप प्रमाणानि

ते सव्वे जंबूदीवमाण, जाणिय जिणिंद कहियइ पमाण ।
जे प्रवर पवर वितर असख, बहु दीव जलहिं सवास कख[1] ।
सव्व वि वित वह[2] घणुह तु ग, प्रण्णु वि किण्णर ठिय पीय[3] प्रग ।
किंपुरुसरक्ख[4] ते धवल हुति, सेसा वितर सामल सहति ।
परमि[5] पल्लु जि वितर जियति, वासह दह सह मइ प्रहमु[6] ठति ।

घत्ता—इय कहियइ वितर, पुहवि णिरतर, एवहिं जोइस गणु कहमि ।
जे ठियइ प्रसखइ गयण समिक्खइ, विच्छुरु तुच्छु वि नहु
बहमि ।। 13 ।।

(14)

चदाइय[7] जोइस पण पयार, रवि रिक्ख पइण्णिहिं[8] गहहिं सार ।
दो दो ससि रवि पढमिल्लि गणि, चउ चउ लवणोवहि जलि पमाणि ।
वारह वारह धादकि[9] हवति, कालोयहि[10] बायालीस थति ।
पुक्करि वाहत्तरि ते भमति, तहो प्रग्गइ तेप्रर प्रहिय हुति ।
पुक्कर पर घटा घिर हवति, इय प्रहिप्र प्रहिप्र प्रग्गइ हवति ।
इक्कहु[11] चदहु परिवारु[12] उत्तु, प्रउसीदो गह सखा णिरुत्त ।
प्रट्ठावीस जि रक्खइ हवति, छासट्ठि[13] सहस्सइ तहिं गणति ।
णव सय हत्तरि इय पउत्त, वारह[14] कोडा कोडिउ णिरुत्त ।
दीहत्तणि वउ[15] धणु होइ सत्त, जोइस सव्वह माणइ पउत्त ।

घत्ता—चदाह विमाणइ, जोयण माणइ, कित्तु णइ ते जिण गणिय ।
को सत्तउ प्रहियउ, तह जिण कहियउ, सव्वह सूरह
भणिय ।। 14 ।।

1. ज कख
2. ख देसं
3 = पीतशरीर वर्णा
4. कि पुरुषराक्षसधवला,
5 ग परमे,
6 = जघन्य,
7. = चन्द्रादिज्योतिष्क पञ्च प्रकारा,
8 क. पयारिणहिं, ख पयण्णिहिं,
9. ग धादयिह,
10 ग ०प्रहि,
11. ग. इक्कहु,
12. क परिवार,
13 = 669750000000000000
14. ग. तारह,
15. = शरीर

(15)

को सिक्कु होइ सुक्कहो विमाणु, पाउणु कोसु जीवहो पमाणु ।
बुध[1] प्रारहो[1] मदहो प्रद्ध कोसु, तम रिट्ठहु[1] ससिधर समसिसेसु ।
को सहु तुरियउ भाउ लहु तारहु, प्रद्ध कोसु प्रहियउ ठिउ प्रवरहु ।
चदहो जीविउ पल्लु जि सलक्खु, सूरह पल्लु जि सहसें समिक्खु ।
सुक्कहु पल्लु सएण पउत्तउ, जीवहो पल्लु जि एक्कु णिरुत्तउ ।
बहु मदहो प्रारहु पल्लु प्रद्धु, तारह तुरियउ पल्ल सुसिद्धु ।
प्रण्णु वि जोइसह जहण्णु प्राउ, ठिउ पल्लोवम प्रट्ठ मउ भाउ ।
ज जोइस पभणिउ परम प्राउ, त ताहु तिथउ[2] प्रद्धद्ध भाउ ।
इगवीसे पारस[3] सय पमाण, जोयण मिल्लिवि प्रायास ठाण ।
मेरु ह जोयस गण सचरति, ते एण[4] सहावें णहि भमति ।

घत्ता—चउ सुर णिक्कायह, लच्छि सरायह, जे तिहुवणि[5] मणि गेह ठिय ।
ते णिरुवम महिमह, जिणवर पडिमह, सुव्ववठाण परिट्ठिय ॥ 15 ॥

(16)

पचासी लक्खइ[6] सुरविमाण, तिहिं[7] सहसिउ[8] णइ तेय ठाण ।
प्रण्णु वि विमाण ते वीस तित्थु, जिणणाहु भणइ केवल कयत्थु ।
बारह कप्पिहिं बारह सुरिंद, तल चउकप्पहिं चउभेय रु द ।
प्रतरि प्रट्ठिहिं चउ इ द हु ति, उवरिम चउक्कि चउ सलवति ।
नह उप्परि सव्व वि इ दलोउ[9], णहु तहिं कुवि किकर बहु विवेउ ।
बत्तीस[10] लक्ख सोहमि गेह, प्रडवीस वीय सग्गहो णिरेह ।
साणकुमारि बारह वि हु ति, प्रट्ठेव लक्ख माहिंद थु ति ।
बभहो वभुत्तरि गेह लक्ख, जुयलि[11] वि चउरो जाणिय परिक्ख ।

1. = बृहस्पति, मगल, राहु
2. ग. तिया, घ तियाहु ठिउ प्रद्ध भाउ (= स्त्रीणां)
3 क. यारहसे,
4 ख. णिय एण
5. क. ०प्रणि,
6. = 8497023
7. क. तहिं
8 सहसेउ णय. ख. सेहसई
9. = ब्रह्मिन्द्र लोक:
10. 3200000, 2800000, 1200000, 800000, 400000, 50000, 6000, 700, 111, 107, 91, 9, 5,
11. ग जुप्रलि

लतविका पिट्ठहो जे विमाणु, पंचास सहस ते णिरु पमाणु ।
सुक्कहो जुबलुल्लइ वीस दुण्णि, सहसइं वेमाणहं सारवण्णि[1] ।
सायारि सहस्सारिवि णिरुत्त, सहसहिं छहिं वेमाणय पउत्त ।
प्राणदि पाणदि[2] आरणि अच्चुवि सव्वहं सत्तसं सयाइं सुसच्च वि ।
पढमहो गेवेयहु पढम तिक्कि, एयारह उत्तर सउ विलिक्कि ।
मज्झिल्लि तिविक सउ सत्त जुत्तु, एयाणवदी अतिमे पउत्तु ।
णव एव णवाहं अणुदिसाइं, पचहं पचेव अणुत्तराहं ।
विहु सग्गहं तु गत्तणि विमाण । पढमहं छहं सय जोयण पमाण ।
वीयहं दुहं पणसय जोयणाइं, तइयहं दुहं चउसइहं कयाइं ।
तुरियहं दुहं चउसय तुग हुति । पचमि दुहुं ते अड्डुट्ठ पति ।
छट्ठहं दुहं तिण्णि सयाइं दिट्ठ, उवरिम चउक्कि अड्ढाइ इट्ठ ।
तुगत्तणु गेहहं पढम तिक्कि दोसयजोयण गेहहं वियक्कि ।
वीयहो तइ यहु तिक्कहो पउत्त, सउ सढु एक्कु सउ हुउ णिरुत्तु ।
पचासण वाहं अणुद्दिसाहं[3], पणवीस जि होइ अणुत्तराहं ।

घत्ता—णिय णिय विमाणहो, कहिय पमाणहो, जोवयदड परिट्ठियउ ।
नहु सीमाणाणउ, अवहि पमाणउ, सव्वहं ताहं पहिट्ठियउ । ।16॥

(17)

पढमहं दो कप्पहं अवहिणाणु, तलि रयणप्पहं सीमा पमाणु ।
उवरि दुकप्पहं सक्करहिं जाम, विक्किरिया सत्ति वि फुरइ ताम ।
उवरिम चउ सग्गहं फुरइ णाणु, वालुय[4] पुहवी सीमा समाणु ।
उवरिल्ल[5] चउक्कहं त पउत्ति, पकप्पहं पुढवी सीम जुत्ति ।
अतिल्ल सग्ग जे चउ हवति, धूमप्पहं जामइ ते मुणति ।
गेवेइय तम पुढवी उवति, उरिवम सुरतल सव्वु वि मुणति ।
जे बहु अवहि किर होइ जाहं, विक्किरिय वि फुडु ते वहु ताहं ।

1 ग ०मण्णि, 2 ख आणाइ पाणइ,
3 ग ०दिसाहं 3 क. वीलुय,
5 क. उवरि

जणणंतर तहं मरणंतराइ, दो पढम कप्पि सत्त जि दिणाइं ।
उवरि दोह वि ठिउ पक्खु एक्कु, उक्किट्ठउ अतरु एहु थक्कु ।
उवरि चउक्कि मासिक्कु दिट्ठु, उप्परि चउक्कि दो मासु इट्ठु ।
तहो उप्परि चउमासउ चउक्कि, सेसह छहमास तरु वितक्कि ।
सोहम्मी साणइ हत्थ सत्त, दु गत्तणि सठिय सुरणिरुत्त ।

घत्ता—वे उवरि समग्गहं, विहुव समग्गह[1], छह जि हत्थ परिसठिय ।
पण ठिय कर चउ तुरहु, चउकर अवरहं, सग्गह माण परिट्ठिय ।।17।।

(18)

अग्गिम दुहइय आहुट्ठ पाणि, उवरिम जुवलुल्लइ तीणि जाणि ।
तिहु तिक्किउ हत्थह अद्ध अद्ध, तह अवरह करु एक्कु जि पसिद्ध ।
दो सत्त दह जि चउदह णिरुत्त, सायर चउ जुयलिहिं आउउत्त ।
चउ जुअलिहिं दो दो विद्धिताम, सग्गह सायर वावीस जाम ।
इक्किक्कु चडइ उवरिम णवाह, वत्तीस णवाह अणु दिसाहं ।
तित्तीस जे पणह अणुत्तराह, सकहियइ णिरुवम सुहयराह[2] ।
पण पल्ल आउ[3] णिरु अत्थराह, सो हुम्मि सग्गि रइ रस धराह ।
दो दो पल्लइ वट्टु ति ताम, ठिय सत्तवीस सहसारि जाम ।
उवरिम चउक्कि सत्तेहिं विद्धि, जहिं अच्चुइ पचावण्ण सिद्धि ।
विहिंमग्गिहिं अच्छर जम्मु लिति, उवरिम सग्गेहिं णिय देव णिति ।
दो कप्पह पढमह काय चारु, उवरि दुहु सिद्धउ फरस वारु ।
छवें पविचारउ चउ सग्गिह, सद्दें उवरिम चउ सुरवम्भह ।
मण पविचार उवरि चउक्कह, सेसह णट्ठ कुवि सुक्ख गुरुक्कह ।

घत्ता—ज सुहु अहमिंदह, सुहमण रु दह, पविचारेण विवज्जियउ ।
तं णहु सुरणाहहु, तियगण णाहह, असु वि पुण्ण समज्जियउ ।।18।।

1. क समयहं 2. = निर्मलश्च नघरै
3 = सौधर्मदेवी, आयुपल्य 5/7/9/11/13/14/17/19/21/23 25/
27/34/41/48/55 अच्युते ।
4. क. सग्गहं

(19)

सखाविणु दीव समुद्द हुंति, ते विउणए वलएण[1] थंति ।
अवूरुक्ख किउदीउ तित्थु, जोयण लक्खिक्कि वित्थारु जित्तु ।
सुद्द सणु तसु मज्झत्थु भाइ, दिवखरण कणय मउ थमु णाइ ।
तुहु[2] दक्खिण सठिउ भरह खित्तु, एरावउ उत्तर ठाण पत्तु ।
जोयण सय पचहिं भरह माणु, तहं छहवीसहिं छ कलाइ ठाणु ।
भरहहु हिमगिरि वित्थर विउणउ जोयण सय तु गत्त पहाणउ ।
हेमवतु तहु विउणउ वित्थरि, अत्थि खित्तु[3] विउणयरि[4] सथरि ।
मह हिमवतु तहो[5] विउणउ गिरिवरु, हरि खित्तु वि तहो विउ णिय वित्थरु ।
णिरवढ महीरहु तहु विउणउ[6] ठिउ, तह विउणउं रुम्मउ विदेहु परिट्ठिउ ।
णीलु वि हुउ तह णिरवघहो समाणु, रुक्कु वि[7] सुखित्तु ठिउ हरि पमाणु ।
रुकमि वि गिरिमह हिमवणु विसालु, हेरण्णु[8] हेमवंतु वि रमालु ।
सिरवरि वि हिमसेलहो धणु सरेह, एइावउ भरहहो कमु धरेइ ।

घत्ता—खित्त चउगुणु, खित्तु तह सेलाह वि सेलु ठिउ ।
दीहत्तणु सव्वहु दो जलरासिहिं सीम किउ ॥19॥

(20)

हिमगिरि मज्झइ पोमु महा दहु[9], जोयण सय पंच जि वित्थरु तहो ।
जोयण सहसु एक्कु दीहत्तणि, दह जोयणि संठिउ उट्ठत्तणि ।
जोयणु पोमु कोसु तह कण्णिय, तहिं सिरिदेवि पल्ल ठिदि वण्णिय ।
महपोमहो तं विउ णउ सव्वु वि, तिम्मि छिहिं महु[10] पुज्जइ पुव्वु वि ।
उत्तर पोम वि इय कमि हवति, हरि धिदि आइय देविए वसति ।
पहिलउ पव्वउ हुइ हेमवण्णु, बीयउ चदुज्जलु रुइर वण्णु ।

---

1 ग वलएव, क. वलयेण
2. क तहो
3. ख. खेत्तु,
4. ख. पयडिय सिरि,
5. ग तहा,
6. क. विरणउ,
7. ग रुम्मउ,
8. ग हेरणु,
9. क. महदेहु
10. महापद्मात्, द्विगुणविस्तारादिति ।

तइयउ पुणु पउमहु प्रणुहरेइ, तुरियउ वेरुलियउ विष्फुरेइ ।
पंचमु धवलउ पीलउ छट्ठउ, कुल पव्वहं वण्णु इहु सिट्ठउ ।
गंगा सिंधु एर्हीहि ज परियरु, विउणु[1] विउणु त लइयहु वित्थरु ।
पुव्वविदेहिं सोलह खेत्तइ[2], तित्तिय[3] अवर विदेहि णिरुत्तइ ।
खित्ति खित्ति[4] वेयट्ठु पहाणउं, सव्वह खेत्तह भरहु पमाणउ ।
धादिगि[5] खडिवि दो मेरु हुति, पुक्कर अद्धिवि तहं दोहुवति ।
मेरु मेरु खित्तइं पडिवद्धइं, चउतीसइं सत्तासु समिद्धइं ।

घत्ता—जे पंच वि मंदर, सुरमण सुदर, तहं बहु सुक्ख समिद्धिय ।
छह छह इक्किक्किहु, महिमगुरुक्कहु, भोयहं भूमि सुसिद्धिय ॥20॥

(21)

तह छण्णवइ कुभोय महीयल, लवणकाल जलणिहि उरि पवि उल ।
कुलगिरि महणइ जलणिहि पवेसि, ठिय भोय धरायल दीवि देसि ।
तहिं सक्कुलिकण्णा सूपकण्ण, अइलविय कण्णा पिहुल कण्ण ।
सूयर मुह हरि मुह पक्खि मुह, सेरह मुह गोमुह वग्घमुह ।
हुहु भोयभूमि अलहय हवति, पल्लोवम जीविउ भवण हुंति ।
जे पुणु तीस सुभोय महीयल, कुलपव्वय अतरि ते अविचल ।
ता हवि उत्तिम मज्झिम जहण्ण, तहि रत्त धवल कणयाह वण्ण ।
बहु भूसण भूसिय सिरिरवण्ण, उपज्जहिं माणुस पुण्ण पुण्ण ।
दह[7] पयार तहिं कप्प महीरुह, दिंति भोय ते मग्गहिं जहि जहि[6] ।
इक्कु दुण्णि तिय पल्लहिं जीवहिं, पच्छा कप्पवास सिरि सेवहिं ।
जे पुणु पण दह[7] कम्मधरायल, अज्ज मिच्छलोयहि ते सकुल ।
जे धम्मा धम्मह णहु मुणंति, ते बहु अभेव मिच्छह[8] हवंति ।

1. क विणुउ विणुउ, 2. ख. घ खेइं,
3. ख घ. तेत्तिय, 4. ख. घ. खेत्ति खेत्ति,
5. ख. धावइ, 6. क. जह जहं
7. ख. दस
8. ख. मिच्छइ

अज्ज लोय दो भेयहिं पउत्त, इट्ठिवि वज्जिय इट्ठियहिं जुत्त ।
ते सट्ठि सजाया पमुह लोय, ते इट्ठिवत पयडिय असोय ।
पच सयइ अहियइ तुगत्त[1], धणु हइ ते हवति गिय गत्तें ।
णिक्किट्ठे ण कुहत्थ पउत्ता, हत्थु एक्कु कालेण णिरुत्ता ।

घत्ता—तहिं जीविउ उत्तउ, एहु णिरुत्तउ, पुब्वकोडि उक्किट्ठउ ।
अह णिय णिय कालें, परिणय[2] सालें अवरु अवरु णिवकट्ठउ ॥21॥

(22)

वाहत्तरि वरिसइ जिण जयति, अहमेण हरिवि सहसिक्कु ठंति ।
सहसा हिउ जीवइ सार हत्थु, सय सत्तइ चक्काउहु[3] कयत्थु ।
इहु एहय जीविउ णिक्किट्ठउ, चउरासी लक्ख पुव्व[4] उक्किट्ठउ ।
पढम यालि[5] तिय दिवसहिं भोयणु, वीयइ दो दिणेहिं[6] छुहु मोहणु ।
तइयइ दिवसतरि होइ मुत्ति, तुरियए[7] पडि दिणु भोयणहु जुत्ति[8] ।
पचमइ[9] दिवसिक्के[10] दुण्णिवार, छट्ठइ भोयणु हुइ वहुयवार[11] ।
पचम कालि अ तं दिवसुल्लइ, धम्मणासु हुइ पहरि पहिल्लइ ।
वीइ[12] पहरि णरवइ तहिं णासइ, णरवइ णासें जलणु पणासइ ।
तहिं माणुस णिद्धम्म णिण्णग्ग, विलवासिय मच्छा[13] मिस लग्ग ।
छट्ठउ कालहु अंतिसु सिट्ठी, सत्त दिणाइ सीय भर विट्ठी ।
सत्त सत्त विस खारह वरिसणु, सत्त सत्त रय अग्गिय वरिसणु ।
इय अवसप्पिणि कालुपयट्टइ, पच्छइ उवसप्पिणि विपलुट्टइ ।

1 क तु गक्मे
2 ख परिणइ
3 ख चक्को
4 ख पुब्बह
5 ख ०कालि
6 क दो हिणेहिं
7 ख तुरिघए
8. क युत्ति
9 ख पचमिति
10 क दिवसके
11 क बहु अवार, ख वहुयवैर
12. ग बीए
13. ख मछ

घत्ता—इय किउ तस वण्णणु, भेयरिण वण्णणु, सखेवेरण रिगरुत्तउ ।
थावरहु समज्जमि[1], वित्थरु वज्जमि, वण्णणु ज जिरण[2] उत्तउ ॥22॥

(23)

ते थावर पच पयार हु ति, घर जल ते आगिल[3] वराइ थलि ।
भूकाय मसूराधार दिट्ठ, ते सुर राइ सारव मुनरिग सिट्ठ ।
भरिग करणय तार व बाइ बाउ, बहु दीव समुद्दे अट्ठिभेउ[4] ।
खर मउ पुढवी जा पचवण्णा[5], ते पुढवि काय सयल वि पवण्ण ।
वारह बावीस सहास वरिस, आउसु मिउखरहु विविगय हरिस[6] ।
जलकाय वि कुस[7] आयार हुति, ते सयलहु जल ठाण हवति ।
सरि सरि हिम ऊसा पमुह णीर, जे किर असख जलरिणहि गहीर ।
ते सयल वि जल काइय मयाइ, जिणवर केवलणाणे कयाइ[8] ।
तहि आउ वरिस सहसाइ सति, केवलणाणिय जिणवर कहति[9] ।
सूई[10] सचय सम अग्गिकाय, बहु भेय जलण विप्फुरिय छाय ।
कुलिसाणल[11] विज्जुल सूरकति, रविकति फुलिगम[12] जालपति ।
अगार पमुह जे अग्गिभेय, ते अग्गिकाय विप्फुरिय तेय ।
पसरिव धयवउ[13] रिगहु वाय देहु, रिगय वाय वलय सठविय गेहु ।
उक्कलिगुजा मडल वाइय, अवरस सहय किय पडिघाइय ।

1. ख पवचमि
2 ख. जो जिरण रगाहें
3 ग यारिगल
4 = पृथ्वीभेद
5 =कृष्ण-पीत-हरित-श्वेत-रक्त
6 क ग. घ. पुस्तकेषुनास्ति पंक्तिरीयम्
7 =दर्भाग्रजलाकार
8 =कथितानि
9 क. ग पुस्तकयो र्नास्ति पक्तिरियम्
10 =सूच्यप्राकार
11. =वज्राग्नि, विद्युत्तग्नि, सूर्यकान्तमरिग
12. =सूर्यकांतफुलिंगपंक्ति
13. =पवनप्रेरिता ध्वजाकारा

दिसि भेए मारुय बहु हवंति, ते वाय काय जिणवर भणंति।
चउ भेय वणप्फय[1] काय हु ति; पचणहि तरु[2] आई हवंति।
दस सहस वरिस ग्राउसु कहति; उच्छेहु सहस जोयण नमंति[3]।
इय जिण उत्तउ गणहर कहति, ...
सव्वह अंतरह मुहुत्त ग्राउ, अंगुलह असखह भाउ काउ।[4]
बारह सहसहिं खर पुढिवि ग्राउ, बावीस सहस मिउ पुढवि काउ[5]।
सतह सहसहि जलकाइ मरहि, दस सहस वण्णफइ जीउधरहि[5]।।

घत्ता—जलणह पउत्तउ, एहु णिरुत्तउ, चउवीसहिं पहरेहिं ठिय।
मारुय सुपयासह वरिस सहासह, सव्वउ तिण्णि परिट्ठिय।।23।।

(24)

जीउ दव्वु सवेवें उत्तउ, पहु अजीउ भणेइ णिरुत्तउ।
होइ अजीउ जि पच पयारउ, णिय णिय गुण पज्जयह्[6] सारउ।
धम्मु अहम्मु कालु आहासु वि, पचमु पुग्गलु पयहु पयासु वि
धम्मु अमुत्तु अखडु पयासिउ, पुग्गल जीवह गमणें भासिउ।
पयह ठिदि कारण हुइ अहम्मु, सो विहु धम्मुहो[7] णिरु सरिसु धम्मु।
पुग्गल परिणामहो ज णिमित्तु, त काल दव्वु भण्णइ णिरुत्तु।
सो ववहारें हुइ तिण्णि भेउ, परमत्थे णिच्चलु णिरु अभेउ।
जं गयणहो एक्किक्कइ पएसि, कालाणुरहिय तिहुवणहु देसि।
तेरय णरासि सण्णिाह हवंति, थिरणिम्बकाल सण्णा लहति।

1. क. वणप्पइ
2. = वृक्ष-विटपि-गुल्म-वल्ली-तृण
3 क. ग. पुस्तकयो र्नास्ति पंक्तिरियम्
4 क. ग. पुस्तकयो र्नास्ति पंक्तिरियम्।
5. क. ख. पुस्तकयो र्न स्त.।
6 ग. पज्जाय
7. =यथा धर्मः तथा धर्म असख्य प्रदेशाः

धम्माधम्महो जीवहु पएस, संखातीय एयहु असेस ।
आयास पएसाणंत हुंति, ते अच्छिकाय णिक्काल कंति ।
पुग्गलु जिणेंहिं छब्भेय दिट्ठु, रस गंध वण्णरव फास सिट्ठु ।
महिजलु तमु गय कम्माणु जाइ, अणयणु[1] चउ इ दिय विसउ थाइ ।
अइ थूलु थूलु महियलु पथुट्ठु, थूलु जि जिणणाहें सलिलु दिट्ठु ।
थूलु सुहमु तमु जुण्हा[2] भासइ, सुहमु थूलु णयाइय सीसइ ।
सुहमु कम्मु अइ सुहमा णिट्ठुउ[3], पुग्गलु इम भेएहिं परिट्ठिउ ।

घत्ता—सो समलु वि पुग्गलु, णिय गुण णिच्चलु, खणु अद्ध, देसु जिट्ठिउ ।
तहो अद्ध, पएसउ, णियलव[4] सेसउ, अणुय विभाउ परिट्ठिउ ।।24।।

(25)

कम्मह पवेसु[5] आसउ कहंति, त पुणु दो भेयहिं वज्जरंति ।
चउ भेउ बंधु भासइ जिणेसु, पडिट्ठिदि अणुभाइय पएसु ।
आसव णिरोहु संवरु पउत्तु, णेज्जर बंधहु अ हवण सत्तु ।
मुक्ख वि अप्पहो अ सयल मुक्खु, इय तच्चइ भासइ णाण चक्खु ।
पडिवाहइ तिहु अणु भव्व संघु, णिण्णासइ तम भरु जग दुलंघु ।
तहो गणहर तिणवइ सजाया, तिहु अण जण संदेह णिवाया ।
पुव्वधरहं दोसहसइं दिट्ठा, विउलय वो लक्खइं मुणि सिट्ठा ।
अवहिणाण धर अट्ठ हहासइ, दह सहसइं केवलि सुहु[6] भासइ ।
विक्किरिया इट्ठिय तहिं थक्का, सहसि जि चउदह दोस विमुक्का ।
अट्ठसहस मणपज्जय णाणहं, सुहमु चराचरु तच्च सुजाणहं ।

---

1. =नेत्ररहित चतुरिन्द्रिय-विषय 2. क. जुण्णा
3. ख. णिट्ठिउ 4. क. तव
5. ख. पएसु 6. ख. फुडु
7 ख. तहिं

अट्ठ सहासय दोसय ऊणा, तहिं वाइय जिण वयण पवीणा ।
असिय सहस लक्खहिं अज्जिय, तिण्णि लक्ख सावयह समज्जिय ।
तहिं णिय साविय जण पचलक्ख, चउभेय देवतहिं ठिय असख ।

घत्ता—इय सघे जुत्तउ, कलिमल चत्तउ, तिहुयण कमल दिणेसरु ।
महि मडलु विहरइ, तमभरु पहरइ, केवल किरणु जिणेसरु ॥25॥

(26)

मासिक्कें जाणिवि प्राउ छेउ, समेदसेलि सपत्तु देउ ।
धम्मोवदेसु अणु समवसरणु, मिल्लिवि पारंभिउ झाण करणु ।
दड कवाड पयर जय पूरणु, तहिं जिणु कुणइ[1] कम्म भउ[2] सूडणु ।
आउ कम्म सम कम्मइ कीरइ, सुहुम किरिय झाणम्मि सुधीरइ ।
जे दद्दरज्जु[3] सारिच्छ कम्म, ते चारि वि णिहाणि वि अवल धम्म ।
भट्टवयहो सत्तमि सुक्ख पक्खि, पडिमाजोए ठिउ परम सुक्खि ।
दह पुव्वलक्ख जीवियहु णासि, तुरियहु सुकहु झाणहो पयासि ।
णिरु अट्ठकम्म सजोय मुक्कु, सच्चेमणु गयगुव तित्थु थक्कु ।
ज दिट्ठउ देहहु इह पभणु, किंचू णु तित्थ ठिउ तासु माणु ।

घत्ता—तिहु अणसिरि सठिउ, मुक्खु परिट्ठिउ, तेजय णाहु परमेसरु ।
ज मुहु सोमाणइ त परियाणइ, सुज्जि देउ सुरकेसरि ॥26॥

(27)

इक्कि समइ सयलु वि सो जाणइ, णत दव्व पज्जाय पमाणइ ।
पयणे विणु[5] सो रूवें पिच्छइ, सवणे विणु सद्दइ णिय सुम्मइ ।

1 ख करइ 2. ख भर
3 = दग्धरज्जु
3 ख रूवइ 4 =वलरहित अवकर्म
5. =नेत्र विना समस्त पदार्थान् अवलोकते
6 रूवइ

रसणें विणु सो रसु परियाणइ, फासें विणु फासइं सजाणइ ।
घाणें विणु गंधइं अणु हुजइ, चिन्तें विणु परुसुहु वहु सजइ ।
भुक्ख तिण्हु[1] णिद्दवि सुखलासिय, रइ अरई दूरेण पणासिय ।
पुव्वभाव सयलेहिं पमुक्कउ, दसण णाण सहावें थक्कइ ।
णाणु देहु णाणु जि ठिउ चेयणु, णाणु णेउ[2] णाणु जि तहो भोयणु ।
णाणु सयणु णाणु जि तहो कीलणु, णाणु सुद्धु तहो णयणउ मीलणु ।
णाणु सहाउ णाणु तहो[3] अप्पउ, णाणु णाणु णाणु जि सवियप्पउ ।
णाणेक्कतु तासु सुफुडु आइउ, णिय दव्वत्थ सहावें भायउ ।।

घत्ता—जो वण्णइ तासु, माणि उहयासु, फुडु सरुम सब्भावें ।
सो सब्बउ मूढउ मोहे, मूढउ हास ठाणु सब्भावें ।।27।।

(28)

ता हरिस सोय सभार मुत्त, तह[4] सुरणिकाय परिवार जुत्त ।
णह रोभइ णाहहं धरणिपत्त, णिक्खि वि विंभिय रसभावसत्त ।
मेलिवि[5] कालागरु चंदणाइं, घणसार पमुहं दव्वइं घणाइं ।
ता जलण कुमारा तहिं णमंति, मउडग्गि सुरकंतइ जलंति ।
जालावलि जलियउ तहिं किसाणु, सोरहि[6] महुमहियउ णह वियाणु ।
सुरणच्चहिं गायहिं सोयभिण्ण, वहुअट्ठभेय अच्चा पवण्ण ।
चउविह सघ वि तहिं समिलंति, जिण णिव्वाणह[7] किरिया कुणंति ।
सुरपभणहिं सामिय तिजयणाहु, पइं विणु लोय विहू अउ भणाहु ।
जय जय परमेसर सुक्खधामु, जय अमय घुं ट्टु सारिस्थ णाम ।
जय जय पाविय सिव मुह णिहाण, जय जय परमेसर सकल णाण ।

1. ग तण्ह, 2. क. णेऊ,
3. ख. तहिं, 4. ख. वहो,
5 क. मलिवि, 6. = सुरभितमन्धैः,
7. ख.० णहिं,

जय दूर मुक्क संसार बंध, जय सिव रस भावण किय पबंध ।
जय जय पर मंगल मंगलाहूं, जय पढम ठाण मंगल कलाहूं[1] ।

घत्ता—इय सयल वि सुरवर, जिण सयुइ वर, भत्तिभेव भरसत्ता ।
पंचम कल्याणहो, सुक्ख[2] णिहाणहो, करिवि ठाण संपत्ता ॥28॥

(29)

ज सुद्ध असुद्धउ गय चारु, जं सारु[3] असारउ बहु[4] पयारु ।
ज जिणवाणी खमउ सव्वु, महु कवि गहि लहो विलसिउ अगव्वु ।
जे परमेसर जाणहिं अपारु, ते सोहि वि सोहि वि कुणहु[5] सारु ।
मुणि अणु पडिय मेल्लि वि कसाउ, सोहतु मुणिवि इह मुह[6] पसाउ ।
गुज्जरदेसह उम्मत्त गामु, तहिं छड्डा सुउ हुउ दोण णामु ।
सिद्धउ तहो णदणु भव्वबंधु, जिणधम्म भारि ज दिण्णु खधु ।
तहु[1] सुय जिट्ठउ बहु[3] देवभव्वु, जिं धम्म कज्जि विवकलिउ दव्वु ।
तहु लहु जाउ सिरि कुमरसिंह, कलिकाल करिंदहो हणण सींहु ।
तहो सुउ संजायउ सिद्धपालु[8], जिणपुज्जदाण गुण गुण रमालु ।
तहो उप्परोहि[8] इह कियउ गंथु, हउ णामु णामु णामि कि पि वि सत्थुगथु ।

घत्ता—जा चंदिवायर, सव्ववि सायर, जा कुलपव्वय भूवलउ ।
ता एहु पयट्टउ ठियइ चहुट्टउ, सरसइ देविहिं मुहि तिलउ ॥29॥

इय सिरिचदप्पहचरिए महाकइ जसकित्तिविरइए
महाभव्व सिद्धपाल सवणभूसणे चदप्पह
सामि णिव्वाणो णाम एयारहमो संधी
परिच्छेउ सम्मतो ॥ इति चंद्रप्रभ चरित्र समाप्त ।

ग्रन्थ संख्या 300

श्लोक संख्या–2406[11]

1 ख. कयाह,
2. ख. सोक्ख,
3. ख. सार,
4. क बहु,
5 ख. कुणहो,
6 ख. महु.
7. =दोणस्य,
8. = पुत्र
9 = श्री कुमारस्य सिद्धपालपुत्रः
10. ख. उवरोहें,
11 ख श्लोक संख्या–2306

प्रथम संधि

संक्षिप्त भावानुवाद

(1)

विमल केवल ज्ञान को प्राप्त करने वाले, लोकालोक को जानने वाले चन्द्रप्रभ तीर्थंकर को प्रणामकर तथा त्रिकालवर्ती पंच परमेष्ठियो की वदनाकर मन-वचन-काय से शुद्ध होकर मैं चन्द्रप्रभ स्वामी के चरित्र का आख्यान करूंगा। जिन रूपी गिरिगुहा से निर्गत, शिवपथ की ओर जाने वाली, शाश्वत सुख की कारणभूत सभी द्वारा प्रशसित, गणधर द्वारा वर्णित और त्रिभुवनवर्ती लोगो के मन को हरने वाली सरस्वती मुझ पर प्रसन्न होवे।

हुवड कुलभूषण कुमरसिंह के पुत्र सिद्धपाल जो, निर्मल गुणो से युक्त है, के अनुरोध पर यश कीर्ति विद्वान ने प्राकृत (अपभ्रंश) भाषा मे इस ग्रन्थ की रचना की। जिन वचनामृत को फैलाने वाले केवलज्ञानी गणधरो ने तथा कुन्दकुन्द जैसे महान् आचार्यों ने जिनकी वन्दना की है उनके चरित्र का वर्णन दूसरा कौन कर सकता है ? एक लगडा व्यक्ति क्या चाद को पकड़ सकता है ? फिर भी चूकि बड़े-बड़े आचार्यों ने वाणी-विलास किया ही है, इस लिए मैं भी प्रयास कर रहा हूँ।

पूर्णिमा के चन्द्र के समान अत्यन्त निर्मल चरित्र वाले समन्तभद्र मुनि को प्रणाम करता हूँ जिनके प्रणाम से क्रोधाविष्ट शिवकोटि की शिव-पिण्डि फूटकर उसमे से तीर्थंकर चन्द्रप्रभ की मनोज्ञ प्रतिमा प्रकट हुई। इसी तरह अकलंकदेव की भी वदना करता हू जिन्होने तारा देवी का मानमर्दनकर बौद्धो को शास्त्रार्थ मे पराजित किया था। श्री देवनन्दि मुनि, जिनसेन, सिद्धसेन आदि जैसे आचार्यों को भी प्रणाम करता हू जिन्होने परवादियो के दर्प का भजन किया है ॥ 1 ॥

(2–3)

ससार-समुद्र से पार होने के लिए धर्मध्यान किया जाता है। सज्जन दूसरो के सद्गुणो की प्रशसा करते हैं और उनके ग्रहण करने का उपदेश या आग्रह भी करते हैं। पर दुर्जन दूसरो के दोषो का ही आख्यान करता है। ठीक भी है।

चन्द्र भी राहू के द्वारा निगल लिया जाता है। इसी तरह दूसरी ओर चदन अपनी सुगध से दूसरो को सुवासित कर देता है। दुर्जन निष्कारण शत्रु और निंदक बन जाता है पर सज्जन मित्र और गुणप्रशसक तथा गुणग्राही रहता है ।।2–3।।

(4–5)

यहाँ जम्बूद्वीप मे दो सूर्य और दो चन्द्रमा हैं। उसके बीच विशाल सुमेरु पर्वत है जो सुगंधित पुष्प और वृक्षो से सुशोभित है। उसका ऊपरी भाग सुनहरे रग का है। उसके पूर्व मे पूर्वविदेह है जहाँ शुक्ल ध्यानी तपस्वी सम्यक् तप और आचरण मे लीन रहते हुए रत्नत्रय का पालन करते हैं। वहा मगलावती नाम का एक देश है जो दिव्य वेश से स्वर्ग के समान शोभित हो रहा है। सरोवरो के अमृत कुण्ड मनभावन हैं। कल्पद्रुम वृक्ष पथिको को फल प्रदान करते हैं, धान्य की खेती अधिक मात्रा मे होती है, सरोवरो मे हस पक्तिया ऐसी चलती हैं कि पनिहारनो की मन्द गति को भी मात कर देती हैं और कृषक अपने खेतो के काम मे व्यस्त हैं। ।।4–5।।

(6)

जहा धान्य की खेती अधिक होती है, गृहपति लक्ष्मीसपन्न हैं, सिंह और महिषी एक साथ पानी पीते हैं, गावो के बाहर खलिहानो मे धान्य राशियाँ इतनी ऊ ची लगी हुई हैं कि लगता है, उनकी शोभा देखने के बहाने कुलाचल ही चले आये हो। चन्द्रकात मणिमय भवनो से रात्रिकाल मे चन्द्रमा का स्पर्श पाते ही जल का प्रवाह बढ जाता है। फलत ग्रीष्मकाल मे भी नदियो का प्रवाह अपने दोनो किनारो से टकराते हुए बहता है। वहा रत्नसचय नामका एक नगर है । उस नगर के बाजारो मे मणियो के ढेर लगे रहते हैं इसलिए वह नगर सार्थक नाम वाला है ।।6।।

(7)

जहाँ गगन के समान ऊ चे धान्य के ढेर लगे हुए हैं जिनके ऊपर सूर्य का रथ दौड लगाता है। जहा के भवनो की छतो पर बैठी स्त्रियो के मुख चन्द्र को देखकर राहु ग्रसने का प्रयत्न करता है पर प्रतिचन्द्र होने के कारण ग्रस नहीं पाता। जहां के प्रासादो मे अकित चित्रकला इतनी सजीव है कि नववधु पर-पुरुषो की उपस्थिति के भ्रम से अपने पति के साथ गाढ आलिंगन नही कर पाती तथा सौतो के उपस्थिति की भ्रम से मुग्धा सयोग के समय अपने नेत्र बद कर लेती है। जहाँ प्रफुल्लित अरविन्द पक्ति से आकाशगगा मे सुरभित वायु सचरित होती है ।। 7 ।।

(8)

जहाँ कालागरु का धु आ गगन मे अधकार व्याप्त कर देता है। लगता है, सूर्य उसी के ऊपर चल रहा हो। जहा की तरुणियो के कपोल तल इतने निर्मल हैं

कि उनमे चन्द्रमा का प्रतिबिंब झलकने लगता है। उनके कपोल मण्डल वाले मुखकमल तथा चन्द्रमण्डल के बीच चन्द्र की पहचान केवल उसकी कलक रेखा से हो पाती है। जहाँ के सज्जनों का दान देने का भाव प्रपूर्ण है। जहा के महलो पर स्वच्छ वस्त्र सूर्य के टुकडो के समान लटक रहे हैं ।। 8 ।।

(9–10)

उस रत्नसचयपुर नगर का राजा कनकप्रभ था जिसे देखकर सुरपति भी ईर्ष्यालु हो जाता था। उसकी कीर्ति चतुर्दिक् फैली हुई थी। ऐसा जगता था जैसे ससार मे घूमते-घूमते कीर्ति वृद्धा जैसी थक गई हो और इस राजा के घर मे स्थिर हो गई हो। जिसमे तेज समुद्र के जल के समान स्थिर हो गया था। सूर्य भी जिसके तेज से कप गया था। उसका रूप काम देव से भी अधिक सुन्दर था। उसके नयनोत्पल मे शोभा का निवास था। उसके धनुष के सामने कोई टिक नही सकता था। बहुत गुणवान था। उसके मुख मे मानो सरस्वती का वास था। तीनो लोको मे उसका प्रतिद्वन्दी कोई दिखता नही था। उस कनकप्रभ राजा की कनकमाल नाम की महाराज्ञी थी जो पूर्ण लावण्यवती, गुणवती और शीलवती थी। हर अग-प्रत्यग अनग का रूप लिये हुए थे। वदन और नयन क्रमश चन्द्र और सारग जैसे थे।9-10।

(11)

कनकप्रभ और कनकमाला दोनो का हृदय परस्पर प्रेम से भरा हुआ था। पचेन्द्रिय सुखो का उपभोग कर रहे थे। सासारिक सुखो मे डूबे हुए अपना समय यापन कर रहे थे। एक दिन कनकमाला मे गर्भ के लक्षण दिखाई दिये। उसका शरीर आलस्य से भरा था, पीलापन लिए हुए था, चूचुको मे कालापन आ गया था। दोहद पूर्ण होते हुए उसके नव मास पूरे हो गये और उसने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र का सारा शरीर लक्षणो और अनुव्यजनो से स्फुटित था। धर्म, अर्थ और काम का घर था, कुल का सूरज था। उस पुत्र का नाम रखा गया पद्मनाभ। पद्मनाभ चन्द्र के समान बढ़ने लगा। कालक्रम से तरुण हुआ। तरुणावस्था मे उसके रूप ने रूपगर्वीले लोगो को हतप्रभ कर दिया था। वह अत्यन्त गुणवान था ।।11।।

(12)

एक दिन राजा कनकप्रभ अपने प्रासाद पर बैठे-बैठे राजधानी की शोभा देख रहे थे। इसी बीच उसकी दृष्टि एक ऐसे छोटे सरोवर पर पडी जहां से पानी पीकर बैलो का एक झुण्ड वापिस आ रहा था। समीप मे ही दुर्दम कीचड़ मे क्षीण काय वाला एक बैल फस गया। उसमे से वह निकल नहीं सका और उसका वही प्राणान्त

हो गया । उसे मरते हुए देख कर राजा को वैराग्य हो गया और वह सोचने लगा कि ससारियो की यह दुर्दशा है । वे लोग धन्य हैं जो मोक्ष को प्राप्त कर चुके हैं । यह ससारी जीव विषय भोगो से कभी तृप्त नहीं हुआ । अपने कर्मो से बधा हुआ है ॥12॥

(13)

ससार मे सुख कहीं नही है । यह जीव देव, मनुष्य, तिर्यंच और नरक गतियो मे घूमता रहता है । क्षण भर मे यह आसक्त होता है, क्षण भर मे विरक्त होता है । कभी स्वर्ग और कभी असुरक्रीडा करता है, कभी धनवान् होता है, कभी दरिद्र होता है, कभी रूपवान होता है, कभी कुरूप होता है, कभी दर्प करता है, कभी दीन बनता है, कभी वीर होता है कभी भीरु होता है, कभी दानी होता है कभी भिखारी बनता है, कभी सुखी और कभी दु खी होता है, कभी यश पता है, कभी अपयश हाथ आता है, कभी मधुरभाषी होता है, कभी कटु बोलता है, कभी इष्ट सयोग होता है, कभी इष्ट वियोग होता है, कभी जीतता है कभी पराजित होता है । इस तरह ससार मे प्राणी के लिए एक जैसी स्थिति कभी नही मिलती । उसे इष्ट-अनिष्ट की अवस्थाओ मे सदैव घूमना पडता है ॥13॥

(14)

ससारी प्राणी दुखो से मुक्त होने और सुख पाने के लिए सचेष्ट रहता है। पर उसे अन्तत दु ख ही मिलता है उसी तरह जिस तरह खाज का रोगी क्षण भर के सुख के लिए आग तापता है पर बाद मे उसे दारुण दु ख भोगना पडता है । ज्ञान के स्वभाव का न जानता हुआ चर्मचक्षुओ के आस्वादन को मोहवश मान लेता है । जो वर्जनीय होता है उसे करणीय मानता है और जो करणीय होता है उसे छोड देता है । वह वस्तुत शक्कर की आशा मे बालु-मिट्टी इकट्ठा करता है । धीरे-धीरे उसकी आयु क्षय होती जाती है और वह मरणोन्मुख हो जाता है । मर जाने पर लोग शोक मनाते हैं, रोते हैं और श्मसानघाट पहुँचा देते हैं । वे दु ख भोगने मे सहभागी नही होते । सच तो यह है कि सुख धर्म के बिना नही मिलता । मोहासक्त व्यक्ति इस तथ्य को नही समझ पाता और वह पाप कार्य करता रहता है । फलत: नये नये जन्मो को धारण करता रहता है । इसलिए इस भवचक्र को समाप्त करने के लिए जिन वचनो पर श्रद्धा करनी चाहिए और दयावत होकर सम्यक् चरित्र का पालन करना चाहिए ॥14॥

(15)

यह विचारकर राजाने पद्मनाभ पुत्र को राज्य भार सौंपने का निश्चय किया और उसे बुलाया । सामन्तो और मन्त्रियो को भी बुलाकर अपना मन्तव्य

व्यक्त किया नगर सजाया गया, मणि तोरण लगाये गये। यह सब देखकर पद्मनाभ के आखो से आसू बहने लगे। राजा ने स्वय उन असुओं को अपने हाथ से पोछा और ससार की स्थिति समझाई। एक मन्त्री ने कहा—हे स्वामी! मेरी बातों पर भी विचार कीजिए। जीव देह से पृथक् नही है। जीव और देह मे कोई भेद भी नही है। राजा ने यह सुनकर कहा कि देह और जीव दोनों पृथक् पृथक् हैं। जीव ज्ञानवान है। जीव का अस्तित्व हमारे सुख दुःख के वेदन से होता हैं। तप का आचरण और व्रत-धारण ससार से मुक्त होने का कारण है और घर मे रहना दुःख और भव-भ्रमण का कारण है ।।15।।

(16)

इस प्रकार उस मन्त्री को निरुत्तरकर राजा जगल की ओर चला गया। वहा चारित्र के आधारका श्रीधर नामक मुनि विराजमान थे। उनके चरण कमलो मे प्रणामकर उसने जिनदीक्षा ले ली। इधर नरपति पद्मनाभ पिता के जाने से शोकाकुल हो गया, पर मन्त्रियो के प्रतिबोध से वह स्वस्थ हो गया। जो ज्ञानवान होता है वह पर पदार्थों के मोह से दूर हो जाता है पर जो अज्ञानी होता है वह मोहासक्त बना रहता है जो शोक-दुःख का कारण होता है। पृथ्वीपालन क्षत्रिय धर्म है। यह सोचकर पद्मनाभ प्रजा के पालन मे लग गया। आन्वीक्षिकी, वार्ता, दण्डनीति से युक्त होकर, षट्गुणो (परिवार सरक्षण, विवेकपूर्वक कार्य सचालन, स्वरक्षण, प्रजारक्षण, दुष्टनिग्रह और शिष्ट-पुरस्कार) के आधार पर शासन करने लगा। प्रभुशक्ति, उत्साहशक्ति और मत्रशक्ति से युक्त होकर, सधि, विग्रह, यान, आसन द्वैध और सश्रय का का आधार लेकर प्रजापालन मे दत्तचित्त हो गया। फलत उसका कोई शत्रु नही रहा। स्वामी, अमात्य, जनपद, दुर्ग, कोष, दण्ड, मित्र ये राज्य के सात अग होते है जिनके माध्यम से वह शासन करता रहा। शासन करते हुए भी जो उसमें आसक्त नहीं होता वह निश्चित् रूप से मोह को नष्ट कर देता है। ।।16।।

इस प्रकार महाकवि यशःकीर्ति द्वारा विरचित श्री चन्द्रप्रभ चरित्र मे महाभव्य सिद्धपाल श्रावकभूषण श्री पद्मनाभ राज्याभिषेक नामक प्रथम सधि समाप्त हुई।

द्वितीय संधि

(1)

जिन वचन रूपी कमल की सुगंध से वासित, पूर्वो द्वारा प्राप्त, गणधरो द्वारा संग्रहीत (स्वीकृत) आगम सरस्वती प्रसन्न हो । जिनभक्त और गुणरक्त राजा पद्मनाभ एक दिन राजसभा मे बैठे हुए थे कि कणकदण्ड लिए पिंजर शरीरवान् द्वारपाल ने द्वार पर वनपाल के आने की सूचना दी । राजा ने उसे अन्दर लाने की आज्ञा दी, उसने हाथ जोडकर प्रणामकर कहा कि आपके सुरभित वन (उद्यान) मे श्रीधर नामक मुनिराज पधारे हैं । वे अत्यन्त ज्ञानी-ध्यानी हैं । उनके दर्शन मात्र से प्रसन्नता आ जाती है । वे निर्दोष आचरण, तप और सयम के धारक हैं । उनके गुणो का वर्णन करना मेरी शक्ति के बाहर है । उनके प्रभाव से समय के बिना भी बसन्त ऋतु दिखाई देने लगी । वनपालन के इस मनोहारी सदेश को सुनकर राजा पद्मनाभ ने प्रसन्न होकर उसे अपने कीमती आभरण उतारकर दे दिये ॥ 1 ॥

(2)

इसके बाद राजा पद्मनाभ हर्ष विभोर होकर सिंहासन से उतरा और जिस दिशा मे मुनिराज विराजे थे उस दिशा मे सात कदम आगे चलकर प्रणाम किया । अनन्तर नगर मे आनन्द भेरी बजवा दी और जनता को मुनिराज के दर्शनार्थ चलने के लिए प्रेरित किया । इस समाचार को सुनते ही सारा नगर परिकर इकठ्ठा हो गया और राजा धर्माचरण पूर्वक मुनिराज की वन्दना के लिए चल पडा । उस समय उद्यान की शोभा ही निराली थी । बिना वसन्त ऋतु के केसर वृक्ष पुष्पित हो रहे थे मानो मुनिराज को नमस्कार कर रहे हो । स्त्रियो के पादाघात को सहे बिना अशोक वृक्ष प्रफुल्लित हो रह थे । मौलिसिरी वृक्ष तरुणियो के मद्य कुरलो की अवहेलना कर विकसित हो रहे थे । आम्र वृक्षो मे शीघ्र ही मौर लग गये मानो वे मुनि दर्शन के लिए सचेष्ट हो रहे हो । इस प्रकार सारा वातावरण मुनि के दर्शन के लिए रोमाचित-सा हो रहा था । राजा ने सारे राजकीय परिवेश को छोडकर पैदल ही मुनिराज के दर्शन करने निकल पडा । थोडी दूर उसने उन्हें वृक्ष के नीचे एक निर्मल शिलातल पर बैठे हुए देखा ॥ 2 ॥

(3)

फिर पद्मनाभ ने मुनिराज की तीन बार प्रदक्षिणा की और पंचांगो से तीन बार प्रणाम कर स्तुति की। हे मुनिवर! आपके दर्शन से मेरा जन्म कृतार्थ हो गया। जिन वचन मे आस्था और दृढ़ हो गई, मोक्ष मार्ग प्राप्त हो गया, घर भी स्वर्ग जैसा दिखने लगा, कर्म का बन्धन ढीला हो गया, ससरण नष्ट हो गया, ससारी जीवों को जैसे कल्पवृक्ष मिल गया, वे आसन्न भव्य हो गये। और क्या कहूँ, जितने उपमान दिख रहे हैं वे सब तृणवत् व्यर्थ हो रहे हैं। असख्य किरणो वाला सूर्य आपके तेज के सामने कुछ नहीं, कल्पवृक्ष, कामधेनु, चिन्तामणि आदि भी आपके सामने निरर्थक हो जाते हैं। आपके दर्शन से तो वस्तुत रत्नत्रय हाथ आ गया है। तब मुनिवर श्रीधर ने पद्मनाभ को आशीर्वाद दिया और धर्मवृद्धि कही ॥3॥

(4)

इसके बाद पद्मनाभ ने श्रीधर मुनिराज से प्रार्थना की कि उसे धर्म की व्याख्या समझा दें। मुनिराज ने उसके इस निवेदन को स्वीकार किया और समयोचित श्रावकव्रत (सागार-धर्म) का आख्यान किया। उन्होंने कहा कि सर्वप्रथम व्यक्ति को जीवरक्षा (अहिंसा) करनी चाहिए। यह व्रत बहु सुख का कारण है। नरक और तिर्यञ्च गति के द्वार को बन्द करने वाला है, स्वर्ग और मोक्ष के द्वार को उद्घाटित करने वाला है, सकल सुख का कारणभूत तथा मगलकारी है विजयदायी है, अशुभ-तिमिर को मिटाने मे सूर्य है। दूसरा व्रत है सत्य बोलना। जो भी बोलो, सत्य बोलो। यह व्रत पाप की प्रकर्षता को कम करता है, साधुत्व का कारण है, विजय प्राप्ति का साधन है, सकल लब्धियो का द्वार है, जन्म-ग्रहण की प्रक्रिया के लिए अर्गला है, सकल ज्ञान की उत्पत्ति का कारण है। तृतीय अणुव्रत है अस्तेय (चोरी न करना) जो गुण-रक्षक है, पापकर्मों के रोकने के लिए वज्रदण्ड है, दोष-विषधर को रोकने के लिए करण्डु है। चतुर्थ अणुव्रत है ब्रह्मचर्य अर्थात् शुभ चरित्र का पालन करना और परस्त्री सेवन से दूर रहना। यह व्रत ससरण से मुक्त होने का कारण है ॥ 4 ॥

(5)

पर स्त्री सेवन नरक गति का कारण है सकल दुष्कर्मों की जड है, कलंको का जनक है, बधुओं के बीच शत्रुता पैदा करने वाला है, शीलव्रत के लिए कुक्षकारी है, निर्मल बलिष्ठ देह को शक्तिहीन और निस्तेज करने वाला है, कीर्ति का क्षयकारी

है। पचम अणुव्रत है परिग्रह परमाणुव्रत जो तृष्णा की तरगो के लिए प्रलयभानु है। सतोष के बिना तृष्णा महासमुद्र है, लोभ रक के समान है, वह वस्तुत भुजग है। जो इन पचाणुव्रतों का पालन करता है वह मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त कर लेता है।

(6)

इन पचाणुव्रतो के अतिरिक्त तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रतो का भी पालन करना चाहिए। दिग्व्रत मे देश-विदेश गमन की सीमा कर लेने से अधर्म से बच जाते हैं। द्वितीय गुणव्रत भोगोपभोग परिमाणु तथा तृतीय गुणव्रत अनर्थदण्डव्रत है। चार शिक्षाव्रतो मे प्रथम सामायिक है जो प्रात, दोपहर और सायकाल की जानी चाहिए। द्वितीय प्रोषध है जो अष्टमी और चतुर्दशी को किया जाना चाहिए। तृतीय शिक्षाव्रत है दान जो सत्पात्र मे दिया जाना चाहिए और चतुर्थ है सल्लेखना जिसका शरण मरण काल मे लिया जाता है। इन बारह व्रतो का परिपालन निरतिचार पूर्वक किया जाना चाहिए। उन्हे पच्चीस दोषो से मुक्त होना चाहिए। अष्ट मूलगुणो का भी पालन किया जाना चाहिए इन व्रतो के साथ। यह श्रावक क्रिया है जिसके पालने से मुक्ति-पथ प्रशस्त हो जाता है। राजा ने यह उपदेश सावधानतापूर्वक सुना और उसकी अनुशसा की।

(7)

इसके बाद राजा ने अपने पूर्व भव और भविष्य भव के सदर्भ मे जिज्ञासा व्यक्त की। तब मुनिराज ने उसका वर्णन किया—हे राजन्! तीसरे द्वीप का नाम पुष्करार्ध है। उसके पूर्व मे मेरु पर्वत है जिसके पश्चिम विदेह मे शीतोदा नदी के उत्तरी तट पर एक सुगन्धि नाम का देश है। उसका हर प्रान्त कमलो की गध से सुगन्धित है। इसलिए उसका नाम सार्थक है। वहा नागवल्ली जैसी सुन्दर लताएँ हैं, फलभार से झुके हुए सुपारी के वृक्ष हैं, थल कमलो की भी अपनी निराली शोभा है।

(8–9)

उस सुगन्धि देश मे श्रीपुर नाम का एक नगर है। मणि जटित प्रासादों से वह सुशोभित है, कामिनियों के मुख-चन्द्र से प्रकाशित है, चन्द्रकान्त मणियो से निकलने वाली जलधारा मे मानो चन्द्र ही अवभासित होता हो, हर घर के शिखर रगे हुए है इसलिए वे ऐसे दिखते है जैसे उनके ऊपर रविका कलश लग गया हो। उसी श्रीपुर मे श्रीषेण नामका राजा राज्य करता था। वह क्षत्रियधर्म को पौरुष

का प्रतीक समझता था। दान में कर्ण था। सकल विद्याएँ साक्षात् उसमें एकत्रित हो गई थीं। वह अहंकार से दूर था, समुद्र के समान गम्भीर और विशाल था, पर्वत के समान ऊँचा, चन्द्र के समान सुन्दर, बृहस्पति के समान बुद्धिमान था, विरक्त था, इन्द्र की कीर्ति को प्राप्त था, उज्ज्वल गुणों से युक्त था, निर्मल मनोज्ञ शरीरवान था, शत्रु रुपी अन्धकार के लिए सूर्य था, भिक्षार्थियों के लिए कल्पवृक्ष था, कामिनियों के लिए अमृत था। इस प्रकार वह गुणवान राजा अपनी प्रजा का पालन बड़े मनोयोग से कर रहा था।

(10–11)

उस राजा की कीर्ति अमृतरस के समान निर्मल और मुक्ति के समान कल्याणकारी था। उसका एकछत्र राज्य था। श्रीकांता नाम की उसकी महाराज्ञी थी जो अत्यन्त रूपवती थी। राज्ञी का मुख चन्द्र के समान था, स्तन वत्सलता से भरे पीयूष कुंभ थे, कटि भाग पतला था, ऊरु युगल स्थूल थे, सारे अंग रक्त कमल के समान कोमल थे। वह ज्ञान में शक्ति के समान, सुर में कति के समान, तर्क मे युक्ति के समान, सिद्धि में मुक्ति के समान, धर्म में क्षान्ति के समान, शील मे शान्ति के समान दान मे कीर्ति के समान, अर्थ मे युक्ति के समान थी। एक दिन वह खेद-खिन्न हो गई। जब अन्तःपुर में राजा आया तो उसने देखा कि उसके आखों से आंसू बह रहे हैं। उसने कहा—प्रिये! बताओ, किसने तुमसे अपराध किया है, किसने तुम्हारा अपमान किया है। त्रिलोक को जीतने वाले मेरे रहते हुए शक्र भी तुम्हारा कुछ नहीं कर सकता। अतः स्पष्ट कहो, किस कारण से तुम दुःखी हो राजा के बार-बार पूछने पर वह लज्जावश कुछ नहीं बोली और सखि की ओर लीला पूर्वक देखने लगी।

(12–13)

सखि बोली—हे स्वामिन्! आपके रहते हुए इसे विषाद का कारण क्या हो सकता है! सच तो यह है कि सबके ऊपर कर्म है, भाग्य है। बात यह है कि आज यह मेरे साथ नगर की शोभा देखने छत पर गई थी। वहां से इसने बच्चों को खेलते हुए देखा जो हाथ की थपकी दे देकर गेंद खेल रहे थे। उन्हें देखकर इसका मन विषादमय हो गया और सोचने लगी—पुत्र के बिना भी कोई जिन्दगी है? शोक का मूल कारण यही है। राजा यह सुनकर चिन्तित हो गया और सोचने लगा कि सब कुछ होते हुए भी पुत्र के बिना जीवन अधूरा है। बिना किरणों के सूर्य की शोभा ही क्या? पुत्र के बिना राज्य का फल क्या? पुत्र के बिना पुरुष के बल की सार्थकता

क्या ? पुत्र के बिना कुल की गति कैसे हो सकती है ? पुत्र के बिना शोभा ही क्या ? पुत्र के बिना तप भी निर्मल नहीं हो सकता। पर यह सब कर्माधीन है। उसने कहा—प्रिये। पुत्र होना कठिन नहीं है। यदि भाग्य सर्वथा प्रतिकूल न रहा तो तुम्हारी यह इच्छा अवश्य पूरी होगी। तुम्हारा शोक मुझे सतप्त कर रहा है और मेरा सतप्त होना सारी प्रजा और राजाओ के शोक का कारण बन जाता हैं। अतः इस शोक को छोडो। अभी तीर्थ सुपार्श्वनाथ के तीर्थ मे समस्त पदार्थों को युगपद् देखने वाले मुनिराज विराजमान है। उनके पास चलकर कारण पूछेंगे। रानी यह सुनकर प्रसन्न चित्त हो गई। एक दिन वनमाली ने आकर राजा से निवेदन किया।

(14)

हे देव ! वसत आ गया है। चारो दिशाओ मे आम्र मजरिया सुरभित हो रही हैं, कोयल मधुर स्वर मे गा रही हैं, उपवन मे मदनराज बठा हुआ है, मलयानिल बह रही है, हम पक्तियाँ आकाश मे उड रही हैं, अलि पक्तियाँ भी इधर-उधर दौड रही हैं, कामिनियाँ भ्रूवल्लियो रूपी धनुषो को खीचे हुए हैं, उनसे वे तीखे वाण चला रही है। वनपाल की यह सूचना पाकर राजा उद्यान की शोभा का आस्वादन करने चल पडा। वहा उसने देखा कि बहुविध पुष्पो से रसाल शोभित हो रहे हैं, भ्रमर पक्तियाँ चारो ओर घूम रही हैं, कोयल मधुर स्वर से गा रही है और मधुर फल खा रही है, शीतल मलयानिल लीला पूर्वक बह रहा है। पंचेन्द्रिय विषयो से सिक्त वसन्त ऋतु का विशेषताओ को देखकर राजा सतुष्ट हुआ और विषाद छोडकर उद्यान मे बिहार करने लगा। इसी बीच वहा चारण ऋद्धिधारी मुनि आ पहुँचे। वे तप के प्रभाव से तेजस्वी और जन्म-मरण से मुक्ति देने वाले थे। अवधि ज्ञानी थे।

(15)

अस्नान परिषह से उनका शरीर मलीन लगता था जैसे ध्यान के प्रभाव से धूम का लेप लगा लिया हो। बारह महाव्रतो के पालन से उनका शरीर कृश हो गया था। वे मुक्ति-नारि से भी विरक्त थे। राजा ने उनके चरणो मे प्रणामकर बहु विध भक्ति की और कहा कि मैं आपके दर्शन से पवित्र हो गया हू, मुझे आपका चरणलाभ हो गया है उसमे निर्मुक्त होकर मैं अवगाहन कर रहा हूँ, फिर भी मेरा मन विरक्त क्यो नहीं हो रहा है ? राजा के ये वचन सुनकर मुनिराज ने उसकी आन्तरिक वेदना को समझा और बोले—राजन ! जब तक तुम्हे पुत्र की प्राप्ति नहीं होगी तब तक यह चिन्ता मिट नही सकती। पुत्र जन्म के प्रतिषेध का कारण क्या है, इसे भी समझ लेना चाहिए। इस कारण का

सम्बन्ध पूर्व जन्म से है। तुम्हारी महाराज्ञी यह श्रीकांता पिछले जन्म मे इसी नगर मे उत्पन्न हुई थी। उसके पिता देवांगद बड़े धन सपन्न व्यापारी थे। उनकी पत्नी का नाम श्री था जिसकी कुक्षि से सुनन्दा नाम की रूप लावण्य सम्पन्न पुत्री हुई। वह श्रावक व्रतों का परिपालन करती थी। सुनन्दा ने एक दिन यौवन के प्रारम्भ मे एक गर्भ-भार से पीड़ित महिला को देखा और निदान बाधा कि जन्मान्तर में भी मैं युवावस्था मे इस जैसी न होऊँ। निदान बाँध लेने के बाद उसने आजीवन गृहस्थ धर्म का पालन किया और अन्त मे मरकर सौधम मे देव हुई। वहां से च्युत होकर शेष पुण्य के फल से दुर्योधन की पुत्री और आपकी पत्नी हुई।

(16)

आपकी इस पत्नी ने पूर्वभव के निदान के कारण ही अभी तक का अपना नवयौवन बिना सन्तान के व्यतीत किया है। अब थोड़े दिनो बाद ही निदान-दोष के शान्त होते ही अतुल बलशाली पुत्र होगा। बाद मे उसे तुम राज्याभिषिक्त करके दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर लोगे और मुक्ति प्राप्त करोगे। राजा यह सब सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुआ। फलत उसने अतिचार रहित बारह अणुव्रतो के परिपालन का प्रण लिया, छेदन, बन्धन, घात-प्रतिघात आदि से मुक्त हुआ, असत्यवादन, कूटलेख-क्रिया, न्यासापहरण आदि छोड़ दिया, अचौर्यव्रत का पालनकर राजविरुद्ध कर चोरी तथा हीनाधिक मानोन्मान, तदाहृतादान को त्याग दिया। इसी प्रकार पर-विवाहकरण, अनगक्रीड़ा आदि अतिचारो के साथ परस्त्रीसेवन का वर्जन किया और परिग्रह परमाणुव्रत का पालन किया तथा धन-धा यादि के अतिक्रमण को छोड़ दिया। इस प्रकार पचाणुव्रतो का निरतिचार पूर्वक पालन करने लगा।

(17)

ऊर्ध्व, अधो, तिर्यक् दिशा की सीमा का व्यतिक्रमण सख्याकृत क्षेत्र सीमा का विस्मरण (स्मृत्यन्तर्धान), क्षेत्रवृद्धि ये प्रथम गुणव्रत के अतिचार हैं। रागयुक्त असभ्यवचन बोलना, सचेष्ट क्रियाओ सहित असभ्य वचन बोलना, असबद्ध प्रलाप, बिना विचार के निष्प्रयोजन क्रिया करना (असमीक्ष्याधिकरण), तथा भोग या उपभोग रूप वस्तुओ का जितना प्रमाण किया है उसकी सीमा के भीतर ही, पर आवश्यकता से अधिक सग्रह करना (उपभोगाधिकत्व) ये पाच अतिचार द्वितीय गुणव्रत (अनर्थदण्डव्रत) के हैं। विषयो की इच्छा करना, पूर्वानुभूत विषय भोगो का स्मरण करना, अतिलुब्धता, अतितृष्णा आदि पाच अतिचार भोगोपभोग परिमाण व्रत के हैं। शिक्षाव्रतो मे प्रथम सामायिकव्रत, द्वितीय प्रोषधोपवासव्रत, तृतीय दान-

व्रत और चतुर्थ सल्लेखना व्रतो का भी निरतिचार पूर्वक पालन करने का विधान है। राजा ने इनके परिपालन करने की प्रतिज्ञा की।

(18)

राजा का समय सागरधर्माचरण, जिनाभिषेक, जिनपूजा, दान, धर्मध्यान आदि क्रियाओ में बीतने लगा। इसके बाद नदीश्वर आष्टान्हिक पर्व आया जिसे उसने सोत्साह सपन्न किया। कुछ दिनों बाद रानी गर्भवती हो गई। उसका शरीर सफेद हो गया, स्तनो का अगला भाग काला और शेष भाग सफेद हो गया। इससे उसने चन्द्रमा की शोभा को भी मात कर दिया। जमुहाई चिर सखी की तरह निरन्तर निकटवर्तिनी हो गई। सन्मित्र के समान आलस उसके पास से नही भागता, लज्जा के साथ उदर बढ़ गया उसकी तीन वलियो के साथ स्फूर्ति लुप्त हो गई। दोनों नेत्र सफेद हो गये। मुनिवाणी के समान वह निश्चल हो गई। राजा ने उसका दोहद भी पूरा किया। इस तरह शुभ भावो पूर्वक धर्माराधना सहित उसका गर्भकाल परिपक्व होता गया।

(19)

इसके बाद शुभ दिन और, शुभ ग्रहो मे श्रीकान्ता ने पुत्र को जन्म दिया। पुत्र तेजस्वी था। सारा अन्त पुर रोमाचित हो उठा, सभी तरह के वाद्य बज उठे कारागृह से वदियो नो मुक्त कर दिया, गया, और याचकों को अपने समान धनाढ्य कर दिया गया। इस तरह मागलिक पुत्रोत्सव मनाया गया और फिर दसवें दिन पुत्र का नाम श्री धर्म रखा गया। पुत्र अहर्निश बढने लगा और समस्त शत्रुओ के मनोरथो को भङ्ग करने लगा। उसने सारी कलाएं सीखलो, सारी विद्याए अर्जित कर ली। इसके बाद उसने राजकन्या शीलवती प्रभावती के साथ विवाह किया। तदनन्तर श्रीषेण ने उसे राज्याभिषिक्त कर दिया।

तृतीय संधि

(1)

एक दिन राजा श्रीषेण राज्यसुख का पान करता हुआ राजमहल में बैठा था, कामकेलि मे मस्त था। उसी समय उसने आकाश से गिरती हुई उल्का देखी। उसकी क्षणभगुरता देखकर उसे वैराग्य हो गया। वह सोचने लगा—यह मनुष्य जन्म फेन के समान निस्सार है यदि उसमे धर्म का पालन न किया जाये। बस, शरीर तो फिर मल की उत्पत्ति का कारण है, दुर्गन्ध और दु ख का घर है। यदि ऐसे दु.ख दायी नारियो के शरीर मे मोहित रहा जाय तो अमृत-सुविधा से व्यक्ति वंचित रह जायेगा। इस शरीर को विविध गधो से सेवा फिर भी वह अशुचि दुर्गन्धों का घर बना रहा।

(2)

जिस मुह को चन्द्र की उपमा दी जाती है वह कफ के पिण्ड के अतिरिक्त और क्या है ? जिन्हे कामभल्लि कहा गया है वे नितम्ब दूषित मलद्वार हैं, जिन अधरो को अमृत का घर कहा जाता है वे थूक जैसे मल के निधान हैं, जिन स्तनों को अमृत-कु भ माना जाता है वे मात्र मांस के लोथडे है, जिस दन्त पक्ति में सौभाग्य देखते हैं उसे वस्तुत हाथ से कौन स्पर्श करता है ? सारी पृथ्वी को जीतने की कोशिश की जाती है जबकि चार हाथ जमीन ही सोने के लिए पर्याप्त है, मोह के कारण व्यक्ति इतना अधिक धान्य पैदा करता है जबकि उसे भरण-पोषण के लिए थोड़े से ही अनाज की आवश्यकता होती है यह सब दूसरे के लिए किया जाता है। तब यह पाप स्वयं क्यों किया जाये ? पुत्र-कलत्र आदि भी सभी स्वार्थी तत्व ही हैं। यह सोचकर राजा श्रीषेण को संसार से वैराग्य हो गया और उसने अपना आगे

का मार्ग तय कर लिया। फिर अपने कुल के आभूषण स्वरूप युवराज को बुलाया।

(3)

युवराज ने तुरन्त आकर प्रणाम किया और खड़ा हो गया। श्रीषेण की दृष्टि मे अब मोह नही था। उसने कहा–पुत्र ! आज तुम मेरी बात सुनो। जिस प्रकार आंधी फूस की झकझोर डालती है उसी तरह जब तक मेरे इस शरीर को वृद्धावस्था आकर झकझोर नही देती, जब तक तिमिर-नेत्र रोग मेरी देखने की शक्ति को नष्ट नही कर देते, साधु-श्रवण मे और धर्म कथाओ के श्रवण मे मेरे कान जब तक काल के प्रभाव से बधिर नही होते, तीर्थ यात्रा करने मे प्रवीण मेरे पैर जब तक अपने गमन-सामर्थ्य को नही छोडते, जब तक कार्य अकार्य करने का विवेक समाप्त नही होता तब तक मैं सांसारिक बन्धनो को छोडकर दिगबर दीक्षा ग्रहण करना चाहता हूँ। भोगो की मेरी तृष्णा समाप्त हो गई है, रोगो का आना प्रारम्भ हो गया है, अगो मे कपन आदि भी शुरु हो गया है।

(4)

काम -भोगो की शक्ति समाप्त हो गई है। सूखी हड्डी चबाने मे मग्न जिस प्रकार कुत्ता अपने मुह से निकले खून को पीकर ही सतुष्ट होता है उसी तरह वृद्धावस्था मे विषय भोगो की स्थिति होती है। उपभोग करने की शक्ति बचती नही, पैर थक कर पगु हो जाते है, सिर गजा हो जाने के कारण ताम्र पात्र के समान दिखाई देने लगता है दन्त पक्ति विकीर्ण हो जाती है पद सचालन कम हो जाता है जैसे काल ने वह शक्ति हर ली है, जरा-देवी के आने पर आठो अगों मे कपन प्रारम्भ हो जाता है ऐसा लगने लगता है जैसे कोई अपराध के कारण कप रहा हो, अग गलित हो जाते है, शरीर रोगो से आक्रान्त हो जाता है, व्यक्ति निर्लज्ज और कुरूप बन जाता है।"

(5)

अत' अब मै अपना कार्य शीघ्र सपन्न करता हूँ अर्थात् दीक्षा लेता हूँ। तुम सप्तांग वाले राज्य का परिपालन भलीभाति करना। आत्मीय जनो का कभी अपमान न करना। दुर्जनो को कभी शरण नही देना और सज्जनो के गुणो को कभी छिपाना नहीं। कभी अभिमान नहीं करना। कोई ऐसे काम नही करना जिससे अपयश हो। पापियो द्वारा अर्जित सम्पत्ति की भी कभी अकाक्षा नहीं करना। दान

दिये बिना कभी लक्ष्मी का उपभोग नही करना, सन्मित्र अथवा उपदेष्टा को दूर नही छोडना । शत्रुओ पर विजय-प्राप्ति को कर्म पर नही छोडना अर्थात् पुरुषार्थ पूर्वक उन पर विजय पाना । हृदय घातक वाणी नहीं बोलना । किसी पाप-चरित का आचरण नहीं करना । अनुभवी मन्त्रियो की सलाह लिये बिना कोई काम नही करना । धर्म को त्याग कर सुख का अनुभव नही करना । अर्थ, काम और तृष्णा को कभी सिर नही उठाने देना । प्रजा पर करो का बोझ अधिक नही डालना । इस प्रकार राज्य करते हुए, पृथ्वी पालते हुए, लक्ष्मी का सुख प्राप्त करते हुए कीर्त्ति का अर्जन करो और पुण्य सपादन करो, मुक्ति को प्राप्त करो । यही सकल मनोरथ सिद्धि के लिए कल्पतरु होगा ।

(6)

श्रीषेण ने अपने पुत्र को इस प्रकार शिक्षा देकर उसे राज्य का भ'र सौप दिया और अपने वृद्ध लोगों से अनुमति लेकर श्रीप्रभ मुनिराज के समक्ष जिन दीक्षा ग्रहण कर ली । कालातर में दुर्धर तपस्या कर निर्वाण सुख को प्राप्त किया । इधर राजा श्रीधर्म पिता के वियोग से कुछ समय तो शोक विह्वल रहा बाद मे मन्त्रियो और परिकर जनो से प्रतिबोधित होने पर उसका शोक दूर हुआ । तदन्तर दिग्विजय के लिए प्रस्थान किया । चारो प्रकार की दुर्जेय सेना उसके पास थी । उसने सग्राम भेरी बजवा दी । उसकी आवाज सुनकर शत्रुओ के दिल धडक उठे । प्रस्थान करते समय अनुकूल वायु चल रही थी । ध्वजाएँ लहरा रही थी । उन ध्वजाओ ने सूर्य के साथ ही शत्रुओ के यश को भी आच्छादित कर लिया । चतुरगिणी सेना बल से शत्रु कपित हो उठे और उनका दर्प चूर-चूर हो गया । मार्ग मे रत्नादि से भरे थालो से नागरिको ने भी उसका अभिनन्दन किया ।

(7–8)

शत्रु वर्ग मे श्रीधर्म के दिग्विजय प्रस्थान से एक खलबली मच गई । वे उसी तरह से भयभीत हो उठे जैसे गरुड के आने से सर्प हतप्रभ हो जाते हैं । उनमे कुछ स्तम्भित हो गये, कुछ उपहार आदि लेकर उसके समक्ष आ गये, कुछ जंगल मे भाग गये, कुछ यममुख मे समा गये, कुछ पिता के मरने पर अपने गले मे कुठार लगा कर शरण मे आ पहुचे । कुछ दातो तले अगुलि दबाने लगे, कुछ पुत्र-कलत्र आदि परिवार को छोडकर अपने प्राणों को बचाने की दृष्टि से दुग पर चढ गये, कुछ ने अपनी सम्पदा को ढोकर दग्ध वृक्षों मे रख दी, कुछ ने अपने मुख को गोद मे डाल लिया मानो अपने कलक को छिपा रहे हो, कुछ अपनी आयु को क्षीण मानकर

दुर्धर तपस्या करने निकल पड़े, कुछ ने यह सोचा कि श्रीधर्म सारे राज्यों का अपहरण नहीं करेंगे इसलिए अपने राज्य समर्पित कर दिये। इस प्रकार शत्रुओं की स्थिति देखकर उनके प्रणाम आदि प्रक्रिया से श्रीधर्म सन्तुष्ट हो गया और क्षत्रियोचित धर्म का उनके साथ आचरण किया।

जैसे ही संग्राम मे उसने शत्रुओं का विनाश किया वैसे ही उस राजा का प्रताप और बढ़ गया। इसको देखते ही शत्रुओं की पत्नियां विरहाग्नि में जलने लगती थी। शत्रु कुल देवता की पूजा से भी निराश हो गये। मुख मे तृण दबाकर अपने जीवन की रक्षा करने की आशा करने लगे। उसके अतुल पराक्रम को देखकर कुछ जीवन मुक्त हो गये। कुछ कुहाडक को कधे पर रखकर युद्ध करने का विचार करने लगे। कुछ वर्म के लगने से सतप्त हो गये, कुछ ने पादागुलि को दातो के भीतर डाल ली, कुछ राजा के हाथी के कुभस्थल को देखकर भयभीत हो गये, कुछ उसकी तलवार देखकर इतने अधिक त्रस्त हो गये कि सुरतिकाल मे पत्नी की वेणि को भी देखकर कपित हो गये। कुछ ने उसके धनुष मे इतनी वक्रता देखी कि उस वक्रता का विलास भ्रूलता मे नही था, तीक्ष्णता को स्त्रियो के कटाक्ष मे भी नहीं देखा जा सका। इस प्रकार चारो दिशाओ को जीतकर राजा ने अपने नगर की ओर प्रस्थान किया।

(9)

शत्रुओ से प्राप्त धन को याचको मे वितरित कर दिया गया और सभी राजा गण राजा श्रीधर्म को छोडकर अपने-अपने नगर लौट गये। दिग्विजयकर लौटे हुए अपने राजा को अपने नगर मे पाकर पुरजन अत्यन्त प्रसन्न हुए और वे अर्घ लेकर उसका आदर-सम्मान करने निकल पडे। पौरांगनाओ ने उसे लज्जा रूपी अजुलियो मे ग्रहण किया। नगर की शोभा दर्शनीय थी। जिन प्रतिमा को देखकर वह प्रसन्न हुआ। अपने प्रासाद मे पहुँचकर वह पचेन्द्रिय सुखों का उपभोग करने लगा। इसके बाद उसने एक दिन शरत्कालीन मेघ को देखा जो उत्पन्न होते ही नष्ट हो गया था। उसकी यह अवस्था देखकर राजा का वैराग्य हो गया और श्रीकान्त पुत्र को राज्य सौंपकर स्वय श्रीप्रभ नामक मुनीन्द्र के चरणो मे पहुँच गये। वहा उसने दिगम्बर दीक्षा ग्रहण कर तेरह प्रकार के चारित्र का आचरण कर अन्त मे सौधर्म स्वर्ग मे श्रीधर नाम का देव हुआ। देवागनाएँ उसकी सेवा मे उपस्थित रहती थी। उसकी आयु दो सागर प्रमाण थी। वहा रहते हुए उसने अपार सुख भोगा।

(10)

यहां से श्रीधर्म से सम्बद्ध कथा का प्रारम्भ होता है। धातकी खण्ड नाम का दूसरा द्वीप है। उसकी दक्षिण दिशा मे एक पहाड़ है जो इषुकार नाम से

विख्यात है। उसके शिखरो पर देव लोग विचरण करते हैं। उसके पूर्वभाग मे अलका नाम का देश है। वहा चारो ओर स्थल कमलिनी लगी हुई हैं जिनके मकरन्द से और पके कमलो की सुगन्ध से देश का हर कौना सुवासित हो रहा है। कामुक जन उसका पानकर मानो आसव पान से उन्मत्त हो रहे हैं, उस देश के मध्य में सुन्दर नदियां बहती हैं, जो प्रिय की गोद मे बैठी हुई पत्नी के समान प्रतीत होती हैं। उसका मध्य भाग भवर रूपी नाभि से विशेष अलकृत है, पत्नी जैसे सुन्दर स्तनो से मनोहारिणी लगा करती है उसी तरह नदियों का जल भी मधुर है, कमल मानों उसके नेत्र हैं, विहगावलि उसकी मेखला की शोभा है। उस देश मे कोशला नाम की नगरी है जो सभी तरह के के सुख, सौन्दर्य और गुणो से विशिष्ट है। वहां आगन मे रत्नो के फर्श लगे हुए हैं जिनमे रात्रि के समय गृह-नक्षत्र आदि प्रतिबिंबित होने लगते हैं। उन्हे देखकर नव वधुऍ अपने पतियो के आलिगन को लज्जावश छोड देती हैं। पति उस स्थिति को स्पष्ट करते है और हसकर उसका चुबन ले लेते हैं। वहाँ अभिसारिकाएँ कृष्ण पक्ष की रात्रि मे जब सचरण करती हैं तो उन्हीं का मुख-चन्द्र अपनी मुसकान की चादनी ने तुरन्त दिखाई पड जाता है। वहां के प्रासादो के शिखरो मे लगी जालियो से निकलने वाले कालागरु धूम ले मानो चन्द्रमा मे कालापन आ गया। उसी समय से चन्द्रमा मे यह कलक लगा हुआ है। उस नगरी मे अजितंजय नाम का राजा राज्य करता था ॥10॥

(11)

वह राजा अपने सद्गुणों से प्रसिद्ध था। उन गुणो से ही लोगो को प्रकाश मिला था। "इस ससार मे मेरे प्रताप को कौन जीत सकता है" यह सोचकर सूर्य सुबह बडे गर्व के साथ उदित होता है पर शाम को राजा के प्रताप से लज्जित होकर मानो अस्त हो जाता है और करडुबत् दिखाई देने लगता है। उसके गम्भीरता गुण से लज्जित होकर ही मानो लवण समुद्र काला पड गया और सूर्य अस्त हो गया। मानो उसकी भीषणता सूकर मे पहुँच गइ और उसकी भृकुलदेवी उसकी भुजा मे प्रविष्ट हो गई। उस राजा अजितंजय की अजित सेना नाम की महाराज्ञी थी जो कुल, शील, गुण और सौन्दर्य से समृद्ध थी। उसके रूप से इन्द्राणी का भी रूप हीन पड़ गया था। राजा उसके साथ रति-क्रीडा करता हुआ पचेन्द्रिय सुखो का

उपभोग करता रहा। श्रीधर देव सौधर्म स्वर्ग से चयकर उनके यहाँ पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ ।।11।।

(12)

पुत्र का नाम अजितसेन रखा गया। वह शत्रुओं रूपी चिड़ो के लिए प्रचण्ड घातक था। बाल्यावस्था मे ही उसने गुण रूपी सूर्य के तेज को प्राप्त कर लिया था। बाल्यावस्था मे ही उसने समस्त आगमो का ज्ञान पा लिया था। बाल्यावस्था मे ही उसने वृद्धो के अनुभव को हासिल कर लिया था और नीति विशेषज्ञ बन चुका था। बाल्यावस्था मे ही कुल का भार धारण करने मे धीर हो गया था और शत्रुओं के दलन मे निपुण बन गया था। बाल्यावस्था मे ही धर्म से सुसंस्कारित हो गया था और जनता के लिए शिक्षा देने के योग्य बन गया था। बाद मे राजा ने अपने पुत्र की तरुणाई को देखा और उसके गुणो की ओर विचार किया। सोचने लगा–हम धन्य है कि इतना गुणवान् पुत्र हमने पाया। यह पुत्र चिरकाल तक हमारे कुल की कीर्ति को बढायेगा। गुणवान और रूपवान पुत्र दुर्लभ होता है। वह बड़े पुण्य से मिलता है। गुणवान पुत्र से जो सुख मिलता है वह अमृत के स्नान से भी नही मिल पाता। यह सोचकर अपने वृद्ध मंत्रियो से उसे युवराज पद देने के संदर्भ मे विचार-विमर्श किया। बाद मे बुधजनो, परिजनो और अन्य मंत्रियों की सलाह के अनुसार मांगलिक विधि से उसे युवराज पद पर अभिषिक्त किया ।।12।।

(13)

इस मागलिक अवसर पर पुरजन और परिजन अत्यन्त हर्षित हुए। इसके बाद एक दिन की बात है कि राजा अजितंजय युवराज के साथ रत्नाभूषणो से युक्त सिंहासन पर बैठा था। इसी अवसर पर माण्डलीक राजाओ का मण्डल उत्तमोत्तम उपहार लेकर उससे मिलने के लिए वहां आया कि अचानक चण्डरुचि नामक जो पूर्वजन्म का वैरी था, वहा आया और उसे देखने मात्र से वह क्रोधित हो उठा। तुरन्त उसने सारी सभा को समोहितकर राजकुमार का अपहरण करके ले गया। एक क्षण के लिए उस मोहिनी विद्या के प्रभाव से राजा भी मूर्छित हो गया। उस विद्या की शक्ति जैसे ही कम हुई कि राजा सचेत हो गया। उसने वहा देखा कि सभागार राजकुमार से शून्य है। सभ्रमित होकर चारो ओर उसने गौर से देखा और नि श्वास छोड़कर सोचने

लगा–क्या यह मोह है अथवा इन्द्रजाल, स्वप्नदर्शन है अथवा मतिभ्रम कि पास में बैठे हुए भी पुत्र का नहीं देख पा रहा हूँ। यह सोचता हुआ शोक करने लगा–हा दैव ! मेरा मनोरथ बीच मे ही टूट गया। हे पुत्र ! तुम जहाँ भी हो, तुरन्त आ जाओ। तुम यह वचन दो कि इस तरह कभी अदृश्य नही होओगे। इसे प्रकार विलाप करते हुए, रोते हुए मूछित हो गया। परिजन भी हाहाकार करने लगा ॥13॥

(14)

अजितसेन ने राजा को मूछित होते हुए देखा हरिचंदन आदि केछिडकने से, चामर की हवा से राजा की मूर्छा दूर हुई। फिर वह नि श्वास छोडकर पुनः विलाप करने लगा। हे पुत्र ! तुम्हारे बिना यह जीवन भी क्या ! दैव ने मुझसे मणि छीन लिया और मैं अब बिलकुल भिखारी–सा बन गया हूँ। मुझे अमृत मिला पर अधरो पर लगाते ही पात्र टूट गया। अधे को आँखें मिलीं पर दैव ने तुरन्त उन्हे फोड दिया। इन्द्र ने अपना राज्य दिया पर दैव ने उसे छुडाकर भिखारी बना दिया। रत्नत्रय से पापों से मुक्ति मिलती है पर गुणश्रेणि से प्राणी पतित हो जाता है। मुझे कितना भी सुख मिले, पुत्र के बिना उसका कोई महत्व नहीं। पुत्र के बिना कुल अधेरे मे चला जायेगा। कुल को आगे बढाने वाला राजा कौन होगा ? इस प्रकार राजा बार-बार मूछित होता रहा। वीर हो या कायर हो, दैव इनमे कोई भेद नही करता ॥14॥

(15)

पुरजन और परिजन राजा के साथ शोक मग्न थे ही कि इसी बीच तपोभूषण नामक चारण ऋद्धिधारी मुनि आकाश से उतरते हुए दिखे। वे निर्मल चन्द्रमा के समान दृष्टिगोचर हो रहे थे। सारी सभा गर्दन उठाकर ऊपर देखने लगी। उनका तेज मण्डल आकर्षक था। ऐसा लग रहा था कि कही करुणार्द्र होकर सूर्य का बिम्ब तो नही उतर रहा हो वे। करुणा से शीतल, मेघबाहु, रत्नत्रयधारी, गुणाधिपति थे। जैसे ही मुनिराज ने पृथ्वी पर पैर रखा कि राजा ने उठकर उनकी चरण वन्दना की। अपने हाथ से आसन बिछायी और सन्तोष व्यक्त किया। हर्षित होकर अश्रु मिश्रित जल से उनके पैर धोये जो सभी के तारक हैं। और अपने हाथ से ऊचा आसन दिया जिस पर वे बैठ गये। तब राजा ने कहा–हे नाथ ! आप मेरे घर आयेयह बडे आनन्द की बात है, पर यह समझ मे नही आया कि आप जानबूझकर यहा आये, हैं या मार्ग भूल गये हैं। जो भी हो, जिस तरह दुर्भाग्यवती विरही स्त्रियो को

जनके पति के साथ समागम होने से सुरति सुख मिल जाता है उसी तरह आपके दर्शन से मुझे शिव-सुख मिल गया। हमारे दु:ख को आपने हर लिया ॥15॥

(16)

राजा के इन स्नेहिल वचनो को सुनकर मुनिराज ने आशीर्वाद दिया और हर्षित होकर कहा कि तुम्हे शोक सतप्त जानकर मैं प्रतिबोधन देने आया हूँ। तुम गुणवान हो और गुणियो पर अनुराग करने का मै पक्षधर हूँ। तुम्हारे जैसा शुद्ध भाव वाला व्यक्ति कहां मिलेगा ? यह सब जानते हुए भी शोक क्यो करते हो ? सभी ससारी प्राणियो के इष्ट वियोग और अनिष्ट सयोग समान रूप से लगे हुए हैं। बुद्धिमान व्यक्ति ऐसे प्रसगो मे विषाद से खेद-खिन्न नहीं होता। इसलिए तुम्हें शोक नही करना चाहिए। तुम्हारे पुत्र को असुर हर ले गया। कुछ दिनो मे ही वह चक्रवर्ती बनकर विपुल सपदा के साथ वापिस आ जायेगा। राजा यह सुनकर हर्षित हो गया और पुलकित होकर उसने मुनिराज की वदना की। मुनिराज भी उठकर अपने इष्ट स्थान की ओर प्रस्थान कर गये। मुनिराज के वचनो पर राजा को विश्वास हो गया और विषाद छोड़कर सतोष पूर्वक रहने लगा ॥16॥

चतुर्थ संधि

(1)

इसके बाद चण्डरुचि नामक कोपाविष्ट उस असुर ने राजकुमार अजितसेन को दोनो हाथो से चारो ओर घुमाकर फेक दिया। तब राजकुमार मनोरम नाम के गहन सरोवर मे गिरा। वहां गिरते ही मगर-मच्छ आदि जन्तुओ ने उसके ऊपर आक्रमण कर दिया जिसे उसने अपने शक्तिशाली मुक्कों और पैरों से मार-मारकर निरस्त कर दिया और अपने बाहुओ से तैरकर शैवाल को बिलोरता हुआ किनारे पहुच गया। वहा उसे सामने परुषा नामक अटवी दिखी जिसमे सुई जैसा नुकीला कास लगा हुआ था। सिहों द्वारा विदारित हाथियो के गण्डस्थलो से निर्गत मुक्ताएँ फैली पडी थी जिन पर दृष्टिपात करने से ऐसा लगता था मानो वहा के उन्नत वृक्ष शाखाओ की रगड से आकाश से तारामडल टूटकर बिखरा पडा हो। सघनता के कारण निविड अधकार था मानो चुभने के भय से ही सूर्य अपनी किरण वहां नही फेंक पाता हो। कटक वृक्षो से आच्छादित होने के कारण राजकुमार को प्रारभ मे दिशाभ्रम हो गया, पर थोडी ही देर बाद भीलो का एक मार्ग दिखा और उसी मार्ग से निर्भय होकर चल पडा। सामने ही उसे तुरन्त एक पहाड दिखाई दिया ॥1॥

(2)

पहाड के सम्मुख पहुचते ही उसे मधर शीतल पवन का सुख मिला और वह ऊपर चढ़ गया। उस अजनगिरि पर उसे शिखर के समान एक क्रोधाविष्ट पुरुष दिखाई दिया। वह अत्यन्त बलशाली था, उसके नेत्र आमिष पिण्ड के समान लाल थे, रग मेघ के समान काला था और हाथ मे प्रचण्ड मुद्गर को घुमा रहा था। राजकुमार के सामने आकर उसने कठोर वचन कहे—"तू यहाँ कैसे आ गया ? इस उपवन की रक्षा मैं करता हू। मेरी आज्ञा के बिना यहां देवेन्द्र भी नहीं आ सकता। तू मेरी आज्ञा के बिना आया है। लगता है, तुझे अपने भुजबल का गर्व है। अब मैं तुझ पर अमरासुर का चूरण करने वाले इस मुद्गर से प्रहार कर तुझे शिक्षा देता हू।" इस प्रकार की गर्वीली बातें सुनकर राजकुमार ने भृकुटि चढ़ाकर क्रोध से स्पष्ट शब्दो में उससे कहा ॥2॥

(3)

तुम कौन हो ? यदि तुझ मे कोई पौरुष है तो वचनो से भयभीत क्यो करते हो ? मै सुरो और असुरो को दलन करने वाला योद्धा हू । यदि तुझमे शक्ति हो तो आगे आओ और प्रहार करो । मैं वज्र मुष्टि के प्रहार से तुम्हे यो ही समाप्त कर दू गा । यह सुनकर उस असुर ने बडे क्रोध से मुद्‌गर से प्रहार किया । राजकुमार ने उसे निरस्त कर बाहुओ से दबोच लिया । दोनो एक दूसरे पर हाथो पैरो से प्रहार करते रहे । दोनो मल्लो मे घनघोर युद्ध होता रहा । कोई भी पीछे नही हटा । तब राजकुमार ने अपनी भुजाओ से उठाकर उसे नीचे पटक दिया । असुर ने प्रसन्न होकर अपना दिव्य रूप प्रकट किया और प्रणाम कर बोला ॥3॥

(4)

मैं भवनवासी हिरण्य नाम का देव हू । सुमेरु पर्वत पर जिन मदिरो की वन्दना करने गया था । वहा से यहा क्रीडा करने आ गया । तुम्हे देखकर मैंने कृत्रिम वेश धारण कर तुम्हारी परीक्षा ली है । मैं तुम्हारे साहस से सतुष्ट हू । हे वीर, मुझे यह कहने का साहस नही हो रहा है कि अवसर आने पर तुम मुझे स्मरण कर लेना । जिसने तुम्हारा हरण किया वह तुम्हारा शत्रु है और मैं तुम्हारा चिरकाल से मित्र हू । मैं तुम्हारे पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाता हू । पिछले तीसरे जन्म मे तुम सुगन्ध नामक देश मे श्रीपुर नगर के राजा थे । उस नगर मे शशि और सूर्य नाम के दो गृहस्थ रहते थे । एक दिन शशि सूर्य के घर गया और उसकी सारी सपत्ति सेंध लगाकर चुरा ली । वास्तविकता जानकर तुमने शशि को पकडकर उससे सूर्य की सपत्ति वापिस करा दी और उसे फासी की सजा दी । वही शशि चण्डरुचि नाम का असुर हुआ और मैं हिरण्य नाम का देव हुआ । यह कहकर हिरण्य अदृश्य हो गया । राजकुमार भी उसके प्रभाव से क्षणभर मे ही अटवी से बाहिर हो गया । इसके पश्चात् वह उस देश मे पहुचा जहा ग्राम, नगर लगातार बसे हुए थे । वहां उसने देखा कि लोग भयभीत अवस्था मे इधर-उधर भाग रहे हैं । सब कुछ नष्ट हो रहा है । यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ ॥4॥

(5)

राजकुमार ने एक थके मादे भयभीत पुरुष से पूछा—सभी लोग यहा से क्यो भाग रहे हैं ? राजकुमार के इस प्रश्न को सुनकर वह पुरुष क्रोधित और दुखित होकर बोला—क्या तुम्हे यह वृत्तान्त ज्ञात नहीं है जो तुम बार-बार पूछ रहे हो ? यह अरिजय नामक देश है । इसमे श्री सपन्न विपुल नामक नगर है जिसमे जयवर्मा नाम का राजा राज्य करता है । उसका विवाह जयश्री के साथ हुआ । उनके शशिप्रभा

नाम की पुत्री हुई जो सर्वांग सुन्दरी है। इसके बाद महेन्द्र नामक राजा ने जयवर्मा से उस कन्या के साथ पाणिग्रहण का प्रस्ताव रखा। पर चू कि नैमित्तिकों ने महेन्द्र को अल्पायुवान् बताया इसलिये राजा उसे स्वीकार नही कर सका। महेन्द्र ने अपनी मनोरथ की सिद्धि न होते देख अपने पक्ष के सभी राजाओ से मिलकर जयवर्मा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी और जयवर्मा को मारकर नगर को घेर लिया। नगर के बहुत से प्रदेश उजाड दिये। इसलिए भयवीत होकर लोग यहा से भाग रहे है। राजकुमार अजितसेन यह सुनकर हसा और प्रसन्न होकर विपुल नगरी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग मे महेन्द्र की सेना ने उसे रोका पर वह आगे बढता ही गया ॥5॥

(6)

सेना द्वारा रोके जाने पर भी राजकुमार को बढते देख सैनिको ने उससे अपमानजनक शब्द कहे और कहा कि राजा महेन्द्र आज्ञा का उल्लघन करने वाले अपने पुत्र को भी नही छोडता। तब राजकुमार ने उसकी चतुरगिणी सेना को भी तृणवत् मानकर उनमे से किसी एक के हाथ से धनुष छीन लिया। बस, युद्ध प्रारम्भ हो गया ॥6॥

(7)

दोनो ओर से बाण वर्षा प्रारभ हो गई। कुछ सैनिक क्षणकाल मात्र से गिर गये, कुछ मुष्टिका प्रहार से हत हो गये। वस्तुत सेना रूपी समुद्र के लिए राजकुमार मदराचल था, सैनिक रूपी जहरीले फणिकुलो के लिये गरुण था, नभ मण्डल के लिये सूर्य था, तृण समूह के लिए स्फुलिंग था, कु जरगणो के लिए सिह था। इस तरह सेना को ध्वस्त कर वह राजा महेन्द्र की ओर दौडा। दोनो मे घमासान युद्ध हुआ। अत मे राजकुमार के बाण से उसकी मृत्यु हो गई। इसके बाद राजा जयवर्मा ने जय-दु दुभि बजवाई, कुमार का आलिंगन किया और वहां से सभी बाहर निकल गये ॥7॥

(8)

तुम मेरे अकारणबन्धु हो गये। निर्मल वंश वाले तुमने मेरी सहायता की। भयकर दावानल लग जाने पर जिस तरह मेघ आ जाते है उसी तरह तुमने मेरा दु ख हरण किया। ठीक ही है—पृथ्वी संसार का संमर्दन सहती है, तरुगण अपने फलो का भार सहते हैं। इनके सारे उद्योग परोपकार के लिए होते हैं। बदले मे इन्हे क्या मिलता है ? राजकुमार ने कहा—यह सब पुण्य विपाक है। बाद मे दोनों कुसुम रथ पर चढ़े और राजपथ पर चलते हुए नगर मे प्रवेश किया। नगर खूब

सजाया गया। नगर बन्धुओं की नयन-कमल पंक्तियां लगातार राजकुमार के ऊपर गिरती रहीं, मंगलाचार किये उन्होंने और अपने मन-मंदिर में सहर्ष उसे प्रतिष्ठित किया। राजकुमार जयवर्मा के साथ कुछ दिन वहीं रहा ।।8।।

(9)

एक दिन की बात है, शशिप्रभा की एक सखी जो अंतरंग के भावों को समझने में दक्ष थी, महादेवी के प्रासाद गयी और वहां राजा जयवर्मा से विनम्रता पूर्वक नमस्कार कर कहा—हे राजन्! जब से आपकी पुत्री शशिप्रभा ने महेन्द्र को मारने वाले युवक अजितसेन को देखा तभी से उसके मदन ज्वर के लक्षण दिखाई देने लगे। उसने चन्दन का लेप छोड़ दिया है। मौक्तिक मणिमाला गिर गयी है, भोजन से अरुचि हुई है, अश्रुखण्ड सीने पर गिरकर तत्क्षण खौलने लगते हैं, मुख पर मंडराने वाले भौंरे धुएं से लगने लगे हैं, हिम-पिण्ड भी तप्त लगने लगा है, सारे शीतल उपकरण जलने लगे हैं, "इसने मुख की शोभा से मेरी शोभा चुरा ली है मानो यह सोचकर चन्द्रमा क्रुद्ध हो गया है, कोकिल शब्द भी कष्टकारी हो गये हैं, नीलोत्पल भी दुःखदायी बन गये हैं। सुकुमार राजकुमारी राजकुमार के कारण ही जीवित है। उसी के रूप को चित्राकार करती रहती है। इसलिये इस विषय में यथोचित कार्य कीजिये ।।9।।

(10)

शशिप्रभा की सखी के ये वचन सुनकर राजा जयवर्मा पुलकित हो गया। अजितसेन भी कामाग्नि से दग्ध हो गया। जयवर्मा ने तुरन्त नैमित्तिक को बुलाया और शुभ दिन में वाग्दान (सगाई) कर दिया। अजितसेन भी विवाह के दिन गिनने लगा। इसके बाद एक दूसरी घटना घटी। दक्षिण दिशा में एक विजयार्ध पर्वत है जिस पर रविपुर (आदित्यपुर) नामक एक मनोरम नगर है। उसमें धरणीध्वज नामक राजा राज्य करता था। वह विद्याधरों का स्वामी था। उसने विपक्षी विद्याधर राजाओं को अपने वश में कर लिया था। एक दिन अचानक प्रियधर्म नामक ब्रह्मचारी (क्षुल्लक) गगन मार्ग से आये। वे कोपीन वस्त्रधारी थे, उनका शिर मुण्डित था और दिगम्बर साधु के चिन्हों से चिन्हित थे। राजा ने सिंहासन से उठकर उनका पूरा आदर-सत्कार किया। उस ब्रह्मचारी ने कहा—हे राजन्! मैं व्रतसेवी हूं, घर-परिवार, बंधुजनों को छोड़कर साधु हुआ हूँ। फिर भी न जाने क्यों, मन में तुम से बहुत अधिक स्नेह है, मोह है। इसलिये सुवर्ग नामक मुनि से तुम्हारे विषय में जो कुछ सुना है उसे तुम्हारे हित में कह देना उचित समझता हूं। अरिंजय नामक देश में एक विपुल नाम का नगर है जिसमें जयवर्मा नामका राजा राज्य करता है।

उसकी शशिप्रभा नाम की एक कन्या है, जो लावण्य से परिपूर्ण है। उसका जो भी पति होगा वह तुम्हें मारकर भारत का चक्रवर्ती होगा। इस बात को सुनकर धरणीध्वज सतप्त हो गया। उसने ब्रह्मचारी को विदाकर अपने सामन्तो को बुलाया और विचार-विमर्श कर विपुल नगरी पहुच गया ॥10॥

(11)

सारा गगन मार्ग मणिमेखलाओ से भूषित विमानो से आच्छादित हो गया। विद्याधर पति धरणीध्वज ने तब वचनकला मे निष्णात उद्धत नामक दूत को बुलाया और सब समझाकर उसे जयवर्मा के पास भेजा। जयवर्मा नृपति के पास पहुचकर प्रारम्भ मे सुन्दर शब्दो मे उसकी प्रशसा की और बाद मे अपना मनोभाव व्यक्त किया। उसने कहा—हे राजन्! मैं धरणीध्वज राजा का दूत हू। उनका सन्देश देने आपके पास आया हू। आपने अपनी शशिप्रभा नामकी पुत्री को ऐसे व्यक्ति के साथ विवाह करने का निश्चय किया है जिसकी जाति और कुल अज्ञात है, परदेशी है। अत अपना हठ त्याग कर उसे विद्याधरपति धरणीध्वज के साथ विवाहित कर दें।" जयवर्मा ने दूत के वचन सुनकर कहा—तुम कुशल दूत हो, दूत का मारना उचित नही। तुम अपने स्वामी अजितसेन से जाकर कह दो कि निर्णय अपरिवर्तनीय है। उसमे यदि हठात् ग्रहण करने की शक्ति है तो शीघ्र चला आये। विचार क्यो कर रहा है? बाद मे यह बात जयवर्मा ने अजितसेन को बता दी ॥11॥

(12)

जयवर्मा को सुनकर दूत अपने स्थान पर चला गया। इधर जयवर्मा ने राजकुमार से कहा कि यह बात तुम्हे अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि तुम्हारे पास भुजबल है जबकि प्रतिपक्षी विद्याओ से बलिष्ठ है। सग्राम मे उसे जीतना अत्यन्त कष्टसाध्य है। यह सुनकर अजितसेन ने हिरण्य नामक देव का स्मरण किया। स्मरण करते ही वह देव दिव्यास्त्रो से सज्जित रथ लेकर आ पहुचा। राजकुमार उसमे सवार हो गया और हिरण्य सारथी बनकर उसमे बैठ गया। हिरण्य ने कहा—आप चिन्ता न करें। वे भले ही विद्याधर हो पर हम उन्हें समाप्त कर देंगे। राजकुमार रथ लेकर प्रचण्ड बाण वर्षा करता हुआ आगे बढ़ता गया। सारे असख्य विद्याधर बाण, चक्र, भाले आदि अस्त्रो से राजकुमार पर आक्रमण करने लगे। पर राजकुमार की अदृश्य बाण-वर्षा देखकर वे आश्चर्यचकित रह गये ॥12॥

(13–14)

विद्याधर की सेना और राजकुमार अजितसेन के बीच घमासान युद्ध चलता रहा। राजकुमार की तीक्ष्ण बाण वर्षा के सामने कोई टिक नहीं सका। विद्याधर

की सेना लगभग समाप्त हो गई। तब धरणीध्वज कोपाविष्ट होकर युद्ध करने आगे बढ़ा। अपनी सेना को मरते हुए देखकर धरणीध्वज को बडी चिन्ता हुई। उसने दिव्यास्त्रो को समेट कर तामम अस्त्र छोडा जिससे अन्धकार व्याप्त हो जाता है। उसके निवारणार्थ राजकुमार ने सूर्यास्त्र का प्रयोग किया। इसके बाद अजितसेन ने धरणीध्वज द्वारा प्रयुक्त भुजगास्त्र को अपने गरुणास्त्र से, आग्नेयास्त्र को मेघास्त्र से, पर्वतास्त्र को वज्रास्त्र से रोका। इस तरह धरणीध्वज के सभी अस्त्र अजितसेन ने व्यर्थ कर दिये। तब उसे तीव्र क्रोध आया और म्यान मे तलवार निकालकर अजितसेन की ओर झपटा। अजितसेन ने अमोघास्त्र से उसे निरस्त कर राजा की जीवन-लीला समाप्त कर दी। राजा के मरते ही विद्याधर भाग गये। इसके बाद हिरण्य को विदाई देकर वह विपुलपुर वापिस आ गया। नगरी राजकुमार के स्वागत मे खूब सजाई गई, जयध्वनि की गई, चमर ढुलाये गये, मगलाचार किया गया और फिर उसे नगर मे प्रवेश कराया गया। बाद मे जयवर्मा ने बडे धूमधाम के साथ शुभ मुहूर्त मे अपनी कन्या शशिप्रभा के साथ राजकुमार का विवाह कर दिया। कुछ दिन वह वहा रहा और बाद मे अपनी नगरी को प्रस्थान किया ॥14॥

(15–16)

पुत्रागमन के समाचार सुनकर हर्षित-रोमाचित होकर पिता अपने परिजनो के साथ नगर के बाहर अजितसेन स भेट करने आया और उत्सव पूर्वक अपने राज्य पर प्रतिष्ठित किया। इसके बाद पूर्व पुण्य कर्म के प्रभाव से चक्रवर्ती अजितसेन के यहा शत्रुओ को दमन करने वाले चौदहरत्न उत्पन्न हुए। उनमे चक्ररत्न आदि रत्न हजारो यक्षो द्वारा रक्षित था, ज्येष्ठ मास के सूर्य के समान तेजवन्त था। खड्गरत्न शत्रुओ के लिए महाकाल सर्प था। वह तिमिर विनाशक था, असह्य किरणो वाला था, वस्तु प्रकाशक था और अमोघ था। इसके बाद अजितसेन के यहा छत्ररत्न प्रगट हुआ जो बारह योजन तक जलवर्षा को रोकता है। चर्मरत्न पैदा हुआ जो गभीर समुद्र जल के तैरने आदि मे उपयोगी होता है। चूडारत्न पैदा हुआ जो काले और गाढे अन्धकार को दूर करने मे समर्थ होता है। गजरत्न प्रगट हुआ जो सुमेरु जैसा था और जिससे मदजल का प्रवाह बह रहा था। दतरत्न ऐसा था जिससे हसने पर मणि जैसी कान्ति स्फुटित होती थी। अश्वरत्न उत्पन्न हुआ जिसका वायु के समान प्रचण्ड वेग था, तेज था। दण्डरत्न कुलिशवत् था और वज्रशिला को भेदने वाला था। फिर बहु विद्याए उत्पन्न हुई जो सभी तरह के विघ्नो का विनाश करने वाली थीं। सेनापतिरत्न प्रवर पराक्रम और गुणो का परिचायक था। स्त्रीरत्न स्त्री गुणो से भूषित तथा भोगासक्त मनुष्यो को मन भावन था। शिल्पिरत्न प्रासाद निर्माण मे दक्ष था। गृहपतिरत्न आय-व्यय रखने मे तथा घर के कार्यों मे दक्ष था। इस तरह चक्रवर्ती अजितसेन को

चौदह रत्नो की प्राप्ति हुई। इसी तरह उन्हे नव निधिया भी उपलब्ध हुई जो यथेच्छ वस्तु प्रदान करती थी ।।16।।

(17)

इन नौ निधियौ मे पाण्डुक निधि सभी प्रकार के धान्यो की पूर्ति करती थी। पिङ्गल निधि सुन्दर ग्राभूषणो को प्रदान करती थी। काल निधि से छहो ऋतुग्रो मे उत्पन्न होने वाले फल चक्रवर्ती को यथेच्छ मिला करते थे। शख निधि के माध्यम से मृदग, वीणा ग्रादि चारो प्रकार के वाद्य उपलब्ध हो जाते थे। पद्म निधि सभी समयो के ग्रनुकूल सूक्ष्म ग्रौर सु दर वस्त्र प्रदान करती थी। महाकाल निधि मणि, स्वर्ण ग्रादि से निर्मित मनोहर बर्तन देती थी। माणव निधि से शत्रुग्रो का वध करने वाले सभी प्रकार के ग्रस्त्र मिल जाते थे। नैसर्प निधि शयनासन की व्यवस्था करती थी। सर्वरत्न निधि रत्नो ग्रौर मणियो से ग्राकाश मे इन्द्रधनुष की शोभा फैलाया करती थी। इन निधियो से चक्रवर्ती की चिन्ता दूर हो गई। उनकी 96 हजार रानिया थी। 32 हजार कुशल सामन्त थे जिनसे शुक्र भी भयवीत होता था। 360 सूयार, 3 करोड नौकर, 84 लाख हाथी, इससे तिगुने रथ, 18 करोड़ घोडे, तीन करोड गाये ग्रौर 32 हजार मण्डल थे। इतनी सारी सपत्ति होने के बावजूद चक्रवर्ती मे किसी प्रकार का दर्प नही था। वह भलीभाति शासन करता रहा ।।17।।

(18–19)

चक्रवर्ती ग्रजितसेन के पिता ग्रजिनजय ने राजा महाराजाग्रो की उपस्थिति मे ग्रपने चक्रवर्ती पुत्र का पट्टाभिषेक किया। सारी प्रजा ग्रत्यन्त हर्षित हुई। इसके बाद ग्रजितजय पुत्र ग्रजितसेन चक्रवर्ती के साथ बडे हर्ष पूर्वक स्वर्णप्रभ तीर्थंकर की वन्दना करने चल पडे। समवशरण मे तीर्थंकर जिनेन्द्र को देखकर भक्ति पूर्वक वन्दना की, त्रिप्रदक्षिणा की ग्रौर पचाग प्रणाम किया। बाद मे हाथ जोडकर विनय भाव से उसने प्रश्न किया।

हे भगवान्! यह ससारी जीव भीषण भव प्रपच मे पडा हुग्रा है। वह शुद्धावस्था कैसे प्राप्त कर सकता है? जीव कर्म से स्पष्टत बध जाता है। तब उसका सगम भिन्न गुणो के साथ कैसे हो जाता है? बध ग्रवस्था मे उसे सुख कैसे मिल सकता हैं? विशुद्ध स्थिति कैसे पायी जा सकती है? ग्राप परमेष्ठी हैं, सर्वज्ञ हैं। इन सदेहो को कृपया दूर करें। स्वयप्रभ तीर्थंकर ने कहा। बोलते समय उनका ग्रधर स्पन्दन रहित था ग्रौर उनकी वाणी एक योजन पर्यन्त सुनाई पड रही थी। मिथ्यात्व, ग्रवरति, प्रमाद, कषाय, ग्रौर योग ये पाच कर्मबन्ध के कारण है।

आत्मा इनसे जल्दी बंध जाता है। आत्मा मूलत निर्मल है, विशुद्ध है, पर आश्रव के कारण उसका यह स्वभाव आवृत हो जाता है और वह पीड़ा पाता है ॥19॥

(20)

पच्चीस कषायो मे आसक्त यह जीव कर्म से बंध जाता है। चार कषायो (क्रोध, मान, माया, लोभ) तथा पन्द्रह योगो के कारण वह भव भ्रमण करता रहता है। इस प्रकार कर्म से बधा यह शुद्ध जीव खल्व-बिल्व न्याय से बड़ी मुश्किल से नर जन्म पाता है। खल्वाट बेल वृक्ष के नीचे जाय और बेल उसके सिर पर गिरे यह बहुत कम होता है। इसी तरह नर जन्म भी दुर्लभ होता है। उसके भी आर्य खण्ड मे जन्म मिलना और फिर शुभ कुल, जाति पाना और भी कठिन है। इसके मिलने पर भी जीव सासारिक बधनो मे बधा रहता है। काल-लब्धि आने पर, कर्म ग्रन्थि भेदने पर सम्यक्त्व प्राप्त हो जाने पर शुद्ध अवस्था मिल पाती है। सम्यक्त्व कभी कभार ही मिल पाता है ॥ 20 ॥

(21)

जैसे-जैसे कर्मपाश टूटता चला जाता है आत्मा की विशुद्ध अवस्था वापिस आती जाती है। एक समय ऐसा आता है कि जीव कर्मों से पूर्णत मुक्त हो जाता है और केवल ज्ञान प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार जीव ससार के दु खो का नाश कर परम पद प्राप्त करता है। स्वयप्रभ तीर्थंकर का यह उपदेश सुनकर अजितजय राजा ससार मे विरक्त हो गया, पुत्र, कलत्र आदि कामोह छोड दिया, मन निर्वेद को प्राप्त हो गया, और उसे यह समझ मे आ गया कि ससार के दु खो से विमुक्त होने का उपाय है जिनेन्द्र भगवान के चरणो मे पहुच जाना। यह सोचकर अजितजय ने तेरह प्रकार का चरित्र ग्रहण किया बारह व्रतो और तप प्रकारो का पालन किया। इस प्रकार अजितजय ने कर्म बन्धनो से मुक्ति पा ली। इधर अजितसेन ने श्रावक के बारह व्रतो को धारण किया और क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त किया। इसके बाद वे अपने नगर वापिस आ गये ॥ 21 ॥

पंचम संधि

(1–2)

इसके बाद अजितसेन चक्रवर्ती समस्त सेना के साथ दिग्विजय के लिए निकल पड़ा। सर्वप्रथम वह पूर्व दिशा की ओर बढ़ा। दुदुभी के शब्द से सभी भयभीत हो रहे थे। सेना के सबसे आगे चक्ररत्न था। उसके बाद अश्वसेना चल रही थी। बढ़ते-बढ़ते वह समुद्र तट पर पहुचा। वहा प्रभास देव ने उसका आदर-सत्कार किया। वहा से चौबीस योजन पर मागध देव का शासन था। वहाँ चक्रवर्ती ने बारह योजन में अपनी सेना फैला दी और बारह योजन दूर बाण वर्षा प्रारंभ कर दी। मागध ने नामांकित बाण देखकर भयवीत होकर अपने मंत्रियो से परामर्श किया और विचित्र रत्नो का उपहार देकर स्वागत किया। मागध को विनीतकर फिर चक्रवर्ती दक्षिण दिशा मे गया जहा वरतनु देव ने उसकी उपासना की। इसके बाद अजितसेन ने पश्चिम और वायव्य दिशाओ मे भी दिग्विजय प्राप्त की। वहा के विद्याधरो और देवो को वश मे किया। उनकी सेना को प्राप्त कर उसने अपना बल और बढा लिया। सारे आर्य और म्लेच्छ खण्ड को जीत लिया जिसमे उसकी सेना को कोई हानि नहीं उठानी पडी। इसके बाद वह अपने नगर अयोध्या वापिस आ गया ॥1–2॥

(3)

इस तरह पांच म्लेच्छ खण्ड और एक आर्य खण्ड अर्थात् छः खण्ड वाले भरतक्षेत्र को जीतकर अजितसेन ने चक्रवर्ती पद पाया और जयश्री प्राप्त की। इस बीच वसंत ऋतु आ गई जो विरहिणियो के हृदय को विदीर्ण करने वाली थी। हिम दग्ध सकल उपवनो मे हेमन्त ऋतु का प्रभाव भी होने लगा। सर्वत्र मदन के बाणो की वर्षा होने लगी। सरोवर मे सुदर कमल विकसित हो गये, निश्चल हो गये। आम्र मंजरियो को देखकर विरही जन मरणोन्मुख हो गये। कोयल की कूक सुनकर मानिनी दुस्सह काम की शक्ति को समझ गई। सर्वत्र मलयानिल का संचरण हो गया। स्त्री के पाद-प्रहार से अशोक विकसित होता है पर कामिनियों ने सभी को शोक रहित कर दिया और अशोक यों ही विकसित हो गया। बकुल वृक्ष

स्त्री के गण्डूष से पुष्पित होता है पर इस समय उसने भी उस नियम का पालन नही किया। सर्वत्र मधुमास ने विषमी जनो को सतप्त कर दिया । चारो ओर पुष्प प्रफुल्लित हो उठे और भ्रमर गुञ्जित होने लगे ।।3।।

(4–5)

इसके बाद राजा केलिवन मे चला गया। वहा देखा कि कुछ स्त्रियां अपने पदरज से वन को धवलित कर रही हैं, कुछ वनमाला को अपने वक्षस्थल पर डाल रही हैं मानो काम प्रवेश के लिए तोरण द्वार बना रही हो । जैसे ही कामाग्नि से पीडा हुई कि मानियो का मान भग्न शीघ्र होने लगा। कुछ स्त्रिया चपकमाला को शिर पर लगाये हुए थी मानो काम ताप से वह जल गया हो । इस प्रकार वन मे विहार करते हुए केलि करते हुए राजा बडा आनन्दित हुआ। बाद मे वह सरोवर के पास पहुचा जहा मधु मलया-निल बह रही थी। वहा घनसेल के भार से कुछ अवलाजन पथ पर चलते हुए खीझने लगी । कुछ की रसना रास्ते मे चलते हुए बीच मे ही ढीली हो गई जिसे ठीक करने के लिए उन्हे खडा होना पडा। पहले जो अदर नग्नावस्था मे थी उसने दौडकर पति का आलिगन किया। जैसे ही उन्होने वहा पुरुष को देखा कि वे विवर्तिन हो उठी। जल मे उनके स्तन-कुम्भो का विस्तार देख कर चक्र-युगल जल छोड कर बाहर निकल पडे । उनकी सलील गति देखकर हसो ने सरोवर छोड दिया । बहुघनसेल से वह सरोवर सुगधित हो गया। वहा फेन ऐसा दिखा जैसे हास ही बिखेर रहा हो । उन्होने जल से नयनो का अजन धोया जो ऐसा लगा जैसे कमल मानो अपनी काति छोड रहे हो। उनके चलने पर पैर से महावर धरती पर लग गया जो ऐसा लगा जैसे रक्तकमल सौरभ लिए उठ खडा हो। इस तरह नारियो के साथ जल-क्रीडा करते हुए राजा का समूचा दिन निकल गया और सूर्य अस्त हो गया ।।4–5।।

(6)

इसके बाद जल-क्रीडा से निवृत्त होकर राजा प्रासाद मे गया जहाँ उसे कामिनियो ने घेर लिया। प्रतापी सूर्य को भी जब अस्त हो जाना पडता है तो फिर गर्व करना निरी मूर्खता है। रवि-रथ का तुरग प्रस्थान करते ही रात्रि का मुख खुलने लगा। नभ तल पर रुधिर-सा आच्छादित हो गया जिसे सध्या कहा जाता है। सूर्य समुद्र मे छिप गया । तुरन्त नारायण प्रकट हो गये। मानो विविध उपकारो का स्मरण कर दिन सूर्य के साथ ही अस्त हो गया हो । चक्रवाक पक्षियो के जोडे दु खी होने लगे। चन्द्र की धवलता से भयवीत होकर अन्धकार छिप गया। दीपक ने मानो अन्धकार को पीकर अपने हृदय मे छिपा लिया हो और उसे कज्जल के बहाने धीरे-

धीरे छोड रहा हो । अपने प्रिय के विरह से कमलों ने नेत्र बन्द कर लिए । हृदय मे कामाग्नि का संताप बढ़ने से स्वैरिणी अपने प्रिय के घर सुविधा पूर्वक जाने लगी ।।6।।

(7)

पहले जिस नायिका ने अपने प्रिय से गाढालिंगन किया वही बाद मे किसी प्रसग पर कोपाविष्ट होकर आलिंगन मुक्त हो गई। शशि कामियो की ईर्ष्या को जान कर ही मानो नभ-तल से जल में संचरण करने लगा । निर्मल चन्द्र ने नभ का भक्षण कर हृदय मे छिपा लिया जो उसके लाछन के रूप मे अभिव्यक्त हो रहा है । चन्द्र नारियो के मुख से मधु उडेलता है यही सोचकर अन्धकार ने उसे आच्छादित कर लिया । कामाग्नि से संतप्त होने पर नायिका जब अचेत हो गई तो उसकी मूर्छा दूर करने के लिए उसकी पीठ पर चन्दन का लेप लगाया गया । चन्द्रमा ने यह देखकर कुसुम के छल से किरणे बिखेर दी । उद्यान मे भ्रमर भुनभुन आवाज करते हैं । चन्द्र मानो अपने अन्धकार रूपी बन्धु के नष्ट होने पर रुदन कर रहा है । सकल भुवन मे चन्द की धवल किरणे फैली हुई है । लगता है, हर्षित होकर मदन अपना हास बिखेर रहा हो । कटाक्षो से निकले तीखे बाणों को चन्द्र ने मानो अमृत कुम्भ मे भर लिया हो । किरणो के माध्यम से उसका अमृत झर रहा है । स्त्री के मान रूपी पर्वत को चन्द्र ने वज्रानल से चूर्ण-चूर्ण कर दिया । इस प्रकार चन्द्र को विविध आयामो से देखकर आनंदित होकर कामिनियो ने अपने प्रियतम के मन को बेध डाला ।।7।।

(8)

कोई नायिकाए हरिचंदन से अंग लेप कर रही थी मानो अमृत ने प्रवेश कर लिया हो। कोई हारावली को अपने गले मे डाल रही थी लगता था, मुख चन्द्र तारपंक्ति को ग्रहण कर रहा हो । कोई कर्णयुगल मे कुण्डल धारण कर रही थी मानो मंदन के मुखरथ मे चक्र लगा रही हो । कुछ कमर मे मेखला को धारण कर रही थी मानो काम के मंदिर मे तुगसाल लगा रही हो । कुछ स्वच्छ वस्त्र पहने हुए थी जिनसे शरीर सुरभित हो रहा था । कहीं कालागुरु धूप जल रही थी उसके धूम के छल से, लगता था, विरह के दुख से मृत नायिक को शापित किया जा रहा हो । राजा नायिकाओ के इस विलास को देखकर प्रफुल्लित हो गया । बाद मे वह घर गया और शशिप्रभा के साथ सभोग किया । इस तरह सारे समय काम वासनाओ की तृप्ति करते-करते वृद्धावस्था आ गई । बाल पक गये फिर भी पचेन्द्रिय सुखो के उपभोग को उसने नही छोडा। सुरति का आनंद लेते हुए राजा को गहरी नींद आ गई और बाद मे दीपक को कपित करने वाला शिशिरानल प्रवाहित होने लगा ।।8।।

(9)

प्रभात होते ही मागलिक वाद्य बजे और फिर स्तुति पाठको ने शीघ्र ही अन्दर प्रवेश कर राजा को रात्रि समाप्त होने की सूचना इस प्रकार दी । हे राजन् । अपनी प्रिया के बाहुपाश से निकलकर शय्या को छोडो । बाहर झाककर देखो – जो भौंरे रात्रि मे बद हो गये थे, छिप गये थे वे उन कमलो से दु ख त्याग करते हुए बाहर आ रहे है मानो अन्धकार को वेध कर रहे हो । मुर्गे की आवाज सुनकर ऐसा लग रहा है जैसे वह कह रहे है कि चित्त की कलुषता छोडो और कोमलता धारण करो । नल रूपी तस्करको नष्ट कर पूर्वाचल मे सूर्य की किरणें निकलने लगी । वन के विद्रुम ऐसे लग रहे हैं जैसे सूर्य-बिम्ब के पके फलो को ही वे धारण कर रहे हो । रतिघर के गवाक्षो से सूर्य की किरणें प्रवेश करने लगीं मानो सतप्त मदन क्रोधित हो रहा हो । घर का हर भाग सूर्य के प्रकाश से जगमगा उठा । उसी समय मगल वाद्यो से राजा की निद्रा टूटी और वह जाग उठा । दैनिक क्रियाओ से निवृत्त होकर उसने जिन पूजा की और दानमयी सिंहासन पर जा बैठा । तब लोगो को ऐसा लगा जैसे मण्डप मे चन्द्र आ गया हो । उसी समय सामन्तो, मन्त्रियो, आदि ने आकर प्रणाम किया और सुमधुर वचनो से वदनाकर सर्वावसर नामक सभा मण्डप मे बैठ गये ।।9।।

(10)

तदनन्तर अजितसेन ने अपनी सेवा के निमित्त आये एक गजराज को देखा । वह गजराज अत्यन्त बलवान था । राजा ने उससे क्रीडा करने के लिए अपने वीरो को सकेत किया । राजा की आज्ञानुसार एक ने उस गजराज की सू ड पर मुक्के का कठोर प्रहार किया, दूसरे ने दूसरी ओर से आरी चुभा दी, किसी ने लोढा मार दिया । इस तरह ये वीर पुरुष उस गजराज को युद्ध की शिक्षा दे रहे थे । गजराज क्रुद्ध हो उठा था । इसी बीच एक व्यक्ति बीच मे आ गया । हाथी ने आगे सूड फैलाकर उसे पकड लिया और धरती पर पटक दिया । गिरते ही उसके अग प्रत्यग चूर-चूर हो गये, हड्डिया टूट-टूटकर बिखर गई ।।10।।

(11)

उस पुरुष को मृत्यु-मुख मे जाते हुए देखकर राजा सतप्त हो गया और वैराग्यभाव से सोचने लगा—यह ससार-समुद्र बड़ा भीषण है । यहा कोई भी वस्तु शाश्वत नही है । मरण अवश्यम्भावी है । जो उत्पन्न होना है वह मरता अवश्य है और फिर भव-भ्रमण करता है । ससारी व्यक्ति इस क्षण भगुर देह को भी अपना

मानकर उसमे ग्रासक्त रहता है। नारी के रूप-सौन्दर्य को देखकर काम बाण से बिद्ध होता है और उसका सयोग पाकर अपने आपको सुखी मानता है। इसलिए अब मैं ससरण के सभी मूल कारणो को समाप्त करूगा। यह सोचकर विचार करने लगा और कषायो का उपशम करने लगा। इसी बीच द्वारपाल ने सूचना दी ।।11।।

(12)

हे देवाधिदेव ! ख्याति सपन्न गुणप्रभ नामक मुनिराज अपने सघ सहित शिवकर नामक उद्यान मे पधारे हुए हैं। वे पचमहाव्रतो को धारण करने वाले हैं। उन्होने पचेन्द्रिय विषय-द्वारो का सवर किया है। उनके पच ज्ञानो से मानो दिनकर प्रकाशित हो रहा है। पच निर्ग्रन्थो मे वे श्रेष्ठ हैं। पच परमेष्ठियो की ग्राराधना करने मे व्यस्त हैं। पच प्रकार के शरीरों को धारण करने वाले हैं। पाचो भवो के स्वरूप को उन्होने अच्छी तरह जान लिया है। पाँचो मिथ्यात्वो का उन्होने विनाश कर दिया पच स्वाध्यायो का वे परिपोषण कर रहे हैं। पच समितियो का परिपालन कर रहे है। पचास्तिकायो का उन्हे अच्छा ज्ञान है। पाचो जीवसमासो का वे रक्षण करते हैं। पचाश्रवो के स्वरूप को जानकर चिंतन करते हैं। पाचो ग्राचरणो का पालन करते है। पाचो बाणो का सहार करते है। पचमेरुग्रो की वदना करते है। पचम गति को सुख रस कह अनुभव करते हैं। पच अनुत्तर वासियो द्वारा पूजित है। पच मिथ्यात्वो से वर्जित हे। पच स्थावर से जीवो पर दया करते है और पच निद्राग्रो को उन्होने जीत लिया है। राजा ने उसकी इस बात को सुनकर प्रसन्नतापूर्वक वनमाली को सम्मानित किया ।।12।।

(13)

राजा उद्यान मे पहुचा और वहा मुनिवृ द को देखा कि वे राग-द्वेष से मुक्त थे, गुणो से महान थ, अन्तर-बाहर से निर्मल थे, बाह्य अभ्यतर तप से उनका गात्र कृश हो गया था, पुण्य-पाप बधो से मुक्त थे सविपाक-अविपाक निर्जरा से कर्मों की निर्जरा की थी, इन्द्रिय-प्राण सयम के माध्यम से परम धर्म का पालन कर रहे थे, नरक तिर्यञ्च गतियो से मुक्त थे, उच्च-नीचगोत्र कर्म को भी उन्होने नष्ट कर दिया था, स्कन्ध-परमाणु के भेद से पुद्गल के स्वरूप को जानते थे, सकल-निकल सिद्धो की वदना करते थे, साता-असाता वेदनीय कर्मों का उन्होने क्षय कर लिया था, वे आत्म स्वभाव को भलीभाति जानते थे, सम्यक्त्व को भी पहचानते थे, मन-वचन-काय सवर से दृढ थे, स्त्री-पु-नपु सक वेदो से दूर हो गये थे, त्रिगुप्तियो का परिपालन करते थे, त्रिमूढ़ताओ से दूर थे, तीनो गुणव्रतो से युक्त थे, तीनो कालो और लोको का प्रत्याख्यान कर दिया था, रस-ऋद्धि-तप की गौरव छाया से मुक्त थे, तीनो

शल्यो को भी उन्होने छोड दिया था, तीनो दडो से भी वे मुक्त थे और तीनो शुद्धियो से उन्होने आत्मस्वभाव को शुद्ध किया था। इस प्रकार मुनिवर को देखकर उनके गुणो से आकृष्ट होकर राजा ने उनकी चरणवदना की और आत्मस्वभाव का भावन किया, पापो से मुक्त हुआ और गुण-श्रेणी चढ गया ॥13॥

(14)

राजा ने निवेदन किया-हे मुनिवर ! हमारे पापकर्मों का विनाश कीजिए। हमारे नेत्रो को सफल बनाइए और मनोरथ पूर्ण कीजिए। आज हमारे मनुष्य जन्म को सफल बनाइए, हमारे घोर कर्मों का विनाश कीजिए, हमने आज जो चिंतामणि पाया है वह व्यर्थ न चला जाये। इसलिए हे स्वामिन ! इस ससार-सागर के दुखो से मुक्त कीजिए और जिनदीक्षा देकर प्रसन्न होइए। आप करुणा सागर और गुणमहान् हैं। राजा की यह बात सुनकर मुनिवर ने राजा के मन की परीक्षा करने की दृष्टि से पूछा-हे राजन् ! कमल पत्र किसी तरह का कठोर भार नही सह सकता। तुम्हारा शरीर सुकुमाल है। अभी तक तुमने कभी ककड-मिट्टी को नही सहा है। शिरष कुसुम-सा यह तुम्हारा सुकुमाल देह जिनदीक्षा जैसे दुखद और कठोर तप को कैसे सहन कर सकेगा ! जो शरीर हरि चदन का लेप लेता रहा हो वह रज का भार कैसे ग्रहण कर सकेगा ? जो हस-तूल के पलग पर सोया हो उसका चित कठोर तल पर कैसे लगेगा ? अभी तक तुमने सुस्वादु भोजन किया उसी मे सुख माना अब दुखो का घर, देखने मे असुदर जिनदीक्षा को क्या ग्रहण करने की इच्छा कर रहे हो ? ॥14॥

(15)

राजा ने मुनिवर की बातें सुनकर कहा कि हे मुनिवर ! इस जैनेन्द्री कठोर तप का आचरण करने के लिए मै कटिबद्ध हू। मैने अभी तक सकल सुखो का उपभोग किया है पर नरक के दुख भी भोगे है। कभी चदन का लेप किया तो कभी दुर्गंध मे अवगाहन किया, कभी चामर ढुले तो कभी तप्त मुद्गर पड, कभी रत्नासन पर बैठे तो कभी हाथी का सूल देखा, कभी हरिणनेत्रियो का आलिंगन किया तो कभी डायनो से पाला पडा, कभी हाथी पर चढा तो कभी गधे की सवारी की, कभी सुकवियो के प्रशसा वाक्य सुने तो कभी हाहाकार भी सुना, कभी रूप से अनग को जीता तो कभी कुष्ठ रोग से अग सडे-गले। इस प्रकार विविध रूपो से ससार मे भ्रमण किया और कमबधनो से जकडा जाता रहा। इस प्रकार कहकर राजा ने अपने कठ से हार उतारा और राज्य-भार पुत्र को सोपा। केशो का लुचन किया, आभरण और वस्त्र, छोडकर तप और आचरण को स्वीकार किया। इसके बाद मुनिवर द्वारा प्रदत्त शिक्षा को विनय पूर्वक ग्रहण किया ॥15।

(16)

फिर राजा ने बारह प्रकार का दुर्धर तप किया, बारह अविरति से दूर रहा, बारह अनुप्रेक्षाओ का चितन किया, बारह प्रायश्चित्तो का मथन किया, बारह अगो का अध्ययन किया, बारह सिद्धान्तानुपयोग का पठन किया, बारह उपयोगो को मन मे धारण किया, श्रावक के बारह व्रतो को छोड़कर महाव्रतो को अगीकार किया, तेरह प्रकार के निर्मल चरित्र को ग्रहण किया, तेरह कषायो को दूर किया, चौदह पूर्वो और प्रकीर्णको का ज्ञान प्राप्त किया, चौदह प्रकार के परिग्रहो को छोड़ा, पिण्डेषणा को मन मे धारण किया, चौदह मलो का विसर्जन किया और चौदह गुण-श्रेणियो पर क्रमश चढता गया। इस प्रकार बहुत काल तक तपस्या कर अच्युत स्वर्ग मे इन्द्र हुआ। बाईस सागर तक वहा के दिव्य सुख भोगे ॥16॥

षष्ठ संधि

(1)

आयु समाप्त कर तुम अच्युत स्वर्ग से च्युत होकर रत्नसचयपुर मे कनकप्रभ राजा के घर अवतरित हुए और पद्मनाभ राजा के नाम से विश्रुत हुए। इस प्रकार मुनि ने पद्मनाभ के पूर्व भावान्तरो का वर्णन किया जिसे राजा ने अजुलि भाव से ग्रहण किया। उसे सुनकर उसका मन पुलकित हो गया और हर्ष विभोर होकर मुनिराज से कहा—हे मुनिवर! आपने मेरी पूर्वजन्म कथा तो बता दी। अब आप कोई ऐसी विश्वासजनक बात बताये जिससे मेरी सशय बुद्धि दूर हो सके। यह सुन कर मुनिराज ने पुन कहा—आज से ठीक दसवे दिन एक मदोन्मत्त हाथी–वनकेलि अपने झुण्ड को छोडकर तुम्हारे नगर मे आयेगा। उसे देखकर तुम्हे मेरी कही हुई सारी बाते स्पष्ट हो जायेंगी। यह सुनकर राजा को सतोष हुआ और वह मुनिराज को प्रणाम कर अपने नगर वापस आ गया। घर पहुचकर राजा ने सुख-साता पूर्वक काल यापन किया और मुनिराज द्वारा निर्दिष्ट दिनो की गणना करता रहा। ठीक दसवें दिन पुरजन एक हाथी का पीछा करते हुए सुनाई पडे। दूत ने आकर पद्मनाभ से कहा।

(2)

हे राजन! कहीं से एक हाथी आ धमका है मानो वह प्रलयमेघ हो। उसके गण्डस्थल से मदजल बह रहा है, सभी लोगो को वह नष्ट कर रहा है। अपने कर-सीकर से सिंचित सूर्य-चन्द्र भी पल भर मे नीचे आले-से दिख रहे है। प्रत्यक्ष रूप मे आप देखिये वह प्रलय काल ही है। राजा यह सुनकर उठा और तुरन्त गजराज के सामने पहुच गया। गजराज अपनी सू ड उठाकर प्रचण्ड वेग से प्रलय दण्ड सा लेकर राजा की ओर दौडा। राजा ने सामने दौडते हुए उस हाथी के मुख पर हथिनी की पेशाब से सिञ्चित कपडा फेंक दिया। हाथी उस कपडे मे जैसे ही आसक्त हुआ, पद्मनाभ ने उसकी बगल मे जाकर डण्डे का प्रहार किया। उस प्रहार से

जैसे ही वह उस ओर मुड़ा कि राजा दूसरी ओर हो गया। इसी तरह वह उसके चारो ओर घूमता रहा। हाथी जब बिलकुल पस्त पड़ गया तो पद्मनाभ उसके कुम्भस्थल पर चढ़ गया। इस तरह उस अतुल पराक्रम वाले हाथी को राजा पद्मनाभ ने अपने वश मे कर लिया और फिर वह अपने स्थान वापिस आ गया। इसके पश्चात् एक दिन की बात है कि राजा पद्मनाभ जब सभागार मे बैठा हुआ था कि एक दूत पृथ्वीपाल का संदेश लेकर आ पहुंचा।

(3)

हाथ जोड़कर उस दूत ने कहा—हे राजन ! आपका विनय व्यवहार सर्वत्र प्रसिद्ध है। परन्तु मेरे राजा पृथ्वीपाल ने यह कहा है कि आपने उनके प्रति बड़ी अभद्रता, अविनयता का प्रदर्शन किया है। मेरा हाथी वनकेलि आपके नगर मे आया और उसे आपने पकड़कर अपने अधिकार मे कर लिया। यह अविनम्रता, धृष्ठता कौन सह सकेगा ? पृथ्वीपाल का कहना है कि उसे आप शीघ्र ही वापिस कर दें और राजा की भक्ति करें। असत् भी उसकी दासता स्वीकार करते हैं। ग्रहचक्र भी दीर्घश्वास लेकर उसके चारो ओर सक्रमण करते हैं। दुर्निमित्त भी उसके साथ मित्रता किये हुए हैं। जो अवसर को पहचानते हैं वे लोक मे वाञ्छित फल प्राप्त करते हैं। लोक मे जो भी कोई दुष्ट है वे सब उसकी दासता स्वीकार करते हैं: इसलिए आप राजा पृथ्वीपाल का हाथी वापिस कर दें और उसकी चरण बन्दना कर उससे स्वयं मिल लें। यह सुनकर राजा ने युवराज सुवर्णनाभ को बोलने के लिए सकेत किया।

(4)

युवराज स्वर्णनाभ ने कहा—हे दूत ! तुम्हे जीवित रहना है या टुकड़े-टुकड़े होना है। राजा पद्मनाभ के कारण तुम जीवित हो फिर भी तुम्हारा विनय भंग असहनीय है। गजराज जैसी वस्तु पुण्यवान को ही प्राप्त होती है। गजराज स्वयं यहां आया है। उसे बलात् कोई छीन ले, यह कैसे हो सकता है ? यदि वह कृपा पूर्वक हमसे हाथी की याचना करना चाहता है तो वह ले सकता है पर भय दिखाकर नही ? अविनय प्रदर्शन से जीवित रहना भी कठिन होगा। तुम्हारा राजा पृथ्वीपाल जो निष्कटक राज्य भोग रहा है वह राजा पद्मनाभ की कृपा से भोग रहा है। अब तुम यदि अपना भला चाहते हो तो यहां से चले जाओ अन्यथा अपने मुण्ड रूपी कमलो से सग्राम भूमि की अर्चना करनी पड़ेगी। दूत यह सुनकर कुपित हो गया

और पुन कुछ अपमान जनक बातें कही जिन्हें सुनकर राजे दरबार के योद्धा संतप्त हो गये और कोप से कंपित हो गये ।

(5)

राजा पद्मनाभ ने युवराज तथा सारी सभा को समझाया कि दूत से कुपित होना व्यर्थ है । वह तो अपने स्वामी की बात को ही दुहराता है । जो जिसका खायेगा वह उसका भजायेगा ही । फिर दूत स कहा कि तुम ने इसका फल जाने बिना ही यह सब कह डाला । तुम दूत हो इस लिए क्षमा किया जाता है । अब तुम जाओ। इसका निर्णय सग्राम मे ही होगा । राजा की बात सुन कर दूत अपने नगर वापिस आया । इधर पद्मनाभ सभी सभासदो के साथ मन्त्रणा घर मे पहुचा । जो वृद्ध अनुभवी और नीतिकुशल मन्त्री थे, शास्त्रज्ञ और सग्राम के धीर वीर योद्धा थे, विवेकवान थे, उन सभी स विचार-विमर्श किया । युवराज स्वर्णनाभ भी वही था ।

(6)

सभासदो मे ज्येष्ठ मन्त्री पुरुभूति बोला—हे स्वामिन् ! आप विशेष नीतिज्ञ हैं । आपके आगे मैं क्या बोलूँ । फिर भी—साहस कर रहा हू । जो सूर मात्र भाव से सतप्त होते हैं, नीति मार्गज्ञ नही होते जैसे सिंह आदि, वे भी शिकारियो द्वारा समाप्त कर दिये जाते हैं । इसलिये नयहीन पराक्रम सफलतादायक नही होता । पतग के साथ दीपक भी निष्कारण बुझ जाता है उसी तरह क्रोध मे व्यक्ति छिन्न-भिन्न हो जाता है । भस्म (धूलि) भी दण्ड से उस्कोरे जाने पर शिर पर लगती है । जैसे अबोध शिशु जलते हुए काष्ठ को अपनी ओर खीचने पर जल जाता है उसी तरह नीति से अनभिज्ञ व्यक्ति स्वय दुःखी हो जाता है । अतएव साम से ही काम किया जाना चाहिए । वही सुख का स्थान है । साम से ही तिर्यञ्च भी अनुकूल हो जाते हैं । पर यदि उन्हे दण्ड का भय दिखाया जाये तो वे क्रोधित होकर प्राणलेवा बन जाते हैं । हे राजन ! अमृत के समान साम के रस का पान करने वाला देवो द्वारा भी वदनीय होता है । इसके बाद युवराज सुवर्णनाभ जोशीले शब्दों मे बोला ।

(7)

दुष्ट व्यक्ति के साथ साम नीति का पालन कैसे सभव है ? दूसरो की वृद्धि देखकर ईर्ष्या करने वालो के साथ साम कैसा ? साम का प्रयोग उसके योग्य व्यक्ति के साथ ही किया जा सकता है । वज्र से तोडने योग्य पहाड पर लोहे का हथियार काम नही कर सकता । तप्त लोहे पर शीतल जल डाला जायेगा तो वह और उद्दीप्त

हो जायेगा। दुष्ट का भी यही स्वभाव होता है। जिसने सारे गाव को भयकपित कर दिया है। ऐसे सिंह के साथ साम का व्यवहार कैसा ? गुरु व्रती जैसे व्यक्तियो के साथ तो विनय वृत्ति ठीक है पर दुष्ट के साथ उसका प्रयोग विपरीत ही होगा। यह सुनकर पुरुभूति मन्त्री (अन्यत्र भवभूति मन्त्री) पुन बोला— राजन ! यदि युद्ध करना है तो पहले गुप्तचरो के माध्यम से उसकी स्थिति का पता लगा लेना चाहिए। बिना गुप्तचरो से उसकी वास्तविक शक्ति आदि का पता लगाये युद्ध करना उचित नही होगा। पुरुभूति की बात सुनकर पद्मनाभ ने कहा—हाँ, पुरुभूति का का कथन ठीक है। गुप्तचरो से उसके बल का पता लगाया जाय। पश्चात् युद्ध के विषय मे निश्चय किया जाये। इस तरह मन्त्रणाकर गुप्तचरो का उपयोग कर पृथ्वीपाल के बल की स्थिति को समझा और फिर सामन्तो तथा मित्र राजाओ के साथ पृथ्वीपाल से युद्ध करने का निश्चय कर लिया।

(8-9)

राजा ने नगर मे युद्ध भेरी बजवा दी और शुभ दिवस मे युद्ध करने चल पडा, मानो शत्रु के लिए प्रलय-काल ही हो। लोग हाथी पर सवार राजा की वदना करते चले जा रहे थे। उसकी गज, अश्व, रथ और पदाति सेना ने चारों ओर धूम मचा दी। घोडो की टापो से उत्थित धूलि से आकाश आच्छादित हो गया। डिण्डिम की आवाज सुनकर लोग रास्ते से हटते चले जा रहे थे। राजा पद्मनाभ की शोभा देखने के लिए लोग कौतूहलवश अपने घरो से निकल पडे। जिस मार्ग से लोग चल रहे थे उस पर कोलाहल बढ रहा था जिसे सुनकर कुछ लोग भयभीत हो रहे थे। हाथी को देखकर ऊट डर गया और बोझ गिराकर ऐसा भागा कि लोग ठहाका मार कर हसने लगे। हाथी की सूड से निकले 'फू' शब्द को सुनकर बैल डर गये और उनके भागने से गाडिया टूट गई जिनमे रखा हुआ सामान गिर गया। एक ग्वालिन इतनी घबडा गई कि उसके सिर पर रखा दही का घडा गिर गया। कुछ समय वह शोक करती रही, बाद मे लौट कर अपने घर चली गई। 'हटो, रास्ता छोडो' की आवाज से लोग भयभीत-से हो रहे थे। इस तरह राजा ने सेना के साथ नगर से प्रयाण किया और जलवाहिनी नदी के किनारे पहुचा।

(10-11)

इसके बाद राजा पद्मनाभ मणिकूट नामक पवत पर पहुचा और वहाँ सेना को ठहरा दिया। उस पर्वत की गुफाओ मे देवलोग अपनी देवियो के साथ क्रीडा करते थे। मघ उन गुफाओ मे सूर्य-चन्द्र की किरणो को जाने से रोक देते थे पर

विद्युत्प्रभा से उन देवियो की मुख-श्री अंधकार मे भी दिख जाती थी। मेघ पर्वत के चारों ओर सचरण करते थे जिससे वन-विचरण रोमांचक हो रहा था। कहीं साधु भूमितल पर लोट रहे थे, कही प्रकृति की शोभा से पर्वत की शोभा द्विगुणित हो रही थी। इतने सुदर पर्वत पर सामन्तो ने भी डेरा डाल लिया। इस बीच सूर्यस्त हो गया। इसके बाद उनमे रगरेलिया प्रारभ हो गई। जोडे बाहुबद्ध हो गये। किसी ने सप्तकर्णी पुष्प को तोडकर उसे प्रिया का कुण्डल बना दिया, किसी ने मदजल से प्रिया को शीतल किया। इस तरह विविध कामकेलियां करते हुए रात बीत गई ॥10–11॥

(12)

प्रात काल हुआ और सूर्य ने अपना प्रकाश फैलाया। सैनिको ने अपने बाहुदण्ड पसारे। युद्ध की तैयारी प्रारभ हो गई। युद्ध के उत्साह मे किसी का शरीर रोमाचित हो गया और फलत दूसरा कवच फैल गया। किसी ने शिर मे वीरपट बाधा वह ऐसा लगा मानो शत्रु के शिर मे रक्तघट बांध रहा हो। किसी के नेत्र शत्रुओ के प्रति क्रोध से लाल हो रहे थे जिससे उसका कवच भी लाल दिखने लगा। कोई सग्राम मे पृथ्वीपाल के प्राण हरण की प्रतिज्ञा कर रहा था। इस तरह योद्धा सग्राम मे जाने की तैयारी करने लगे। उस समय ऐसा लग रहा था जैसे शत्रु पृथ्वीपाल का मृत्यु-काल आ गया है ॥12॥

(13)

राजा पद्मनाभ रणभेरी बजवाकर युद्ध के लिए चल पडा मानो समुद्र के लिए क्षुब्ध कर दिया हो। काक, खर, उलूक आदि पक्षी वायें होकर मधुरवाणी का उच्चारण करने लगे। हाथी मदोन्मत्त हो गये। सारग, नकुल दायीं ओर से चलने लगे। वायु का प्रवाह अनुकूल हो गया। राजा की दायी भुजा फडकने लगी। पद्मनाभ के लिए ये शत्रु शकुन थे। पद्मनाभ की यह तैयारी सुनकर पृथ्वीपाल भी युद्ध के लिए निकल पडा। उसके निकलते ही साप रास्ता काट गया, हाथ से तलवार गिर पडी, वाया हाथ फड़क उठा, बार-बार छींकें आने लगी, आग लग गई। पृथ्वीपाल के क्रोध ने इन अपशकुनो की अवमानना कर सेना को आगे बढने के आदेश दिये और वह पद्मनाभ की छावनी के पास अपनी सेना के साथ पहुच गया। तूर बज उठे। योद्धा इधर-उधर दौड पडे। ऐसा लगा जैसे प्रलय आ गया हो और दो समुद्र भिड गये हों ॥13॥

(14–15)

धूलि से सारा गगन आच्छादित हो गया मानो काल-रात्रि आ गई हो और सूर्य नष्ट हो गया हो। धनुष की टंकार से युद्ध का पता चलता था। घोड़े हिनहिना रहे थे, हाथी चिंघाड़ रहे थे, रथचक्र चित्कार रहे थे, योद्धा एक दूसरे के बल को तौल रहे थे, आकाश बाणों से अच्छादित हो गया, सूर्य का प्रकाश मन्द पड़ गया, योद्धा परस्पर वचन-युद्ध कर रहे थे, कोई अपने कृपाण से शत्रु का शिर काट रहा था, किसी का शिर कृपाण से कट जाने पर ऊपर उछलता जिसे धरती पर गिरने के पूर्व ही पक्षी कुतर डालते थे। कोई स्वामी का कार्य मानकर दाया हाथ कट जाने पर बाये हाथ से शत्रु के शिर को काट रहा था। योद्धा अस्त्रो के समाप्त हो जाने पर हाथो-पैरो से युद्ध करते थे। इस प्रकार दोनो सेनाएँ युद्ध मे जुटी-हुई थी ।।14–15।।

(16)

दुर्धर बाण वर्षा जब योद्धा मरने लगे तो पृथ्वीपाल विषधर के समान आगे बढ़ा। वह प्रतिपक्षी योद्धाओ को समाप्त करने के लिए दृढ़प्रतिज्ञ था। यह देख पद्मनाभ भी अपने हाथी पर सवार होकर उसकी ओर बढ़ा। दोनो मे घमासान युद्ध प्रारम्भ हो गया। पृथ्वीपाल कोपाविष्ट होकर निश्वास छोड़कर पद्मनाभ से कहता है कि मैं अभी अपने बाणो से तुम्हारा दर्प चूर-चूर किये देता हूं। पद्मनाभ ने कहा-क्यो व्यर्थ मे प्रलाप कर रहे हो। तुम्हारी सेना तो पहले ही बहुत कुछ समाप्त हो गई। अब तुम क्या करोगे मैं अभी तुम्हे मृत्यु लोक मे पहुचाता हू। यह सुनकर पृथ्वीपाल राजा प्रलयकाल जैसा युद्ध मे जुट गया। परन्तु पद्मनाभ ने उसकी बाण वर्षा को निष्फल कर दिया। दोनो योद्धा गिरिवर के समान थे। उनका अपरिमाण बल था। दोनो समुद्र के समान गभीर थे, योद्धा था। दोनो के लिए विजयश्री मानो कुछ अन्तर से खड़ी हुई थे। तब पद्मनाभ ने धनुष को सम्हाला और क्रोधानल से दग्ध होते हुए पृथ्वीपाल की ओर बढ़ा। पृथ्वीपाल के बाण लक्ष्य तक पहुचने के पहले ही पद्मनाभ उन्हे बीच मे ही अर्ध चन्द्राकार बाणो से काट डालता था ।।16।।

(17)

पद्मनाभ ने बाणवर्षा से पृथ्वीपाल को अधिक समय तक नही टिकने दिया पृथ्वीपाल ने बाद मे चक्र, शक्ति और परशु का भी उपयोग किया जिन्हें पद्मनाभ ने क्रमश: मुद्गर, गदा तथा वज्रमुष्टि का प्रयोग कर उसे निरस्त्र कर दिया। बाद मे पद्मनाभ ने अपने चक्र से पृथ्वीपाल का शिर काट दिया। फलत. विजयश्री पद्मनाभ के हाथ लगी। पृथ्वीपाल का पतन देखकर उसकी सेना भाग खड़ी हुई। जय दुन्दुभी बज उठी। मृत योद्धाओं का दाह संस्कार किया गया। बाद मे किसी सेवक ने पृथ्वीपाल का कटा शिर पद्मनाभ के सामने रख दिया जिसे देखकर उसके मन मे वैराग्य पैदा हो गया।

वह सोचने लगा कि मोह कितना प्रबल रहता है। यह शरीर मल-मूत्र जैसे अशुचि तत्वो का घर है फिर भी व्यक्ति उसमे आसक्त रहता है। बाणो की वर्षा से प्रतिपक्षी का मस्तक काट देता है। जो हाथी पर सवार होकर युद्ध करने निकलते हैं वे रणस्थल मे ही मार दिये जाते हैं ॥17॥

(18)

आज जिसे मैंने क्रोध से मार डाला अगले जन्म मे वह मुझे मारेगा। इन चर्मचक्षुओ के विषयो से कौन बधना चाहेगा जो जन्म-जन्मान्तर तक नरक के दु खो का कारण बने। कोप से ही हमने पापकर्म संचित किये और कोप से ही सारा धर्म नष्ट किया। कोप के कारण ही हमने गुण नष्ट किये। कोप से ही चारो वर्गो का क्षय हुआ, कोप से ही चिरकाल मे किया गया तप समाप्त हो गया। कोप से ही लोग अपनी कीर्ति ध्वस्त कर देते है, नारी के समान धैर्य खो देते है, विवेक विलीन हो जाता है, आसन मे पतन हो जाताहै , स्नेह-बन्धन टूट जाता है, सपत्ति नष्ट हो जाती है, कोप हर तरह की निन्दा का कारण बनता है, कोप से ही गुण धूल मे मिल जाते है, व्यक्ति आत्मघात कर लेता है, निगोद मे जन्म ग्रहण करता है, कोप के समान और कोई दूसरा भीषण शत्रु नही है। कोपाग्नि से प्रदीप्त व्यक्ति शम, दम मे दूर हटकर कृष्णलेश्या के रग मे रग जाता है, स्वय दु'ख भोगता है, कभी सुख नही पाता और विषय कषायो मे बधा रहता है ॥18॥

(19)

मान कषाय एक पिशाच है जो कही नमता नहीं भले ही शूल पर चढना पसन्द कर लेगा। मानी व्यक्ति स्वय निर्गुण रहते हुए भी गुणवानो की निन्दा करेगा, स्वय पापी रहते हुए भी महान लोगो के पापो को खोजता रहेगा। उन पर रोष व्यक्त कर स्वय को गुणवन्त मानेगा। यानी किसी से भी शिक्षा ग्रहण नही कर सकता। वह वस्तुत लोक मे उपहास का पात्र बन जाता है। मानियो के गुण नष्ट हो जाते है और मित्र भी शत्रु बन जाते है अथवा घर भी नरक बन जाता है, सभी के अनादर का कारण बनते है। मान पाप की वेल है, क्रोध का कारण है, सभी के हृदय का सूल है, मिथ्यात्व का बीज है, माया सर्पिणी है, दभ का कारण है, जिसके हृदय मे वह रहेगी उसे नष्ट कर देगी और उसके धर्म का शुभ फल भी समाप्त हो जायेगा ॥19॥

(20)

माया शीलव्रत का पाश है, दुष्कृत कर्मों का घर है, दु ख जनक है, गुण रूपी पर्वत के लिये वज्राघात है, संसार समुद्र रूपी सर्प का अमृतग्रास है, दुष्कीर्ति का जनक है, तिर्यञ्च गति का मार्ग है, यश-बल्ली के लिए कृपाण स्वरूप है, शुभ गति के लिए किवाड है। मानी प्रथमत स्वय की वञ्चना करता है। बाद मे बाधव, प्रियजनो व माता-पिता की वचना करता है। वह दोषो का पिण्ड है, अशुचि का घर है गूढ स्वभावी होता है, नीरस होता है, सुधर्म को छोडने वाला होता है। इसी तरह लोभ भी मोह का विस्तारक है, हम जैसे लोगो को ससार बाधने वाला है, ससार-सागर मे गिराने वाला है, बहु दु ख देने वाला है ॥20॥

(21)

लोभ सकल कुकर्मों का निधान है, पापो की उत्पत्ति का कारण है, सभी दोषो का घर है, अविरति रूपी पहाडी नदी के लिए मेघ है, कुमुदो के लिए सूर्य है, दुर्भाग्य का जनक है, अपाप का कारण है, लज्जा और चातुर्य का विनाशक है, माया का स्थान है, भोगेच्छाओ का वर्धक है, नरक का मार्ग है। इस प्रकार इन मूल कषायो से प्रमाद उत्पन्न हुआ जिससे हम चतुर्गतियो मे भ्रमण करते रहे। इसलिए अब सासारिक सुखो को छोडकर जिनेन्द्र द्वारा प्रोक्त तप और आचरण का पालन करना चाहिए ॥21॥

(22)

इस प्रकार राजा पद्मनाभ ने ससार की दुर्दशा पर विचार कर युवराज **सुवर्णनाभ** को बुलाया और उसे राज्याभिषिक्त कर दिया। साथ ही पृथ्वीपाल के शोकाकुल पुत्र धर्मपाल को उसी के राज्य पर प्रतिष्ठित कर यह कहा कि अब तुम सुवर्णनाभ की आज्ञा का पालन करते रहो। चरणो मे झुके हुए शोकाकुल सामन्तो को भी घर जाने की अनुमति दी और स्वय जहा श्रीधर मुनिराज थे वहा पहुचे। तपोतेज से उनका शरीर दीप्त था, कर्म रूपी सुभट के निर्दलन मे अद्भुत वीर थे, ससार-समुद्र के लिए मानो अगस्त्य ऋषि थे, गुण-श्रेणी पर आरूढ थे, निर्मल शील के आवास रूप थे, भोगो को अनिष्टकारी मानकर उन्होने उन्हे छोड दिया था, सुर मदिर के मूलदेव थे, क्षान्ति सपन्न थे, मोह-शत्रु को नष्ट करने मे जुटे हुए थे, मिथ्यात्व रूपी भयकर वन को पार करने वाले थे, प्रत्यक्ष रूप मे शुद्ध ज्ञानी थे। ऐसे उन ज्ञानी-ध्यानी श्रीधर महाराज के चरणो मे प्रणाम कर नतमस्तक होकर राजा पद्मनाभ ने कहा–हे मुनिवर। मेरे कर्म-मल का विनाश कीजिए ॥22॥

(23)

आप प्राणियो को शिव-सुख प्रदाता है, दु ख रूपी दावानल के विनाशक है, ससार से भयभीत रहने वाले लोगो के लिए अकारण बधु हैं, पाप-लिप्त लोगो के लिए निर्मल सागर हैं, चिंतामणियो मे चिंतामणि हैं, कामधेनुओ मे कामधेनु हैं, कल्पवृक्षो मे कल्पवृक्ष हैं, मनोरथो का फल देने वाले हैं, ससार रूप कानन मे अमृत कुण्ड है, गुणरत्नो के रत्नाकर हैं, चिंता-तृण के लिए प्रलयाग्नि हैं, ज्ञान-लक्ष्मी सपन्न हैं, आशा-कील को निकाल फेकने वाले है, मान विरहित है, इच्छा रहित है। लोगो को आपका पादमूल मिला है पर आप जगल मे रहते है। आप करुणाद्र हैं। इसलिए आप कृपया मुझे जिनदीक्षा प्रदान कीजिए। इस प्रकार कहकर रहस्य को प्रकाशित कर राजा ने केश लुञ्चन किया और जिनदीक्षा ले ली ॥23॥

(24)

वस्त्रालकरण उतार कर जिनदीक्षा ग्रहण करते ही पद्मनाभ को तीर्थंकर नामकर्म का बध हो गया। उन्होने सोलह कारण भावनाएँ भाना प्रारभ किया–(1) शका आदि पच्चीस दोषो से विरहित सम्यक्त्व की विशुद्धि दर्शन विशुद्धि है। (2) गुरु, तप, परमागम के विषय मे विनय रखना विनयसम्पन्नता है, (3) अहिंसा आदि व्रतो और क्रोध आदि परित्याग रूप शीलो को निरतिचार पूर्वक पालन करना शीलव्रतानतिचार है। (4) निरन्तर ज्ञानाभ्यास करना अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोग है। (5) ससार के घनघोर दु खो से भयभीत होना सवेग है। (6) अभयदान आदि प्रमुख दानो का यथाशक्ति दान करना शक्तितस्त्याग है। (7) यथाशक्ति बारह व्रतो का तप करना, जीवो की रक्षा करना शक्तितस्तप है। (8) रत्नमय की रक्षा करना साधु समाधि है।(9) गुणी पुरुषो की सेवा-सुषश्रूा करना वैयावृत्य है, (10–13) अरिहतो, आचार्यों, बहुश्रुत विद्वानो अर्थात उपाध्याय परमेष्ठियो तथा श्रुत-प्रवचन के विषय मे वात्सरय रखना, अहृद्‌भक्ति, आचार्यभक्ति, बहुश्रुत भक्ति और प्रवचन भक्ति है। (14) अप्रमादी होकर षडावश्यक क्रियाओ का पालन करना आवश्यका-परिहाणि है। (15) ज्ञान और तप आदि विविध गुणो के कारणो से सन्मार्ग की प्रभावना करना मार्गप्रभावना है। (16) सधर्मा से स्नेह रखना प्रवचन वात्सल्य है। इस प्रकार सोलह कारण भावनाओ को भाते हुए पद्मनाभ ने तीर्थंकर प्रकृति कर्म का बध कर लिया ॥24॥

(25–26)

इस प्रकार पद्मनाभ ने दुर्धर तप किया, इन्द्रियबल से कर्म निर्जरा की, हृदय से शल्य को निकाल फेका, मोह रूपी महाभट को जीता, क्रोधादि कषायो का विनाश

किया, आर्त-रौद्रध्यान से मुक्त होकर शुक्लध्यान को मन मे स्थिर किया, कठोर परिषहो को सहा, अपने सघ से क्षमापना की, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और तप की आराधना की, गुरु द्वारा प्रदत्त शिक्षा को मन मे धारण किया, सासारिक दुःखो से उन्मुक्त हुआ, अपनी अन्तरग-शिला पर अर्हन्त अक्षरो को उकेरा, शुद्ध स्वरूप का आचरण किया, कल्पश्रुत का भावन किया, शुद्धात्म रसायन को प्रसृत किया, शिव सुख की छाया रूप फल को धारण किया और निश्चल पण्डित मरण से मरण प्राप्त किया। इस प्रकार राजा शुभयोग प्राप्त कर, पापो से मुक्त होकर अनुत्तर वैजयन्त नामक स्वर्ग चले गये। सोलह स्वर्ग, नवग्रैवेयक और नव अनुदिशो के ऊपर पाच अनुत्तर विमान है। वैजयन्त उन्ही मे से एक है जिसे पद्मनाभ ने प्राप्त किया। वहा पद्मनाभ ने निरुपम तेजस्विता को प्राप्त किया, निरुपम देवावधि को प्राप्त किया, निरुपम सांसारिक सुखो को पूर्ण किया, निरुपम शुक्ल-लेश्या को प्राप्त किया, और उपशान्तभाव पाया ब्रह्मचर्य व्रत का पालन किया, और अहमिन्द्र हुआ। उसकी आयु तेतीस सागर प्रमाण थी। पुण्य कर्मों के प्रताप मे दिव्य भोगों को भोगने लगा और सतोषामृत रस मे मज्जन करने लगा ॥25–26॥

सप्तम संधि

(1-2)

चद्रप्रभ स्वामी के पूर्वभव का वर्णन करने के बाद अब उनके गर्भादिक कल्याणको का निरूपण किया जावेगा। भरत क्षेत्र जहा गगा, सिन्धु जैसी पवित्र जलवाली नदियां है, मे एक सर्वोत्तम पूर्वदेश है। वहा धान्य और इक्षु के खेतो मे समीर सुरभित हो रहा है, जिसके पर्वतो के नीचे सुन्दर खेत लहलहा रहे है, गोपाल बालक गीत गा रहे हैं, स्वर्ग के समान वह शोभा से आपूर है, सुन्दर ग्रामों और नगरो से भरपूर है, सुखो का घर है, जहा दुःखो का उपशमन हो गया है, जहा के भव्य जीव समवशरण मे पहुचते है, दुखदायी कर्मों का उपशमन करने के लिए जिनोक्त चर्चा का आचरण करते हैं, जिनराज के चरणो मे जाते है, जो ससार रूपी बल्ली के लिए कठोर किवाड है, जहां धर्म रूपी पुरुष के लिए सुरभित वसन खिला है, रोग, शोकादि के विनाश के उपक्रम चलते- रहते है, सभी प्रकार के सुख विद्यमान है उस देश मे चन्दपुरी नामक मनोहर नगरी है ।।1-2।।

(3-4)

वहां के खेतो मे धान्य की मनोहारी फसल होती है, समुद्र के बहाने परिखा विद्यमान है, जो पद्मराज मणियो का घर है, जहा के उच्च प्रासादो मे सूर्य भी अपना मार्ग खोजता है, जहा के रत्नो से बने घरो के शिखरो से नभ-मण्डल आच्छादित हो गया है, जहा चन्द्रकान्त मणियो के कारण घरो मे रात्रि मे पूर आ जाता है, जहा नीलमणियो के शिखरो से निकलने वाली किरणो के कारण गगा नदी का जल भी नीला दिखाई देने लगा है, जहां के रत्नगेहो के दीर्घ शिखरो से स्वर्ग भी उद्भासित हो गया है, जो भोग-भूमि के सुखो से व्याप्त ह, धर्म-अर्थ-काम का निधान है, अनुपम भवसुखों का स्थान है, हेमगिरि को भी लज्जित करने वाला है, जिसके गर्भ मे अमृत कुण्ड भरे पडे हैं, जो कल्पवृक्षो का घर है, चन्द्र-सूर्य की शोभा को भी

तिरस्कृत करने वाला है ऐसे उस मनोहर चन्द्रपुरी नगरी मे महासेन नामक राजा राज्य करता था ।।3–4।।

(5–6)

वह प्रतापी और यशस्वी था । जयश्री उसके बाहुदण्ड मे निवास करती थी, राजा उसके चरणो मे नतमस्तक था, कृपाण नीलोत्पल का मानो खण्ड था, विविध आभूषणो से उसका शरीर सुसज्जित था, प्रतिपक्षी निर्बल हो चुके थे, शरीर की कान्ति लावण्यभरी थी, दैत्य भी उससे दूर रहा करते थे, मंगल भी उसकी सेवा करता था, महिमा भी उसकी छाया मे रहकर अपने को कृतकृत्य मानती थी, कल्याण भी उसकी सगति मे रहने की इच्छा करता था, सुख भी उसके मन के रग की इच्छा करता था, आशीर्वाद भी उसकी सेवा की अभिलाषा करता था, वरदान भी उसे 'देवदेव' कहकर पुकारता था, सुदास भी दासता को प्राप्त करता था, गुणगौरव भी चेटभक्त बन गया था, लक्ष्मी भी उसकी लक्ष्मी से शोभित होती थी, श्रुतदेवी भी उससे शिक्षा लेती थी, विवेक, सत्य, उदारता, सिद्धि, बुद्धि, ज्ञान, ध्यान, शक्ति आदि गुणो ने उसी के आश्रय से वास्तविकता पाई थी । रूप, बल और शील मे भी वह राजा बेजोड था ।।5–6.।

(7—8)

राजा महासेन की लक्ष्मणा नाम की पट्टरानी थी जो गुण, शील और रूप मे अनुपम थी । जैसे धनुष की सुषमा श्रेष्ठ बास से होती है वैसे ही वह श्रेष्ठ वश मे उत्पन्न हुई थी, उसके गुणो मे कभी वक्रता नही थी, मुनि की वाणी के समान उसकी वाणी सुन्दर वर्णो से युक्त थी, सुन्दर वर्ण-रग से युक्त थी, बहु गुणो की लीला मदिर थी, कदर्प का दर्प भी वहा बध गया था, लावण्य का समुद्र था, तारुण्य ने वहा परम सिद्धि पाई थी, रूप ने वहा परम रिद्धि प्राप्त की थी, अनुराग ने पट्टबंध बाधा था, । उसमे मलय का सौरभ और चन्द्र का अमृत था, हेम की किरणो से वह उज्ज्वल थी, लावण्य मे वह चन्द्र और कमल से भी आगे थी, गभीरता मे सागर जैसी थी, हस जैसी अलस चाल थी, मुनिनाथ जैसा निर्मल शील था, करि कु भ के समान पृथुल स्तन थे, कदर्प के वाणो के लिए सु दर आयास रूप था, सारे रसो का सार थी । ब्रह्मा ने इतना अच्छा रूप बनाया कि सारे उपमान अपना स्वरूप छोड चुके थे । उसका रूप अनुपम था ।।7–8।।

(9–10)

दोनो, महासेन और लक्ष्मणा स्नेहसिक्त होकर धर्म, अर्थ काम का उपयोग करते रहे । पुण्य के प्रताप से इन्द्र की प्रेरणा से उनके घर कुबेर ने छह माह तक

प्रतिदिन बारह करोड निर्मल रत्नो की । वर्षा की पुण्य के प्रभाव से क्या नहीं होता ? रत्नाकर भी जलविरहित-सा दिखने लगा । महासेन को बडा आश्चर्य हुआ । इसी बीच आकाश से एक दिव्य तेज पृथ्वी पर गिरता हुआ दिखाई दिया । राजा के मन मे अनेक वितर्क उठे । क्या कोई पुष्पयन्त्र तो नही आ गया, सूर्य से कुछ गिरा तो नही, दिन मे तारा तो नही स्फुटित हुआ, कोई विद्युतपात तो नही हुआ ? इस प्रकार से राजा के मन मे विविध सशय उठ खडे हुए । धीरे धीरे यह स्पष्ट होने लगा । अप्सराए आयी । उनके स्थूल स्तनो का भार कम था । मुह की सुगन्ध से आकृष्ट होकर भ्रमर दौडने लगे । मदारमाला मकरन्द से लिप्त हो गई । हरि चदन से दशो दिशाए सुरभित हो गई । सारा नगर दिव्य कुसुमो की गध से सुवासित हो गया । नूपुर बजने लगे । श्री, काति, कीर्ति, धृति, बुद्धि, आदि लक्ष्मिया प्रगट हुईं, अपने अपने बाहनो से देव लोग आये, शक्र आया और राजा की जय जयकार की । इन्द्र की आज्ञा से आठों दिक्कुमारियाँ महासेन नरेश के अन्त पुर मे पहुची । राजा ने पूछा-तुम लोगो ने स्वर्ग से धरा पर क्यो अवतरण किया ? ॥9–10॥

(11)

उत्तर मे उन्होने कहा-हे राजन् ! आप धन्य हैं । आपके घर अष्टम तीर्थंकर चन्द्रप्रभ जन्म ले रहे है । इसीलिए छह माह से रत्नो की वर्षा हो रही है । यहा रहकर हम लोग महारानी की सेवा करेंगे और गर्भ की सुरक्षा रखेंगे । फिर वे महारानी के पास पहुची । वहा देखा कि बहुत-सी राजमहिषी उनकी शुश्रूषा कर रही है । महारानी लक्ष्मणा का रूप देखकर उन्होने अपना रूपमद छोड दिया । इतना सौन्दर्य उन्होने कभी देखा नही था । महारानी के सौन्दर्य को देखकर इन्द्राणी भी दासी हो जायेगी । उसके सामने चन्द्रबिम्ब, अमृतकुण्ड, मदनदर्प, कमल खण्ड आदि की कोई गणना नही । रति विलास, चदन, कुसुमबास, स्वर्ग सुख आदि का भी कोई महत्व नही ॥11॥

(12–13)

अपने आगमन का कारण बताकर दिक्कुमारिया महारानी की प्रारम्भिक सेवा मे जुट गईं । कोई क्षीरोदधि से जल लाकर स्नान कराने लगी, कोई सुर चन्दन लगाने लगी और सुगधित तेल से मालिस करने लगी । किसी ने अगलेप किया, किसी ने पारिजात मदारमाला को शिर मे बाधा, किसी ने हार पहनाया, किसी ने किरीट लगाया, किसी ने केयूर पहनाया, और किसी ने कुण्डल पहनाये, किसी ने नूपुर और मुद्रिका पहनाई, किसी ने अन्य आभरण पहनाये, किसी ने वस्त्र पहनाये, किसी ने

अगरु धूप दी, कोई भोजन व्यंजन ले आया, कोई दण्ड लेकर प्रतिहारी बनी, किसी ने महारानी के शिर पर धवल छत्र लगाया, किसी ने चमर डुराये, किसी ने उपानह पहनाये, कोई अंगरक्षक बनी, कोई नाचने-गाने लगी, किसी ने चाटुकारिता की, किसी ने मंडल रास किया, किसी ने छह भाषाओं में काव्य किया, किसी ने इन्द्रजाल दिखाया, किसी ने देवी के शरीर का संवाहन किया। इस प्रकार अनेक रूप से देवियों ने जिनमाता की सेवा की और गर्भ-शोधन किया ।।12-13।।

(14)

इसके बाद लक्ष्मणा देवी निश्चित होकर सो गई। रात्रि के पिछले भाग में उसने सोलह स्वप्न देखे–(1) उन्नत शुभ्र ऐरावत हाथी, (2) गर्जना करता हुआ श्रेष्ठ बैल, (3) गजराजों के झुण्ड को भगाता हुआ सिंह, (4) हाथ में लीला कमल लिए लक्ष्मी, (4) दो मंदार मालाएँ जिनके आसपास भौंरें गूँजार रहे थे, (6) सघन ज्योत्सना से युक्त पूर्णमासी का चन्द्रमा, (7) अपने प्रकाश से सारी दिशाओं को प्रकाशित करता हुआ सूर्य, (8) एक दूसरे से किलोल करता हुआ मीना युगल, (9) कमलों से ढके हुए और जल से भरे हुए दो मंगल कलश, (10) जल में लहलहाते हुए सफेद कमलों से अलंकृत सरोवर, (11) आकाश को छूने वाली उत्ताल तरंगों से युक्त समुद्र, (12) सिंहों पर आश्रित सिंहासन, (13) देवों से सेवित दिव्य विमान, (14) नाग कन्याओं से सुन्दर नागभवन, (15) फैलते हुए तेजोमण्डल से युक्त रत्नराशि, और (16) धूमरहित होने से उज्ज्वल अग्नि। इन सोलह स्वप्नों को देखने के बाद जाग जाने पर उसने इन स्वप्नों का फल जानना चाहा ।।14।।

(15)

इसके बाद प्रभातकालीन नित्यकर्म करके और अन्य साधु धर्म संपादित करके शीघ्र ही अपने पतिदेव महासेन के पास पहुंची और स्वप्न बताये। राजा ने उन्हें सुनकर उनका फल बताया। हे देवी! ऐरावत हाथी तेरे पुत्र को तीनों लोकों में मुख्य बतला रहा है, बैल उसे गम्भीर, सिंह जैसा महान् पराक्रमी निर्भय और तेज सपन्न, और लक्ष्मी-इन्द्रों द्वारा अभिषेक करने योग्य सूचित कर रहा है, दो मालाओं को देखने से वह अनन्त कीर्ति वाला होगा, चन्द्रमा देखने से प्रजा की तृप्तिका हेतु, सूर्य देखने से मोह रूप अंधकार को मिटाने वाला और मत्स्य युगल को देखने से वह सभी प्रकार के शोक से मुक्त होगा अर्थात् मुक्ति पायेगा, कलश देखने से उसके दिव्य देह में शुभलक्षण होंगे, सरोवर देखने से तृष्णा रूपी अग्नि को शान्त करने वाला होगा समुद्र देखने से विमल ज्ञान धारी होगा, अर्थात् केवली होगा। और स्वर्ण सिंहासन

देखने से मुक्ति पाने वाला होगा, देवो का विमान देखनेसे वह स्वर्ग से अवतरित होगा, नाग भवन देखने से धर्म तीर्थ का प्रवर्तक होगा, रत्नो की राशि देखने से समस्त गुणो का क्रीडापर्वत होगा और अग्नि देखने से उग्र कर्मों के जगल को जलाने वाला होगा। तुम्हारे पुण्य के प्रताप से शक्र भी दास हो जायेगा। लक्ष्मणा स्वप्नो के फल को सुनकर रोमाचित हो गई ॥15॥

(16)

इसके पश्चात् आयु के समाप्त होते ही उस अहमिन्द्र ने वैजयन्त नामक अनुत्तर विमान से अवतरित होकर चैत्र मास के कृष्ण पक्ष के पचमी दिन को लक्ष्मणा के गर्भ मे प्रवेश किया। ऐसा लगा जैसे चन्द्र ने जल मे प्रवेश किया हो या जल-बिन्दु ने सीप मे प्रवेश किया हो, चन्द्र सरोवर मे प्रतिबिम्बित हो रहा हो, कमल दल तल पर खडा हो, सिद्ध-बुद्ध होकर मोक्ष मे प्रवेश किया हो, परमात्मा को अपने अन्तरात्मा मे छिपाया हो, सिद्धत्व को आत्मा मे सजोया हो, जिनागम मे द्रव्यज्ञान रखा हो, सम्यक् चारित्र मे परम धर्मोदय हुआ हो, मुणिगणो के मुख मे सत्य वचन निहित हो, व्यक्ति मे सज्जनता प्रतिपन्न हुई हो, धर्मात्मा मे सुख प्रतिष्ठित हुआ हो, गुणी-दानी मे कीर्ति का प्रसार हुआ हो। भगवान सुख पूर्वक यथासमय तक गर्भ मे रहे। देवो ने दुन्दुभि बजाई, सारे त्रिभुवन मे उसकी आवाज पहुची, देवगण हर्षित हुए और अपने अपने परिवार के साथ नगर की ओर उन्होने प्रस्थान किया ॥16॥

(17)

कल्पामर के चौबीस इन्द्र, व्यतरो के बतीस स्वामी, भवनवासी देवो के चालीस इन्द्र, ज्योतिषी देवो के रवि-चन्द्र, ये सभी अपने-अपने वाहनो से भगवान के दर्शन करने हर्ष विभोर होते हुए आये। कोडाकोडी अप्सराएँ अपनी ऋद्धि सहित आयी, वैक्रियक देव आये, बारह करोड तूरो के शब्द फैले, गधोदक और पुष्पो की वृद्धि हुई सभी देवो ने आकर तीन प्रदक्षिणा की, लक्ष्मणा देवी की चरण वदना की, रत्नो से पूजा की, सस्तुति की। महासेन की भी हाथ जोडकर स्तुति की। और कहा कि आप दानो ही त्रिलोक के शोकापहारी हैं, अपने ही ससारियो के लिए नरक का द्वार बद कर दिया है। इत्यादि प्रकार से उनकी स्तुति कर गर्भस्थित जिन की स्तुति की और हर्षित होते, नाचते, पुलकित होते हुए सुरलोक को वापिस चले गये ॥17॥

अष्टम संधि

(1–2)

जैसे-जैसे भगवान का देह परिपूर्ण होता गया वैसे-वैसे नयी किरणो ने घर मे प्रवेश किया । देवी लक्ष्मणा फलो से घटित होती रही, निर्मल पुण्य कार्यों से परिचारित रही, गर्भ की धवल किरणो से कलित हुई । उसके उदर की त्रिवलियां भग्न हो गई । कर्म के साथ उसके स्तन-युगल भी कृश हो गये, मोह के साथ उद्यम मन्द हो गया, क्रोध के साथ चरण कंपित होने लगे अर्थात् भारी हो गये, मान के साथ स्वर क्षीण हो गया, ससार के साथ भोजन की मात्रा भी कम हो गई, कर्म के साथ व्यसन नष्ट हो गया निद्रा के साथ त्रिजग का पुण्य आ गया, धर्म के साथ स्तनभाग ऊचे हो गये, लोक के साथ अग निर्मल हो गये, अग के साथ सारा ससार निर्मल हो गया । इस प्रकार वह लक्ष्मणा गर्भालस लिए जिन पद की पूजा करती रही और शक्ति धर्म पालन करती रही । उसे दोहद भाव उत्पन्न हुआ । क्षीरोदधि के जल से उसे देवियो ने नहलाया, देवो ने प्रणाम किया । त्रिभुवन को उज्ज्वलित करने की उसकी अभिलाषा हुई । उसे लगा जैसे उसने कर्मभार को कम कर दिया हो, कामबाण को छोड दिया हो और पच ज्ञानो मे अवगाहन किया हो । लक्ष्मणा ने जो भी मनोरथ किया, सुरपति ने उसकी पूर्ति की । वह भी जिनभक्ति पूर्वक समय यापन करने लगी ॥1–2॥

(3–4)

नव माह व्यतीत होने के बाद पौष-कृष्णा एकादशी के दिन देवी लक्ष्मणा ने शुभ लक्षण सपन्न धवल वर्ण वाले बालक को जन्म दिया । वह बालक समचतुरस्र सस्थान से युक्त था, प्रथम सहनन से उसका शरीर युक्त था । शरीर से निर्गत सौरभ फैल रही थी, उसका शोणित दुग्ध जैसा धवल था, मल से वह वर्जित था, अतुल पराक्रम सपन्न था, रूपवान् था, ससारियो के लिए उसकी वाणी प्रिय और हितकारी थी, उससे सूर्य प्रकाशित हो रहा था । और फिर तत्काल सारा ससार भी उल्लसित

हो गया । ऐसा लगा मानो बाल सूर्य का उदय हुआ हो, अरणि से अग्नि-स्फुलिंग निकल रहा हो, धर्म का शुभ फल हो । वह प्राणियो के लिए परमदानी था, ज्ञान से कर्मों का उपशमन करने वाला था, शिव-सुख का दायक था, निज रस के स्वभाव से आपूरित था, । त्रिभुवन उसके समागम से प्रसन्न था, देव गरण हर्ष से विभोर होकर नृत्य कर रहे थे । पृथ्वी से मरिण ऊपर निकल पडे, छहो ऋतुओ के पुष्प पुष्पित हो उठे, शीतल मलय पवन चलने लगी, गधोदक की वृष्टि होने लगी, गगन मार्ग निर्मल हो गया दसो दिशाए धवल हो गई, दिव्य पुष्पो की वर्षा होने लगी, इन्द्र का सिहासन कम्पित हो उठा, कल्पवासी देवो की सभा मे घण्टिया बिना हाथ लगाये ही बजने लगी, ज्योतिषी देवो के घरो मे सिहनाद होने लगा, व्यतर देवो के घरो मे बिना बजाये ही दुन्दुभी बजने लगे और उनकी प्रतिध्वनि गूज उठी, भवनवासी देवो के घरो मे गभीर शख समूहो की ध्वनि सुनाई पडने लगी । पुण्य प्रताप से क्या-क्या नही होता ? ॥3–4॥

(5–6)

इन सब कारणो से सभी देवो को जिन भगवान के उत्पन्न होने का ज्ञान हो गया । फलत सुरपति आदि सभी देव भक्ति सिक्त हो गये । अपने-अपने आसनो से उठकर मरिण जटित आभूषणो से युक्त होकर उस दिशा मे प्रस्थान किया जिस दिशा मे भगवान का जन्म हुआ था । उस दिशा के भूतल को प्रणाम किया, दुन्दुभी बजवायी, देवियाँ निश्चल मन से आ गई । सौधर्म स्वर्ग के इन्द्र ने मन मे ही भक्ति की और मेरु पर्वत पर भगवान को अभिषेक के लिये ले जाने का निश्चय किया । मेरु पर्वत एक लाख योजन ऊचा है । उसपर स्थित सरोवरो और कमलवृन्दो ने उसकी शोभा मे चार चाद लगा दिये । वह मेरु पर्वत सभी पर्वतो मे प्रधान है उसका कोई उपमान नही । एरावत हाथी पर सवार होकर वह सपरिकर चल पडा ॥5–6॥

(7–8)

परिकर की सख्या अपार थी । सभी हर्ष और भक्ति से आपूर थे, सभी कल्पवासी देव जिन भगवान की सेवा मे चल पडे, ज्योतिषी देवो ने भी प्रस्थान किया । व्यतरगरण दर्पहीन होकर निकल पडे, भवनवासी देवो ने भी उसी समय प्रयारण किया । विद्याधर भी दौड पडे । सभी वेग से आगे बढ रहे थे । कभी कभी उनके रथ परस्पर सघर्षित हो जाते थे । कभी कभी हाथी अपना मार्ग छोड देते थे । सभी देवो आदि के हाथो मे पूजा पात्र और मगल द्रव्य थे जिसे वे भक्तिवश भगवान के पास ले जा रहे थे । सारा आकाश छत्रो के कारण धवल वर्ण लगने लगा था

ऐसा लगता था मानो वह कोटा-कोटि चन्द्रमाओ के द्वारा आच्छादित हो। ध्वज-पताकाएँ मांगलिकता सर्वत्र बिखेर रही थी, नीलोत्पलो का समूह उत्पन्न हो गया था, इन्द्राणी का क्रीडा-स्थल बन गया था, स्वर्ण कुम्भो से सूर्य समूह को संकट उत्पन्न हो गया था, मरकत मणियों से यमुना नदी को संकट उत्पन्न हो गया था, चन्द्रकान्त मणियो से चन्द्र क्षेत्र को तथा वैडूर्य मणियो से हरितगुप्त को तिरस्कृत किया था, विद्रुम मणियो का समूह सध्याकाल का भ्रम पैदा कर रहा था, मालाओ से नभ मण्डल आच्छादित हो गया था, दिव्य कुसुम मालाओ तथा उनकी सुरभि से सारा क्षेत्र सुसज्जित तथा सुरभित हो रहा था, दुन्दुभी के शब्दो की पृथुल स्थिरता से गीति की लहरें उठ रही थी, सभी लोग हर्ष विभोर होकर नृत्य कर रहे थे, चारो निकायो के देव एकत्रित हो गये थे, वाहनदेवो के द्वारा मानो सूर्य का मार्ग अवरुद्ध हो गया था ।।7–8।।

(9–10)

कोई कह रहा था-शीघ्र ही मार्ग दो, मेरे सिंह से अपने हाथी को दूर हटाओ, कोई कह रहा था अपने सिंह को हटाओ अन्यथा वह अष्टापदो द्वारा मार दिया जायेगा, कोई कह रहा था अपने हरिण को मेरे पास मत आने दो, मेरा दुष्ट बाघ उसे नष्ट कर देगा, कोई कह रहा था हाथी को दूर रखो, अष्टापद उसे समाप्त कर देगा, कोई कह रहा था बैल को चित्रक से दूर रखो, सर्प को नेवले से दूर रखो, गरुड से दूर रखो, हस को मार्जार और मयूर को कुत्तो से अलग रखो। इस तरह से कहते हुए सुर-असुर अपने-अपने वाहनो से जिन भगवान के दर्शन करने दौड रहे थे। जैसे ही चन्द्रपुरी नगरी आई कि उन्होने अपने वाहनो की गति धीमी की तथा गन्धोदक, पुष्प और रत्नो की वृष्टि की, दुन्दुभी बजाई, तूर वाद्य बजाया। बाद मे इन्द्राणी ने स्वय उतरकर अपने करणीय कार्य को ध्यान मे रखा। उसने प्रसूतिगृह मे बडे भक्ति भाव से प्रवेश किया, अपने हाथ से मगल किया और देखा कि लक्ष्मणा देवी अपने पुत्र के साथ लेटी हुई है। परमेश्वर त्रिभुवननाथ के दर्शन किये। उनका वर्ण कर्पूर के समान धवल था। उमका सारा शरीर रोमाञ्चित हो गया। हृदय हर्ष से इतना पुलकित हो गया कि नेत्रो से आसू बह उठे। उसे इस बात का खेद हुआ कि काश उसके यदि हजार नेत्र होते तो वह भगवान के रूप को अधिक अच्छी तरह से देख पाती। इन्द्राणी ने फिर जिन माता की प्रशसा की और मायोत्पन्न एक बालक को जो आकार-प्रकार मे जिन भगवान के समान था उसकी गोद में रखकर जिन भगवान को उठा लाई ।।9–10।।

(11)

सब देवो ने मिलकर भगवान की स्तुति की, जय-जयकार किया, हाथ जोडकर तीर्थंकर की वन्दना की । ससार मे जिन दर्शन दुर्लभ होता है । देवो ने इन्द्र से कहा आपका सौभाग्य है कि आप अपने हजार नेत्रो से भगवान के दर्शन कर रहे है, धरणेन्द्र ने भी खूब जिनदर्शन किये फिर भी उसकी तृप्ति नही हुई । शक्र भगवान के लक्षणो को अनिमेष नेत्रो से देखते-देखते पूरी तरह थक गये । उन्होने भगवान के गात्र को कोमल वस्त्रो से ढका, ईसाण ने धवल छत्र लगाया, सानत्कुमार-माहेन्द्र ने चमर ढुराये, और जो अन्य छोटे-मोटे देवता थे वे हाथ जोडे भगवान की सेवा मे खडे थे । इसके बाद इन्द्र ने भगवान को ऐरावत हाथी पर बैठाकर आकाश मार्ग से मेरु की ओर प्रस्थान किया ॥11॥

(12)

नभ पथ से देवो के चलने पर भूमण्डल ढक गया । गगन भी दिखाई नही दे रहा था । पृथ्वीतल स 180 योजन ऊपर तारागो के विमान है, उनसे दस योजन ऊपर सूर्य का, उससे 80 योजन ऊपर चन्द्रमा का, उससे तीन योजन ऊपर नक्षत्रो का विमान, उससे भी तीन योजन ऊपर बुध का विमान, उससे तीन याजन ऊपर शुक्र का विमान, उससे तीन योजन ऊपर बृहस्पति का विमान, उससे भी चार योजन ऊपर मगल का विमान और उससे भी चार योजन ऊपर शनि का विमान है । इस प्रकार सम्पूर्ण ज्योतिर्गण की ऊँचाई एक सौ दस योजन है । उसके आगे शुद्ध गगन प्रदेश है । इस गगन प्रदेश का विचरण करते हुए देवगण ने उसे पार किया और उसके बाद उन्हे मेरु पर्वत के दर्शन हुए ॥12॥

(13–14)

यह मेरु पर्वत माणिक्य दीप्ति से दीप्त था । मणि शिलाओ के सिंहासन उसके पाय थे, चमरी पूछ से चमर डुलाती थी, वृक्ष वायु से आदोलित हो रहे थे मानो इसी बहाने वे झुक रहे हो, स्थल कमल नीचे सुशोभित थे, हाथी के द्वारा भग्न चदन के रस से वह सिञ्चित था, कल्पद्रुम वृक्षो को चीर के रूप मे धारण किये हुए था, मदन वृक्षो की सुगन्ध से सुवासित था, कायल की मधुर आवाज से गुजित था, वायु की आवाज बासो मे पूरित होकर शब्द करती थी, दुन्दुभी की प्रतिध्वनि करके मेरु मानो प्रतिहार का काम करता था । मेरु को देखकर सभी देव रोमाञ्चित हो गये । वह ऐसा लगता था जैसे पजरी का मध्यवर्ती प्रदेश हो जहा भ्रमर रुककर सतोष का अनुभव करते हैं भवन का शोभावर्धक कनक कु भ हो, आकाश गगा का पूजापट्ट हो,

धर्म रूपी हाथी का स्वर्ण स्तभ हो, जहा रवि और शशि निर्व्याज अथवा निर्मद होकर चमर ढो रहे हो, मानो कह रहे हो कि हमे मोक्षमार्ग दो अथवा स्वर्गारोहण के लिए सोपान हो, क्योकि गोरोचन पिण्ड के समान इसकी मध्यवर्ती त्रसनाली देख ली है, आकाश और पृथ्वी के पंजर मे यह सुमेरु चक्रवाक के समान लगता है, अथवा कील के समान प्रतीत होता है, जिन भगवान के स्नान का सुवर्णपीठ अथवा स्वर्णपीठ है जो विविध मुक्तामणियो के रगो से युक्त है, कटिसूत्र का कनक खेल हो जहा तारागण के रूप मे रत्न जडे हुए हैं अथवा दस-दिशाओ मे पिगल वर्णवाली गेंद है। इत्यादि प्रकार से देवो ने उस सुमेरू को देखकर उसके विषय मे कल्पनाएँ की। इसके बाद वे जिन भगवान के स्नान के लिये सुगन्धित जल ले आये ॥13–14॥

(15–16)

सुमेरू पर्वत के ऊपर पांच सौ योजन विशाल एक पाण्डुकवन है जिसकी चारी दिशाओ मे चार शिलाएँ है। उनमे पाण्डुक शिला ईशान मे है जो अर्ध चन्द्र के समान पीत वर्ण वाली है, सौ योजन लम्बी और पचास योजन चौडी है। उस पर जिन भगवान का मणिमय सिहासन लगाया गया जो पाच पांच धनुष लम्बा चौडा था। उस पर जिनेन्द्र देव को विस्तारा गया, सभी देवो ने स्तुति की, दुन्दुभी बजायी और पूर्व जिनाभिषेक विधि से अभिषेक करने की योजना बनाई। वायुकुमार आदि सभी सपरिवार एकत्रित हो गये और हर्षित होकर अभिषेक की तैयारी मे जुट गये। मेघकुमार ने गधोदक की वृष्टि की, भक्ति से कुकुम रस का लेप किया, वनदेवी ने पुष्प खिला दिये और उनमे रगावलियां भर दी। इसके बाद इन्द्र ने ऐरावत हाथी से जिनेन्द्र देव को उतारा मानो अकलक चन्द्र ही हो, सूक्ष्म वस्त्र को अलग किया, सिहासन के दायी ओर इन्द्र खडे हुए, बायी ओर ईशान इन्द्र खडे हुए, कल्पवासी आदि अन्य देवो ने भगवान के ऊपर, छत्र, चमर आदि धारण किये वीणादिक वाद्य तथा विविध सगीत प्रारम्भ किया, भगवान के चरण-कमलो के पास बैठकर। कोई-दिग्पालो ने प्रतिहार का काम किया, हाथ मे स्वर्णदण्ड लेकर खडे रहे, देवागनाओ ने मगल गीत गाये जो चारो दिशाओ मे प्रस्फुटित हो गये। अगुरु धूप के धुएँ से सारा क्षेत्र व्याप्त हो गया। और जो अन्य देवता थे वे पक्तिबद्ध खडे रहे। फिर उन्होने सुमेरु पर्वत से लेकर क्षीर सागर तक दो पक्तिया खडी करके क्षीर सागर का जल मगाया। इस प्रकार इन्द्रो ने मिलकर बडे आनन्द और भक्तिभाव से जिनाभिषेक की तैयारी की ॥15–16॥

(17)

इसके बाद देवो ने स्वर्णकुभ हाथ मे लिए और हाथो हाथ क्षीरोदधि जल से भगवज्जिनेन्द्र का अभिषेक किया। दायी श्रेणी मे सौधर्म इन्द्र खडे हुए थे और बायी श्रेणी मे ईशान इन्द्र। दोनो कल्पेश्वरो ने बडे भक्ति भाव से अपने हाथ से एक लाख कलश से जिनेन्द्र भगवान का अभिषेक किया। क्षीरोदधि का जल क्षीर के समान था। उसमे जिनेन्द्र की कान्ति मिल जाने पर और तेजमय हो गया। उससे कैलाश पर्वत जैसा वह मेरु धवलवर्ण हो गया। ऐसा लगा कि सारा हिमाचल पर्वत मिलकर हिमवान् हो गया हो अथवा सारे ससार के मुक्ताफल एकत्रित हो गये हो। अथवा कर्पूर इकट्ठा हो गया हो अथवा चन्द्रकान्त मणियो से जड दिया गया हो अथवा पारे से स्वर्ण-पिण्ड लिप्त हो गया हो अथवा यश के खण्ड एकत्रित हो गये हो। सारा पर्वत निर्मल चन्द्र की ज्योत्सना से आवृत-रत्न हो गया और दीप्तिमय जिनपाद पुण्य से वह परियकित हो गया हो ॥17॥

(18)

देवो ने जय-जयकार किया और शुभ मन से गधोदक लगाया जो सकल ससार-ताप को नष्ट करने वाला है, चिर-काल के जन्म-जन्मान्तर से लगे आये पाप-मैल को धोने वाला है, सचित रज-पटल को समाप्त करने वाला है सारे ससार का राज्य अभिषेक बराबर है, महासुख को देने वाला है, सकल लावण्य का कारण है, सकल विजय स्थान का केतु रूप है, धर्म रूपी लता को पल्लवित करने के लिए मेघ है, निर्मल गुण समूह का केलिगृह है, स्वर्ग-लक्ष्मी के उपभोग का रत्नघन है, सकल धर्मों का दयास्थल है, सभी प्राणियो के साथ दयाभाव रखने के लिए विवेक स्वरूप है, सकल विवेक का जनक है, मिथ्यात्व विनाशक है, सुदृढ कर्मों का छेदक है, कर्मों की ग्रन्थि का भेदक है। ग्रन्थि भेद से काललब्धि होती है और काललब्धि से द्रव्यशुद्धि, है द्रव्यशुद्धि से भावशुद्धि और भावशुद्धि से आत्मशुद्धि होती है। इस तरह देवगण ने सुमेरु पर्वत पर जिनाभिषेक किया और गन्धोदक लगाकर कर्मनिर्जरा की। सभी आनन्दित हुए। उस समय अनेक अतिशय भी हुए ॥18॥

(19-20)

इसके बाद इन्द्र ने वज्रसूची से जिन भगवान के दोनो कानो का छेदन किया। उनमे मणिमय कुण्डल पहनाये इससे ऐसा लगा मानो शशि और रवि दोनो स्वय अवगुढित हो गये हो। शिर पर रत्न जटित मुकुट बांधा मानो त्रिभुवन की समृद्धि

एक ही स्थान पर समेट दी हो। वक्षस्थल पर मणिमाला पहनाई मानो यज्ञोपवीत ही प्रतिबिम्बित हो रहा हो, । करधनी मे मणि किंकिडिया लगादी मानो मदिर मे ग्रहपक्ति खडी हो गई हो । बाहु युगल मे बाजूबन्द बाध दिया, अगुलियो मे अगूठी पहना दी, पैरो मे नूपुर बाध दिये । इन आभूषणो से जिनेन्द्र की शोभा अपूर्व हो गई । दिव्य वस्त्रो और पुष्पो से भी भगवान को विभूषित किया । इस तरह देवो ने जिनेन्द्र देव की विविध प्रकार से अर्चा की । ठीक ही है, भूषण भूषणो से ही भूषित होता है, सौरभ सौरभो से ही सुरभित होता है, छत्र छत्र से ही धारण किया जाता है । इसी तरह इन आभूषणो आदि से भगवान विभूषित हुए। देवो ने उनकी सस्तुति की ।।19–20।।

(21)

हे परमेश्वर सिद्ध, बुद्ध, आपकी जय हो, आप परमात्मा हैं, परम शुद्ध है, स्वभाव को प्राप्त कर लिया है, निर्मल स्वभाव को जान लिया है, आप अप्रमेय हैं, सप्तभगियो के ज्ञाता है, परम बोधरूप हैं, समरस हैं, निजरसज्ञाता है, अमल हैं, अकलक देहवाले है, सकल कलाविद् हैं, अजय है, अजर हैं, अमर हैं, परम कला विशेषज्ञ है, अभय है, अभावरूप है, अभेद रूप हैं, द्रव्यस्थित स्वरूपज्ञ है, निरजन है, योगीनाथ है, ससार के दुखो को जलाने वाले है । हे परमब्रह्म ! आपकी जय हो, आप ब्रह्मो के ब्रह्म हैं, मोहविजयी हैं, परम नित्य है, जीवाजीव तत्व को प्रगट करने वाले है, विश्वरूपज्ञ हैं, शुद्धाचार के ज्ञाता है, कारणातीतज्ञ है, रत्नत्रय के निधान है, परमतेजस्वी है, मिथ्यात्व भेदक हैं, परम ध्यानी हैं, मुक्तिदर्शक हैं, करुणा सागर है, महान् गुणवान् हैं, ससार के स्वामी हैं, और सहज सत है। इस प्रकार देवो ने जिनेन्द्र भगवान की स्तुति की ।।21।।

(22–24)

सौधर्मेन्द्र ने भगवान को अपने ऐरावत पर बैठाया । हर्षित होकर सभी देव देवेन्द्र नृत्य कर रहे थे । परस्पर एक दूसरे के हाथ पकडे हुए चले जा रहे थे । इन्द्र बीच मे था और सभी नृत्य करने वाले देव उसके चारो ओर । चन्द्रपुरी जाते समय उन्होने इस तरह दिशाओ का लघन किया । दिग्गज वगैरह ने भी विविध प्रकार से हर्ष व्यक्त किया । क्षीरोदधि निर्जल हो गया, मलयाचल पर्वत सेवा करने लगा, नदनवन डालशेष हो गया, अगुरुवन का क्षय हो गया, कर्पूर की भी यही गति हुई । ये सभी नामशेष रह गये । यह देखकर देवो को अत्यन्त आश्चर्य हुआ । उनका मन

हर्षित हो गया। हर्ष कम और भक्तिभाव अधिक था। भक्तिभाव से विभ्रम हुआ। विभ्रम कम था और जिन गुण अनन्त थे जिसके लिए वे तृष्णालु हो गये। इस तरह हर्ष विभोर होते हुए उन्होने चन्द्रपुरी नगरी मे प्रवेश किया। बाद मे सौधर्मेन्द्र ने भगवान को ऐरावन हाथी से उतारकर उनके माता-पिता को सौंपा और अपने-अपने स्थान पर उत्सव मनाकर वापिस हो गये। भगवान चन्द्रमा के समान कान्ति से युक्त है इसलिए उनका नाम इन्द्रो ने चन्द्रप्रभ रखा। भगवान चन्द्रप्रभ अहर्निश वृद्धिगत होते गये। वे अपने हाथ की अगुलियो को मुख से चूसा करते थे जिनमे इन्द्रो ने अमृत का लेप कर दिया था। अतएव उन्हे अपनी मा के दूध की क्या आवश्यकता थी ? सुरेन्द्र दास जैसे रहकर उनकी सेवा कर रहे थे। निष्कलक प्रतिपत चन्द्र के समान वे बढ रहे थे। ज्ञान कमल भी विकसित हो रहा था। इस प्रकार जिनन्द्र चन्द्रप्रभ ने त्रिभुवन को अपने गुणो से मुग्ध कर दिया ॥22-24॥

नवम संधि

(1)

अनेक देवकुमार शिशु चन्द्रप्रभ के पास आकर उन्हे गेंद आदि से विविध मनोरजक खेल खिलाया करते थे। धीरे-धीरे उन्होने चलना प्रारम्भ किया। कभी-कभी कपकर गिर जाते थे। जिससे पृथ्वी कप-सी जाती थी। उससे ऐसा लगता था कि अति भार से शेषनाग कपित हो रहा है या धरणेन्द्र को कोई शका हो रही है। कभी लीला पूर्वक गेद खेलते थे। कभी हाथी घोड़ों की सवारी करते थे। कभी जल-क्रीड़ा करते थे और अपनी छाया का अनुसरण करते थे। इस तरह वे दिव्य भोगो को भोगते हुए कभी थके नही। धीरे-धीरे जिनेन्द्र की वाल्यावस्था व्यतीत हुई और विद्यार्जन काल आया। सभी ने यह अनुभव किया जैसे ओकारादि अक्षर सभी शब्दागमो से वे परिचित हो। पथमानुयोगादि चारो अनुयोग ग्रन्थो मे वे पारगत थे। इस प्रकार वे तरुणावस्था मे पहुचे ॥ 1 ॥

(2)

जिनेन्द्र देव का रूप अद्भुत था। उनके कु तल केशो ने मानो अज्ञान रूपी अधभार को बाध लिया था। उनका ललाट चित्त के समान विस्तृत था, नेत्र सिद्ध के समान निर्मल थे, नासिका बुद्धि के समान सरल-सीधी थी, मुख सौरभ से युक्त था, भ्रूवल्ली ने मानो माया की वक्रता को जीत लिया था, दन्तपक्ति निर्मल बुद्धि के समान थी अथवा चन्द्रकिरणो के समान थी, विद्याधरो की ऐसी शोभा थी जिससे लगता था कि हृदय से दीनभाव निकल गया हो। बाहुदण्ड मानो धर्मदण्ड थे अथवा नरक-द्वार के लिए परिघ थे, वक्षस्थल केवलज्ञान के समान विस्तृत था अथवा आत्मा के समान था, अगाध नाभि ऐसी लगती थी जैसे ससार उसमे क्षीण हो गया हो, पृथुल नितम्ब ऐसे लगते थे जैसे उनमे उनका यश भर गया हो, ऊरु ऐसे लगते थे जैसे वे उनके कोमल परिणाम के प्रतीक हो। चरण कमलश्री को लिए हुए थे। उसकी काति से शोभा ही मद हो गई। इस तरह भगवान के रूप लावण्य की महिमा थी ॥ 2 ॥

(3)

राजा ने अपने पुत्र के निरुपम लावण्य को देखकर कमलप्रभा नाम की सुन्दर राजकन्या के साथ विवाह सबध कर दिया। ऐसा लगता था, मानो चन्द्र ने अपनी काति उन्हें छोड दी हो, काम ने अपनी बाण पक्ति अर्पित कर दी हो, आगम से क्षान्ति गुण आ गया हो, ज्ञान से निर्मल शान्ति आ गई हो, धर्म से जीवन रक्षा का भाव आया हो, विनय से उत्तम शिक्षा मिली हो, तर्क से युक्ति आई हो। सूर्य से निर्मल बुद्धि प्राप्त की हो और सिद्ध से अचल अथवा शरीर रहित सिद्धि (मुक्ति) की भावना आई हो। इसके बाद पिता महासेन ने सभी राजाओ के सामने सहर्ष चन्द्रप्रभ का सिंहासन पर बैठा कर उनका पट्टबध करने का उपक्रम किया। ॥ 3 ॥

(4)

राजा स्वय ही हर्ष विभार होकर पट्टबध उत्सव मे सम्मिलित हुए। स्वर्ण-कुम्भ से स्नान कराया गया, मगल वाद्य बजाये गये, गगन से गधोदक तथा पुष्पवृष्टि हुई, आकाश निमल हो गया, चारो प्रकार के वाद्यो के शब्दो से राजागण गुञ्जित हो गया, राजाओ ने स्वय कनकदण्ड लेकर गर्वशून्य होकर प्रणाम किया, कुल मत्रियो ने चमरछत्र लगाए, इस प्रकार सभी राज सेवको ने राजकुमार की सेवा की। और भी जो दूसरे थे उन सभीने हाथ जोडकर अभिवादन किया। अन्य नागरिको ने अपने हाथो से लाजाञ्जलि छोडी, सधवा स्त्रियो ने गायन और नृत्य किये ॥ 4 ॥

(5)

इसके बाद चन्द्रप्रभ के शासनकाल मे पृथ्वी पर होने वाले सारे दोष समाप्त हो गये सभी सुखी रहे और सतुष्ट हुए, मेघ की अमृत वर्षा हुई, वायु ने अत्यन्त मन्द गति से सचार किया, सूर्य ने अपनी मन्द किरणो की प्रखरता को कम कर दिया, चन्द्र ने भी अपनी किरणे चारो ओर फैला दी, हिमकाल ने किसी को कष्ट नही दिया, सभी को सुख का अनुभव होता रहा, राज्य मे कही अकालमरण नही हुआ, दुष्काल नही पडा, रोग नही फैला अनेक आश्चर्य हुए, प्रजा ने तृष्णा नही की विषाद नही था, विषयचाह नही थी, धर्म के प्रति अभिरुचि थी, पाप का भाव नही था, शोक गलित हो गया था, लोग दरिद्रता, दुख और चिंता से मुक्त हो गये थे। तथा जिनेन्द्र के गुणो से अनुरजित थे ॥ 6 ॥

(6)

इस प्रकार परमेश्वर चन्द्रप्रभ अपनी पृथ्वी का पालन करने लगे। इसके बाद सौधर्मेन्द्र ने मन मे सोचा—जिनेन्द्रदेव न इतने पूर्व लक्ष काल तक कुमार काल

बिताया, राज्य सुख भोगा, फिर भी अभी उन्हें वैराग्य जाग्रत नही हुआ । अब उन्हे वैराग्य का कारण प्रस्तुत किया जाना चाहिए जिससे वे तप और प्रचरण की ओर अपना चित्त लगा सकें । यह सोचकर शशिरुचि नामक देव को बुलाया और अपना भाव व्यक्त किया । शशिरुचि ने भी जिनेन्द्र को तदनुसार प्रतिबुद्ध करने का सकल्प किया ।। 6 ।।

(7)

इसके बाद शशिरुचि राज द्वार मे पहुँचा और भेष बदलकर अति वृद्ध का भेष धारण किया । उसके हाथ मे लाठी थी, वस्त्र जीर्ण शीर्ण थे । धीरे-धीरे वह चन्द्रप्रभ की सभा मे पहुचा और जोर-जोर से पुकारने लगा— हे स्वामी ! मेरी रक्षा कीजिए रक्षा कीजिए, आज रात्रि मे मुझे मृत्यु अपना भक्षण बना लेगी । राजा ने उसकी आवाज सुनकर कहा - आप आइए यहाँ, कहिए क्या कहना चाहते हैं ? दुःख है बताए । आकर समीप मे उसने पुन कहा— आप ससार के दृष्टा हैं जरा ने मेरे अगो को शिथल कर दिया है, अनेक रोग रूपी चोरो के द्वारा वे अग पीडित हैं , यम रूपी व्याघ्र अब प्राण-हरण करने आ रहा है, आप यदि जग रक्षक है तो मुझे बचाइए । यह कहकर वह अदृश्य हो गया । उसकी बात सुनकर राजा विचारने लगा, मृत्यु से कौन बचा सकता है ? वृद्धावस्था आने पर अगो से रोग कैसे दूर किये जा सकते है ? जग मे कोई किसी की रक्षा करने वाला नही है । काल सभी को लेकर जायेगा ही । एक-एक कर वह बारह अनुप्रेक्षाओ का चितन करने लगा ।। 7 ।।

(8)

चराचर जगत मे जो भी वस्तु रूप है वह सब क्षण भगुर है । धन, यौवन, जीवन, तनु आदि सारा प्रपच है और वह जल बुद्बुद् के समान क्षण भगुर तथा अनित्य है । दिन मे जिसके सिर पर राजपट्ट बधा है, रात मे उसी के सिर पर मरण घट रखा जाता है, दिन मे जिसे मगल-गीत सुनाया जाता है, रात मे वही स्त्रियो द्वारा आरोपित होता है, दिन मे जो गजपर पर बैठता है रात मे वही चोरो द्वारा बाध दिया जाता है । दिन मे जो धनिक लगता है, रात मे वह क्षीण दिखाई देता है, दिन मे जो स्नेह सिक्त दिखता है, तुरन्त ही वही शत्रु के समान हन्ता का रूप लिए खड़ा हो जाता है, जो पुद्गल चिरकाल से सुख-भाव देने आये हैं वे तत्क्षण दु खदायी बन जाते हैं, जिन परमाणुओ से पिण्ड बनता है उसी पिण्ड से परमाणु खण्ड-खण्ड होने लगते हैं । यह मनुष्य-जन्म फेन के समान निस्सार है । क्षण भर मे नष्ट होने वाला है । क्षण भर मे धर्म भाव पैदा होता है,

क्षण भर मे क्षय होता है, क्षण भर मे स्नेह होता है तो क्षण भर में वैर हो जाता है। प्रिय पुत्र, सुत, जननी, जनक, मित्र आदि हैं वे सभी अनित्य हैं। जल बुद-बुद के समान उनका जीवन अनित्य है। सभी विनष्ट होने वाले हैं, यह वचन पूर्णत सत्य है। तीनो भुवनो मे कोई शरण दिखाई नही देती, मृत्यु सभी के लिए समान है, उससे कोई किसी की रक्षा नही कर सकता। यह **अनित्यानुप्रेक्षा** है ॥ 8 ॥

(9)

कोई भी स्त्री-पुरुष ऐसा नही जो मृत्यु को लाघ सका हो। मृत्यु के आने पर इन्द्र भी हाहाकार करता है, दिक्पाल की भी वही गति होती है और जो कोई भी शक्ति सपन्न होते है, वे सभी नि शरण होकर प्राण छोड देते है। नर और कीटो की तो बात छोडिये, शक्र भी यम के रूठ जाने पर बच नही पाता। ये मूढ अज्ञानी जीव मृत्यु के समीप पहुँच जाने पर भी अपने आपको मृत्यु मुख मे क्षिप्त नही मानते। यदि कोई न कोई उसकी सूचना दे भी देता है तो वह मोह ग्रस्त हो जाता है। जो दिन मे जन्म लेता है वह रात मे मर जाता है। जब यम की आवाज सुनाई नही देती तो उससे बचने के लिए मणि मन्त्र आदि का उपयोग होने लगता है। यम को दूर मानकर लोग अपना मनोरथ सिद्ध करने मे लग जाते है, श्वासोच्छ्वास के छल से जीवन चलता है क्षण-क्षण मे वह क्षीण होता चला जाता है मूढ उसे समझ नही पाता। एक दिन जजरित होकर वह मृत्यु मुख मे समा जाता हैं। ससार सागर मे और भी अनेक दु ख है जिन्हे यह जीव भोगता है पर दु ख के कारणो की ओर विचार नही करता। यह **अशरणानुप्रेक्षा** है ॥ 9 ॥

(10)

भवजलधि के बीच चारो भीषण गतियो मे यह जीव परिभ्रमण करता है और दु ख भोगता रहता है। यहा शक्र भी मरकर मल का कीडा होता है और मल का कीडा भी शक्र हो जाता है, ब्राह्मण भी चाण्डाल जाति मे पैदा होता है और चाण्डाल भी ब्राह्मण हो जाता है, मित्र भी शत्रु हो जाता है और शत्रु भी अचल मित्र बन जाता है, माता भी कान्ता बन जाती है और कान्ता भी माता-पिता हो जाती है, पिता पुत्र और पुत्र पिता हो जाता है। यह भवजाली बडी विशाल है। जहा जीव अनतकाल से घूम रहा है। मनुष्य योनि मिलने पर भी वह भोग विलास मे ही लगा रहता है। बालाभ्यास से तरुणी स्त्री सूनो का स्पर्श करती है। पदार्थ विचार पाच प्रकार से होता है—द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और भव। ये सभी ज्ञेय है। अतीत काल मे अनन्त काल से इन्हे भोगते आए है और महान दु ख सहते आये हैं।

यह सब अकेले किया है। अकेले ही कर्मफल को भोगा है और अकेले ही चतुर्गतियो मे भ्रमण किया है। यह ससारानुप्रेक्षा है ॥ 10 ॥

(11)

यह जीवन अकेला ही विविध कर्म बाधता है, अकेला ही परमसुख का भोग करता है, अकेला ही वैतरिणी का जल पीता है और अकेले ही देवलोक के सुखो का उपभोग करता है, अकेले ही तिर्यञ्च गति के दु खों को सहता है और अकेले ही पृथ्वी के राज्य सुख को भोगता है, अकेले ही परदत्त पीडा को झेलता है और अकेले ही रमणीय रसो को पान करता है, परिवार के कारण पापो का बध करता है और अकेले ही उसका स्वाद लेता हैं, अकेला ही जन्म लेता है, अकेला ही मरता है, अकेला ही भवसागर मे समरण करता है, इहलोक मे अकेले ही सुख-दु ख भोगता है और परलोक मे भी अकेले ही सुख-दु ख भोगेगा। जिस प्रकार रात्रि मे पक्षी एक वृक्ष के नीचे मिल जाते हैं उसी प्रकार परिवार के लोग भी कुछ समय के लिए एक हो जाते हैं फिर भी यह मूढ जीव आत्मचिंतन नही करता। पर को अपना मानना है। निज परम भाव ही तो स्वभाव है। यह जीवन अकेले ही कर्मपाश काटता है और अकेले ही शिव सुख पाता है। इस प्रकार देह और जीव भिन्न-भिन्न हैं। जीव का शुद्ध स्वरूप स्पष्ट है। फिर भी वह जीव द्रव्य को अपना मानकर स्वय का हनन करता है। यह **एकत्वानुप्रेक्षा** है ॥ 11 ॥

(12)

जीव और देह पृथक्-पृथक् है। आत्मा अचल, अमूर्त और अनिन्द्रिय है जबकि देह समूर्त सचल और इन्द्रियवान् है। जिस प्रकार जल और जलत्व मे अनन्य भाव है उसी प्रकार जीव और देह मे पर स्वभाव है, अन्य स्वभाव है। जब देह और जीव अलग है तो उनमे एकात्मता कैसे हो सकती है ? जन्म जन्मान्तर से यह जीव पुत्र मित्र आदि से मोह करता चला आया है जबकि वे बिल्कुल अलग हैं प्रियजनो के वियोग से पहले भी वह सतप्त हुआ है। इस जन्म मे भी सतप्त हो रहा है। चिरभवो की यह बात अज्ञानी जीव भूल गया है और इस जन्म मे मोह करने लगा है। यह जीव ससार रूपी घोर अटवी मे भ्रमण करता फिरता है इसी अज्ञानता के कारण यह देह अशुचि और दुर्गन्ध का घर है। नव द्वारो से इसमे मल झरता है। फिर भी जीव इसमे विमोहित हो जाता है। यहां उसे जीव और देह की भिन्नता पर विचार करना चाहिए। यह **अन्यत्वानुप्रेक्षा** है ॥ 12 ॥

(13)

यह मानव देह मल का बीज है। गर्भाशय मल का घर है। यह देह सभी मलो और दुर्गन्धो का योनि-स्थल है। देह से अधिक घिनोना और कोई दूसरा पदार्थ नही है। कुकुम, कस्तूरी आदि द्रव्य उसे सुगन्धित बनाने के लिए लगाते हैं पर वस्तुत वे स्वय मलिन द्रव्य हैं। यदि यह देह चर्म से ढका हुआ न हो तो उसे कौन अपनाता है। यह सभी रोगो का घर है और इसके नव द्वारो से मल प्रवाहित होता रहता है। सारे पाप इसी देह से होते हैं, देह के कारण होते हैं। चिंतन करने पर यह समझ मे आता है कि देह का यह स्वभाव है। नारी का शरीर सौन्दर्य का घर मान लिया जाता है पर उसमे जितनी अपवित्रता है, वह अन्यत्र नही दिखाई देगी। परन्तु मिथ्या बुद्धि के कारण यह जीव उसमे रमण करता है। ऐसा चिंतन करना **अशुचित्वानुप्रेक्षा** है ।। 13 ।।

(14)

कर्मों के आने के मार्ग को आश्रव कहते हैं जैसे नाव मे छेद से पानी आ जाता है। इसी आश्रव के कारण जीव ससार मे जन्म लेता है। उसके दो भेद है—शुभ योग और अशुभयोग। शुभ कर्मों से शुभोपयोग होता है। इससे हेयोपादेय ज्ञान रूप विवेक प्रगट होता है। इससे उपशम और वैराग्य भाव की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत अशुभयोग योग है जो मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग से उत्पन्न होता है इन अभावो के कारणों पर चिंतन करना आश्रवानुप्रेक्षा है और इन आश्रवो को कैसे दूर किया जाय। यह सवरानुप्रेक्षा से स्पष्ट होगा ।। 14 ।।

(15)

आश्रव के निरोध को सवर कहते है। उसके दो भेद हैं—द्रव्य संवर और भावसवर। दान आदि से कर्म पुद्गलो का जो सवर होता है वह द्रव्यसवर है और सुख का कारण है। जो भव के कारणों को दूर करता है वह भावसवर है। जो सयमधारी होते हैं उनके ऊपर आश्रव के बाण निष्फल हो जाते हैं। जिसका जो शस्त्र होता है वह उसी से मरता है। सवर के कुछ शस्त्र हैं जिनसे आश्रव का निरोध किया जाता है। उदाहरणत क्षमा से क्रोध का, मार्दव से मान का, ऋजुता से माया का, धीरता से मन की चपलता का, परिग्रह के त्याग से लोभ का, जिन प्रोक्त धर्मध्यान से मोह का, सम भाव से राग-द्वेष का, निर्ममता से स्नेह का, सम्यग्दर्शन से मिथ्यात्व का, मुक्ति चिंतन से भवभाव का, तत्वचिंतन से मदन का, नरकचिंतन से परीषह का, निरोध किया जाता है। इसी तरह के और भी जो विपरीत भाव है उनका निरोध सवरानुप्रेक्षा से होता है। और इसी से मे फिर निर्जरानुप्रेक्षा का मार्ग प्रशस्त हो जाता है।

(16)

आत्मा के साथ लगे हुए पौद्गलिक कर्मों के आंशिक क्षय को निर्जरा कहते हैं। इसके दो भेद होते हैं—अकामनिर्जरा या अबुद्धिपूर्वक निर्जरा और सकाम निर्जरा अथवा कुशल मूलनिर्जरा। आत्मा के साथ बंधे हुए कर्म अपनी स्थिति को पूर्ण करके आत्मा से सबंध स्वय ही छोड़ देते हैं। इसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नही करना पड़ता। यह अकामनिर्जरा है। दूसरी जो सकाम निर्जरा है उसमे दुर्धर तप आदि करने पडते हैं। तप करने और परीषहो के जीतने से कर्मों की स्थिति पूर्ण होने के पहले ही निर्जरा हो जाती है। अतएव इसके निमित्त से जीव मोक्ष के मार्ग मे अग्रसर हो जाता है। अकामनिर्जरा से चतुर्गतियो मे दुःख भोगना पडते हैं क्योंकि कर्म विपाक होने पर ही वे फल दे पाते हैं। मुनिगण सकामनिर्जरा किया करते हैं। बारह महाव्रतो का पालन भलीभांति कर बाईस परीषहो को सहन कर और उत्तर-गुणो को पालकर कर्मों की निर्जरा कर डालते हैं इससे आत्मा की पवित्रता प्रगट हो जाती है। यही निर्जरानुप्रेक्षा है। इसी से फिर लोकानुप्रेक्षा पर चिंतन किया जाता है ॥ 16 ॥

(17)

जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, और आकाश ये पाच अस्तिकाय जिसमे रहते हैं वह लोक है। उसकी कुल ऊंचाई चौदह राजू मानी जाती है। उसका आकार उसी प्रकार का है जिस प्रकार कमर पर दोनो हाथ रखकर पैर फैलाये पुरुष का आकार होता है। अधो लोक सात राजू प्रमाण नीचे है, एक राजू पृथ्वी का विस्तार, पाच राजू प्रमाण स्वर्ग स्थान और एक राजू प्रमाण उसके ऊपर का भाग है। अधोलोक मे सात नारकीय भूमियां अवस्थित हैं। यह समूची पृथ्वी घनोदधि, घनवात और तनु वातवलय के आधार पर टिकी हुई है। मध्य लोक मे असख्यात द्वीप-समुद्र हैं। उनके बीच जम्बू द्वीप है फिर धातकी खण्ड और पुष्करार्ध द्वीप। इसी को अढ़ाई द्वीप कहते हैं। मनुष्य यही तक पहुच सकता है। जन्म-मरण भी यही होता है। जम्बू द्वीप के बीच मे मेरु पर्वत है जिसके ऊपर ऊर्ध्वलोक है जिसमे 16 स्वर्ग हैं जिनमे रहने वाले देव कल्पोपपन्न कहे जाते हैं। उनके ऊपर 9 कल्पातीत विमान (ग्रैवेयक) होते हैं और फिर 5 अनुत्तर विमान (सर्वार्थ सिद्धि) होते हैं। उनके ऊपर सिद्धशिला है जहां मुक्तात्माएँ अनन्त काल तक रहती हैं। जिसके बाद अलोकाकाश आरम्भ हो जाता है। इसका चिन्तन करना लोकानुप्रेक्षा है इससे बोधिदुर्लभ भावना की भूमिका बन जाती है ॥ 17 ॥

(18)

धर्म के उत्तम क्षमा मार्दव आदि दस लक्षण बताये गये है जिनका पालन कर जीव भव-सागर के पार पहुँच जाता है। जिन धर्म वस्तुत कल्पवृक्ष है। वह यथार्थ सुख देने वाला है, सकल दुखो का विनाशक है, रक्षण करने में समर्थ है, अमृत सदृश है, मेघ वर्षा भी धर्म से होती है और धर्म से ही घर मे संपत्ति आती है और रत्नवृष्टि होती है, स्वर्ग प्राप्त होता है, तीर्थंकरपद मिलता है, इन्द्रपद मिलता है, अतिशय गुण उत्पन्न होते है, सर्वत्र विजय होती है, सकल कार्य सिद्धि होती है, और अनुपम मोक्ष प्राप्ति होती है इस प्रकार धर्म से प्राप्त होने वाले लाभो का चिन्तन करते हुए निर्मल बोधिरत्न प्राप्त कर जीवन सफल बनाना चाहिए। यही **बोधिदुर्लभानुप्रेक्षा** है ॥ 18 ॥

(19)

अनेक बार यह जीव स्थावर हुआ भव-सागर मे भ्रमण किया, लाखो योनियो मे भटका, पचेन्द्रिय विषय भोगो का उपभोग किया। अत्यन्त दुर्लभता पूर्वक मनुज जन्म पाया, उसमे भी जिनधर्म पालने का अवसर मिला। बोधि प्राप्ति मे भी बहुत विघ्न होते हैं। सुभट रूपी कर्मों ने सपराय किया मनुज जन्म मे यदि लम्बी आयु मिल भी गई तो धर्म का मिलना कठिन होता है, फिर निरोगता की प्राप्ति और कठिन होती है, उससे भी कठिन होता है जिनधर्म की प्राप्ति। जिनधर्म की प्राप्ति हो भी गई तो चित्त का शात होना कठिन होता है, उसमे भी मुनि के प्रति भक्ति और कठिन होती है। भक्ति होने पर वैराग्य हो और वह भी चिरकाल तक रहे यह और भी कठिन होता है। कभी बोधि मिल भी जाती है। पर वह छूट भी जाती है, मोक्ष मे प्रवेश कर निकल भी जाती है, दुख इस बात का है कि समुद्र से प्राप्त यह चिन्तामणि समुद्र मे ही फेंक दिया जाता है। ऐसे जीव अमृत से वस्त्र धोते हैं। हा ! प्राप्त बोधि हाथ से चली जाती है। इसकी किससे उपमा दी जाये। इस तरह से बहुत से अविनीत पाखण्डी जग मे भ्रमण करते रहते है। वे परमात्मा का चिन्तन नही करते, दुर्लभ बोधि धर्म को प्राप्त नही करते ॥ 19 ॥

(20)

इस प्रकार बारह भावनाओ को भाते हुए चन्द्रप्रभ ने अपने पुत्र को राज्य देकर दुर्धर तप करने का निश्चय किया। इतने मे लौकान्तिक देव आये और उन्होने भक्ति पूर्वक निवेदन किया कि हे त्रिजगदीप ! इन भव्य जीवो का उद्धार कीजिए। ये भव समुद्र मे पडे हुए हैं, अपार दुःख भोग रहे हैं, मोहान्धकार से ग्रसित हैं सम्यग्दर्शन के प्रति रुचि नष्ट हो गई है। हे ज्ञान दिवाकर ! कर्म की अवधारणा को स्पष्ट

कीजिए। आप ही इस जग का उद्धार कर सकते हैं। शिव नगर के द्वारों को उद्घाटित कीजिए, तीर्थरत्न को प्रस्फुटित कीजिए, सकल लोक मे धर्मामृत की वर्षा कीजिए। इस तरह ब्रह्म देव ने बडे विनय भाव से अर्चना की और दुन्दुभी बजाई। दसो दिशाओ मे उसकी आवाज फैल गयी। फलत हर्षित होकर देवगण वहा एकत्रित हो गये ॥ 20 ॥

(21–22)

इसके उपरान्त इन्द्र वहा आया और बडी भक्ति पूर्वक स्तुति कर 'विमला' नाम की शिविका (पालकी) मे बैठाकर भगवान को सकलतु नामक वन मे ले गये। उस शिविका मे सौधर्मेन्द्र ने अपना कधा दिया। शिविका के आगे चन्द्रसूर्य थे। सभी देवगण पालकी के चारो ओर नाच रहे थे। दिव्य पुष्प वृष्टि हो रही थी, गीत गा रहे थे, सुर कीणा बज रही थी, दिव्य वस्त्र ला रहे थे, मगल मालाएँ लिए देवांगनाएँ हाथी पर सवार थी। इस तरह भक्ति भावपूर्वक सभी सकलतु वन पहुँचे। वहा के समय असमय के सारे पुष्प और फल पुष्पित-फलित हो गये। किंशुक, करवीर, ककोल, कास, कपास, खजूर, चपक, चंदन, अभ्र, जूही, ताम्रालि, दाडिम, णारग, लवण आदि सभी वृक्ष खिल उठे ॥ 21–22 ॥

(23–24)

सकलतु वन पहुँचने पर भगवान को शिविका से उतारा और निर्मल शिलाताल पर बैठाया। वहा वरचन्द्र नामक अपने पुत्र को राज्य देकर सिद्ध परमेष्ठी को नमनकर पौष कृष्णा एकादशी के दिन अपने संसार का अन्त करने के उद्देश्य से पच मुष्टियो से केशो का लुञ्चन किया। इन्द्र ने उन केशों को भक्ति भाव पूर्वक मणि-पात्र मे रखकर क्षीर समुद्र मे प्रवाहित कर दिया। फिर रत्नदीप्त कुण्डल उतारा मानो काम रथ का चक्र छोड दिया हो, कठ से मणिहार उतारा मानों मोहपाश काटा हो, केयूर उतारा मानो कर मुद्रा छोडी हो, कटि सूत्र तोडा मानों काम धनुष की प्रत्यचा सूत्र हो। इसी तरह नूपुर, सूक्ष्म वस्त्र आदि अन्य आभरण भी त्यागे जो भवबधन के परिचायक थे और इस तरह जैनेन्द्र दीक्षा ग्रहण की। सभी देव गण हर्षित और पुलकित हुए। परिवार के लोग भी यद्यपि सतप्त थे पर उन्हें भी प्रसन्नता हुई। अन्त पुर वियोग से तप्त हो गया, शोकमग्न हो गया, पुत्र भी शोक सतप्त हो गया। सभी ने उन्हे सान्त्वना दी बाद मे देवो ने भगवान की पूजा भक्ति की, स्तुति की और अपने-अपने स्थान चले गये ॥ 23–24 ॥

दशम संधि

(1)

चन्द्रप्रभ ने पच महाव्रत और पच समितियो का परिपालन किया, पंचेन्द्रिय द्वारो का सवर किया, षडावश्यको का पालन करते हुए परीषहो को सहा, अचेलकता से मन चपल नही हुआ, अस्नान और दतधावन को छोड दिया, खडे होकर भोजन करने लगे, मूल गुणो और उत्तर गुणो की भावना की, बारह प्रकार का तप किया। इस प्रकार उनका निर्मल और निश्चल चरित्र था। शत्रु और मित्र के प्रति समता भाव था, शक्र और रक तथा सुख और दुख के प्रति समभाव था, पाप और पुण्य, रज्जु और चरण, भिखारी और धनी, ससारी और मुक्त सभी उनकी दृष्टि मे बराबर थे। इस प्रकार भावन करते हुए दो उपवासो का नियम ले लिया ॥1॥

(2-4)

जिनवर ने एषणा शुद्धि का विचार किया, सयम परिपालन मे बुद्धि लगाई, चौदह मल दोषो और बत्तीस अतराय दोषो (कुल 46 दोषो) से मुक्त आहार किया। पाणिपात्र मे आहार लेते थे रसनेन्द्रिय लोलुपी नही थे। इनके अतिरिक्त और भी जो नियम पूर्वाचार्यों ने चर्या के सदर्भ मे बनाये थे उन सबका भलीभाति पालन करते हुए मुनिवर ने दुर्धर तप किया। बाद मे उन्होने वह वन प्रदेश छोड दिया। बिहार करते हुए नलिनपुर नगर आये। आहार चर्या के लिए वे घर-घर घूमते रहे। उनके आगे-पीछे लोग भी घूमते रहे। बाद मे वे राजगृह पहुँचे जहा राजा सोमदत्त ने बडे भक्तिभाव से पडगाकर उन्हे आहार देने का सकल्प व्यक्त किया। उसने प्रासुक जल से सिंहासन आदि को धोया। भगवान ने यथोचित आहार व्यवस्था देखकर पारणा ली। आकाश मे दुन्दुभी बज उठी, सर्वत्र साधुवाद की आवाज गूज उठी, गगन से रत्नवृष्टि, गधोदक वृष्टि और पुष्प वृष्टि होने लगी। त्रिभुवन पुलकित हो गया। भोजन कर भगवान ने जल-ग्रहण किया। भगवान का आहार देखकर लोगो को आहारविधि समझ मे आई। राजा सोमदत्त ने भगवान की पूजा की, अष्टागविधि

से भक्ति की, गंधोदक लगाया, अक्षत चढ़ाये, पुष्प-पूजा की, नैवेद्य चढ़ाया, दीपक से आरती की, अज्ञान रूप तम का विनाश हो यह मानकर धूप खेई, पुष्पाञ्जलि की। इस प्रकार भगवान की चरणपूजा और भक्ति कर राजा ने अपना कर्मक्षय किया ।।2–4।।

(5)

हे भगवान् ! आप त्रिजगपति हैं, परोपकार के लिए आपने शरीर धारण किया है, तीनो लोको को प्रवृत्त किया है, धन्य किया है, विशेषत मैं शोक-दुःख से मुक्त हो गया हू। आपने सप्ततत्वो को समझा दिया है, भव्यो के कर्म-पक को धो दिया है, दोषो को दूर करने वाला नय-रथ प्रदान किया है, आपकी जो साधना भूमि है उसमे लोग अपने पापो को छोड देते हैं इसलिए उसे तीर्थ कहा जाता है। उसमे अवगाहन करने से साधको को स्वर्ग और मोक्ष की उपलब्धि होती हैं। आप परमात्मा हैं, निर्मल हैं, कल्पवृक्ष हैं, सुखदाता हैं, दु खभजक हैं। आपके गुणों की स्तुति कौन कर सकता है ? इन्द्र भी इसमे समर्थ नही हैं। इस प्रकार राजा ने स्तुति की ।।5।।

(6)

बाद मे जिनेन्द्र वहां से धीरे-धीरे आगे बढे और निरालस होकर ईर्यासमिति का पालन करते रहे। बिहार करते हुए वे उसी सकलतुं वन मे पहुँचे जहाँ उन्होने दीक्षा ली थी। बाईस परीषहो को सहन करते हुए और बारह तपो का आचरण करते हुए वे एक वृक्ष के नीचे आसन लगाकर बैठ गये। घनघोर वर्षा होने लगी रात का सान्द्र अन्धकार चारो ओर फैल गया, डांस-मच्छरो ने शरीर को नोच डाला, कानो के परदो को फाडने वाली मेघ गर्जना होने लगी, बिजली चमकने लगी, शरीर को कपित करने वाली घनवात चलने लगी, कठोर हिमवात बहने लगी जिससे वृक्ष भी प्रभावित होने लगे। ग्रीष्मकाल आने पर सूर्य की प्रखर किरणें प्रलय काल का दृश्य उपस्थित करने लगी, दावानल मे जगल जलने लगे, गिरि तटो पर आतापन दु खदायी हो गया। ऐसी विषमावस्था मे जिनेन्द्र देव आत्मध्यान मे लीन रहे, शुभ रस का पान करते रहे। उन्हे किञ्चित् भी दु.ख की वेदना नहीं हुई और वे वैराग्य मे लीन रहे। इस तरह तप का आचरण करते हुए शुभ ध्यान में लीन रहे ।।6।।

(7)

इसके बाद वे नागवृक्ष के नीचे वज्रासन लगाकर शिलातल पर बैठ गये और शुक्ल ध्यान मे लीन हो गये जो मोह-महातम के लिए प्रलय भानु है, वज्र-वृषभनाराच-

सहनन रूप है पूर्वधरो के लिए सिद्धि-दायक रहा है, मोह को शीघ्र ही नष्ट करने वाला और शुक्ल ध्यान को शीघ्र ही प्रस्फुटित करने वाला है। उस शुक्ल ध्यान के चार भेद हैं—पृथक्त्ववितर्क, एकत्ववितर्क, सूक्ष्मक्रियाप्रतिपाति और व्युपरतक्रिया-निर्वृत्ति। जिन जीवो के मन-वचन-काय मे तीनो योग रहते हैं उनके पहला शुक्ल-ध्यान पृथक्त्व वितर्क हो सकता है और जिन जीवो के इन तीनो मे से एक ही योग पाया जाता है उनके दूसरा शुक्लध्यान एकत्ववितर्क हो सकता है। जो तीनो मे से केवल काययोग को ही धारण करने वाले हैं उनके तीसरा शुक्लध्यान होता है और जो तीनो ही योगो से रहित है उनके चौथा शुक्लध्यान हुआ करता है। पहला और दूसरा ध्यान सवितर्क होता है। पहला ध्यान विचार सहित भी होता है। दूसरा ध्यान वितर्क सहित पर विचार रहित होता है। ये दोनो ध्यान श्रुतकेवली के ही हुआ करते हैं। शेष दोनो अतिम ध्यान केवली के होते है। यहा सभी की साधना मे भगवान ने प्रथम दो ध्यान पा लिये ॥7॥

(8)

इसके बाद उन्हे केवलज्ञान प्राप्त हुआ जिसमे वस्तुतत्व हस्तामलकवत् दिखाई देने लगता है। यह ज्ञान निष्कलक है, निष्कारण है, महान है, नित्य और निरजन है अनत गुणवान् है, सर्वज्ञेय प्रकाशक है, छेद विवर्जक है, परम सुखदाता है, परमात्म भाव से प्राप्त होने वाला है, भवभाव का विनाशक है। रत्नत्रय के परिणामो का प्रसारक है, युगपत् सर्व पदार्थों का अवभासक है, तीनो कालो तक उसकी पहुच है, त्रिकालवर्ती पदार्थों के गुण-पर्यायो को एक साथ प्रत्यक्ष रूप से जानने वाला है ॥8॥

(9)

इसके बाद इन्द्र का आसन कपित हुआ, घटो से आवाज निकली जिसे सुनकर सुरगण आश्चर्यान्वित हो गये। ज्योतिषी देवो के घर सिंहनाद हुआ। दिग्गजो ने कहा—आदेश दीजिए। व्यतर देवो के घरो मे पटहनाद हुआ जिससे वे स्वय विस्मित हो गये। भवनवासी देवो के घरो मे असख्य वाद्य बजे जिससे वे भी आश्चर्यचकित हो गये। इसके बाद सौधर्म इन्द्र (कुबेर) को ज्ञान हुआ कि चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र को केवलज्ञान प्राप्त हो गया है। वह अत्यन्त हर्षित होकर तुरन्त हाथ जोडकर शक्र के पास-पहुचा और आदेश की याचना की। शक्र ने कहा—धर्मकार्य करो और जैनधर्म का उद्योतन करो। भगवान को केवलज्ञान उत्पन्न हो गया है। उनके पास जाकर उनके समवशरण की रचना करो। कुबेर ने तुरन्त ही विनम्रतापूर्वक आदेश को स्वीकार किया और सपरिकर भगवान की सेवा मे पहुच गया ॥9॥

(10)

इन्द्र की आज्ञा से कुबेर ने सपरिकर आकर समवशरण की रचना की। वह समवशरण साढे आठ योजन प्रमाण विस्तृत था। उसमे पच वर्णों के मणि लगे थे, तल भाग नीले रग का था। समवशरण के चारो ओर वलयाकार गोल धूलीसाल (पाचरगो के रत्नो की धूलिसे बना हुआ प्राकार था। उसमे कही मरकतमणि, कही पद्मराजमणि, कही चन्द्रकांत मणि और कही कर्कराग लगे हुए थे। इस प्रकार धूलिसाल (चहारदीवारी) की शोभा मनोहारी थी। उसमे चार द्वार थे जो मणिमय तोरणो से सजे हुए थे। उनके बाहर मणि निर्मित बावडी थी जो निर्मल जल से आपूर थी। दिशाओ मे चार ऊचे मान स्तभ थे जो त्रिभुवन के मान दलन करने के प्रतीक थे। उनमे चारो दिशाओ मे जिन प्रतिमा रखी हुई थी। उनके आगे पुष्पो से आच्छादित निर्मल जल से भरी परिखा थी ।।10।।

(11-13)

परिखा के तट पर अनेक प्रकार के फूलो से अलंकृत विशाल फुलवाडी थी, उसका चार दरवाजो से युक्त अत्यन्त ऊचा शोभा सम्पन्न प्राकार था। उसके आगे एक बडा उपवन था जो विविध वृक्षो से भरा हुआ था, उसके आगे रतनसार वेदी फिर प्राकार उसके आगे देववृक्ष, फिर शाल वृक्ष, फिर रत्नसार और उनके ऊपर अशोक वृक्ष बनाये गये। उनके नीचे मणि जटित सिहासन, गध कुटि और अनेक प्रकार की मालाओ से उनको शोभित किया गया। उनके बाद अनेक प्रकार के सभा मण्डप थे। उनमे पाच वेदियाँ और उनमे मण्डित मणि-रचित समवशरण था। इस मण्डप का हर पोल मणि तोरण से सज्जित था। चारो दिशाओ मे बीस हजार सोपान थे। प्रथम पोल व्यन्तरो द्वारा और द्वितीय पोल नाग सुरेश्वर द्वारा रक्षित था। वही मणिदीप्त नवनिधान मगल द्रव्यनिधिया आदि थी। प्राकार के भीतर दोनो भागो मे दो-दो नृत्य शालाए थी जिनके आगे देवो से व्याप्त चार वन थे। उन वनो मे जिनबिम्बो से विराजित जिनप्रतिमा सहित चार चैत्य वृक्ष थे, मणिनिर्मित तटो से युक्त तीन-तीन वापिकाए थी अनेक प्रकार के सभा मण्डप थे जो अनेक क्रीडा पर्वतो से विभूषित थे। ये क्रीड़ा पर्वत जल की धारा बहाने वाले यन्त्रो तथा भौरो से व्याप्त लतामण्डपो से विभूषित थे। प्राकारो के भीतर विशाल बारह कोठे थे जिनके आगे मणि रचित चार तोरणो से विभूषित धवलावर्ण की वेदी थी। उसके आगे तीन पीठ थे जो अनेक प्रकार के रत्नो से विभूषित थे। प्रथम पीठ पर श्री धर्मचक्र था जो एक हजार आरो से युक्त था, द्वितीय पीठ पर श्री अष्टकेतु और तृतीय पीठ पर श्री देवश्रेष्ठ विराजित थे। उसके बाद रत्नजटित सिहासन और उसके ऊपर तीन छत्र शोभित थे। उसके नीचे निरवलम्ब परमेश्वर थे। वही भवनवासी 20, व्यतर 16, कल्पवासी 24, सूर्य और चन्द्र इस तरह 64 देव चमर

ढुला रहे थे। सिंहासन के बाहर गधगेह (गधकुटी) थे जो अनेक प्रकार के पुष्पो से सज्जित थे वहां सारी पृथ्वी चदन से सिञ्चित थी, सुवासित थी, सर्वत्र कुसुम वृष्टि हो रही थी, रगावलिया छोडी जा रही थी। और भी इसी तरह की अन्य वस्तुए लाने मे यक्ष जुटे हुए थे। इसके बाद दुन्दुभी बजाई गई, चारो निकायो के देव जय जयकार करते हुए चल पडे।

(14)

सुरेन्द्र ऐरावत पर आरूढ था, दिग्पाल भी सपरिवार चल रहे थे। आकाश मे दुन्दुभी का शब्द गर्जित हुआ जिससे समुद्र की लहरो जैसी तेज आवाज आई। धवल वर्णो के विमान समुद्र के फेन जैसे लग रहे थे जिसमे सुरवाहन जलचर का सदेह पैदा कर रहे थे। वही छत्र, कमल, विद्रुम, मुक्ता फल, धूम मण्डल की भी अनुपम शोभा थी। वहीं शख श्वेत पक्ष जैसे लग रहे थे। वाडवाग्नि ऐरावत जैसी प्रतीत हो रही थी। अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। इस प्रकार बडी धूमधाम से नृत्य करते हुए देवगण केवली भगवान के पास पहुचे।

(15)

सिंहासन के बीच भगवान चन्द्र के समान विराजमान थे। वे चार घातिया कर्मो के क्षय होने के कारण अतिशय और प्रातिहार्यों से युक्त थे। जहा-जहां वे विहार करते थे वहा-वहा सौ-सौ योजन तक दुर्भिक्ष नही रहता था। गगन विहारी जीव निर्भय होकर बिहार करते थे। किसी का कोई उपसर्ग नही होता था। भगवान का चतुर्मुखी रूप छाया विहीन था, लोचन निष्पद था, सकल विद्याए मानो सनाथ हो गई केशवृद्धि रुक गई। इत्यादि दस अतिशय हुए ससार मे उनका तीर्थरथ चला सर्वत्र जीवो मे मैत्री जागृत हुई, वृक्ष, पुष्पो और फलो से आच्छादित हो गये, पृथ्वी निर्मल दर्पण के समान निर्दोष दिखी, शीतल समीर प्रवाहित होने लगा। गगन मण्डल निर्मल हो गया, आठ मगल और धर्मचक्र प्रगट हुए। मागधी भाषा मे दिव्यध्वनि खिरी, देवो ने स्तुति की। इस तरह दिव्य अतिशयो और निधियो से युक्त केवली भगवान चन्द्रप्रभ की आराधना करते हुए देवगण समवशरण मे यथा स्थान बैठ गये।

(16)

देवो ने बडी भक्ति और विनम्रता पूर्वक हाथ जोडकर भगवान से प्रार्थना की कि हे भगवान ! हमारे चतुर्गतियो के ससारभ्रमण को नष्ट कीजिए। हे परमेश्वर ! आप आत्मरूप हो, रत्नत्रय स्वरूप हो, आपने आत्म स्वरूप को प्राप्त कर लिया है

अत: अब पर द्रव्यों से हमारे भावो को मुक्त कीजिए। आपने ज्ञानामृत स्वभाव को पा लिया है, अत अब ससार मे जन्म-मरण कराने वाली कषायो को छुडाइए। आप परमात्मा हैं, आप समस्त पदार्थों के द्रष्टा हैं, एक रूप हैं, रूपनिर्मुक्त है, शीतल हैं, शिवप्राप्ति मे सहायक हैं, कर्ता, कर्म, क्रिया आदि कारको से आपका चित्त उन्मुक्त है, अब और कौनसा परिग्रह हैं जो आपको छोडता है। जो पर्यायमुक्त द्रव्य समूह है उसे आपने अपने निर्मल आत्मज्ञान से जान लिया है। जो त्रिभुवन के भव्य जीव आपके सपर्क से शुद्ध हुए हैं। आपकी जितनी भी स्तुति की जाये, थोडी है। अगुलि पर गणनीय है। जो मन-वचन से आपकी स्तुति करता है वह केवलज्ञान को प्राप्त कर लेता है। आपको जो थोडा भी जान लेता है उसके दुःख दूर हो जाते हैं। इस प्रकार सुरेश्वर द्वारा स्तुति करने के बाद सभी देवगण उपशम भाव से अपने-अपने कोठे मे बैठ गये।

(17)

प्रथम कोठे मे मुनिराज, दूसरे मे कल्पवासिनी देवियाँ, तीसरे में आर्यिकाएँ, चौथे मे ज्योतिषी देवियां, पांचवें मे व्यतर देवियाँ, छठे मे भवनवासिनी देविया, सातवे मे भवनवासी देव, आठवें मे व्यतर देव, नौवें मे ज्योतिष्क देव, दसवें मे कल्पवासी देव, ग्यारहवें मे सुशील मनुष्य और बारहवें मे अतामस तिर्यञ्च बैठे। अपने चिरकालीन वैरभाव को छोडकर प्राणी समता भाव को प्राप्त हुए। व्याघ्र शावक गाय का स्तन-पान करने लगा, मूषक मार्जार के बच्चे के साथ खेलने लगा, नेवला सर्प का मुह चुबन करने लगा। सिंह और हाथी अपना दर्प छोडकर मिलने लगे। उस समय न किसी का जन्म-मरण हुआ, न कोई भूख और तृष्णा से पीडित हुआ और न किसी ने क्रूरकर्म किये। किसी को निद्रा, रोग, कदर्पमान, पीडा, भय, दुष्ट भाव आदि भी नहीं हुए।

इस प्रकार भव्यजन निर्मल मन होकर बारहो कोठो मे यथास्थान बैठ गये और बाद मे हाथ जोडकर धर्मोपदेश के लिए प्रार्थना की।

यहां मैंने (अनुवादक ने) विषय का यथावश्यक विस्तार कर दिया है।

ग्यारहवीं संधि

(1)

इसके बाद अमृतस्वभावी दिव्यध्वनि खिरी। जिसे मागधवाणी कहा गया है। उसे सभी ससारी जीवो ने अपनी-अपनी भाषा मे समझ लिया। गणधर ने उसका विस्तार किया। परमेश्वर ने सप्त तत्वों का व्याख्यान किया। उन्होने कहा–प्रत्येक द्रव्य में तीन तत्त्व रहते हैं–उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य। तत्त्व सात हैं–जीव, अजीव, आश्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष। इन सप्त तत्वों की विशद व्याख्या लोगो के सदेहों को दूर करने वाली होती है। जीव द्रव्य के दो भेद हैं–ससारी और सिद्ध। संसारी जीव के भी दो भेद हैं–त्रस और स्थावर। त्रस जीवो के चार और स्थावर जीवों के पाच भेद होते हैं। पुन स्थावर के दो भेद हैं–सूक्ष्म और बादर। त्रस-स्थावर के भी दो भेद हैं–पर्याप्तक और अपर्याप्तक ॥1॥

(2)

त्रस जीव चार प्रकार के हैं–द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पचेन्द्रिय। दो इन्द्रिय जीवो के स्पर्शन और रसना इन्द्रिय होती हैं। तीन इन्द्रिय जीवो के स्पर्शन, रसना और घ्राण इन्द्रिया होती है। चतुरिन्द्रिय जीवो के स्पर्श, न रसना, घ्राण और चक्षु इन्द्रिया होती हैं तथा पचेन्द्रिय जीवो के स्पर्शन रसना, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र इन्द्रिया होती हैं। इनमे कुछ सज्ञी भी होते हैं। एकेन्द्रिय जीव की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण कुछ अधिक एक हजार योजन है। डीन्द्रिय जीव के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण बारह योजन है। त्रीन्द्रिय जीवो के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण तीन कोश है और चतुरिन्द्रिय जीव के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण एक योजन है। पचेन्द्रिय जीवो के शरीर की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण एक हजार योजन है। एकेन्द्रिय से लेकर चतुरिन्द्रिय पर्यन्त सभी जीवो का जन्म समूर्छन ही हुआ करता है। पशु-पक्षियो और मनुष्यो का जन्म गर्भ से होता

है। देव और नारकियो का जन्म औपपादिक होता है। देवो और नारकियो के अचित्त योनि होती है। गर्भ जन्म वालो की मिश्र–सचित्ताचित्त योनि होती है और शेष जीवों के तीनों तरह की योनि होती है–सचित्त, अचित्त और सचित्ताचित्त। गर्भ जन्म वाले तथा देवगति के जीवों के मिश्र रूप शीतोष्ण योनि होती है, तेजस्कायिक जीवो के उष्ण योनि होती हैं शेष जीवो के तीनों ही प्रकार की योनि हुआ करती है–शीत, उष्ण और शीतोष्ण। नरक गति तथा एकेन्द्रिय जीवो के और देवो के संवृत योनि ही हुआ करती है। गर्भ जन्म वालों के मिश्र–सुसवृतविवृत, किन्तु शेष जीवो के तीनों ही–सवृत, विवृत, और सवृतविवृत योनि हुआ करती हैं। पृथिवी कायिकजीवों की उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष, जल कायिक की सात हजार, वायु कायिक की तीन हजार, वनस्पति कायिक की दस हजार और तेजस्कायिक जीवो की उत्कृष्ट आयु केवल तीन दिन की है, द्वीन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु बारह वर्ष की, त्रिन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु एक कम पचास दिन की, चतुरिन्द्रिय जीवों की उत्कृष्ट आयु छह मास की और पचेन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट आयु एक पूर्व कोटि की है ॥2॥

(3)

इन्द्रियो का आकार स्पर्शनेन्द्रिय के सिवाय चार का नियत है और स्पर्श-नेन्द्रिय का अनियत है, श्रोत्रेन्द्रिय का आकार यवनाली के सदृश, चक्षुरिन्द्रिय का आकार मसूर अन्न विशेष के समान, घ्राणेन्द्रिय का आकार अतिमुक्तक पुष्प विशेष के तुल्य और रसना इन्द्रिय का आकार क्षुरप्र (खुरपा) सदृश हुआ करता है। स्पर्शनेन्द्रिय का आकार शरीर के अनुसार नाना प्रकार का होता है। सज्ञी के स्पर्शन, रसना, घ्राण का क्षेत्र नौ–नौ योजन, क्षेत्र और चक्षु का सैंतालीस हजार दो सौ त्रेसठ से कुछ अधिक है। मन के दो भेद हैं–द्रव्यमन और भाव। द्रव्य हृदय मे अष्टावर्त वर्त कमल के समान है और भावमन आत्मा रूप है। इसके बाद सक्षेप मे त्रिभुवन का वर्णन किया जायेगा ॥2॥

(4–5)

तीन वलयो से वेष्टित रत्नप्रभा आदि सात नरक पृथ्वियां सात राजू प्रमाण नीचे अधिष्ठित है। प्रथम रत्नप्रभा पृथ्वी एक लाख अस्सी हजार योजन मोटी है। जिसके तृतीय भाग अब्बहुल के मध्य भाग में नरक बिल हैं। वे इन्द्रक श्रेणि और पुष्प प्रकीर्णक के रूप मे तीन विभागो मे विभाजित हैं। इसके 13 नरक प्रस्तार हैं और उनमे सीमान्तक निरय रौरव आदि 13 ही इन्द्रक हैं। शर्कराप्रभा में 11 नरक

प्रस्तार और 11 इन्द्रक हैं। बालुकाप्रभा में 9 नरक प्रस्तार और 9 इन्द्रक हैं। पकप्रभा मे 7 नरक प्रस्तार और 7 इन्द्रक हैं। धूमप्रभा मे 5 नरक प्रस्तार और 5 इन्द्रक हैं। तमःप्रभा मे तीन नरक प्रस्तार और तीन ही इन्द्रक हैं। और महातमःप्रभा मे एक ही इन्द्रक नरक है। सीमान्तक इन्द्रक नरक की चारो दिशाओ और विदिशाओ मे क्रमबद्ध नरक हैं तथा मध्य मे प्रकीर्णक दिशाओ की श्रेणी मे 49-49 नरक हैं, तथा विदिशाओ की श्रेणी मे 48-48। निरय आदि शेष इन्द्रको मे दिशा और विदिशा के श्रेणीबद्ध नरको की सख्या कम से कम होती गई है। सातवें की विदिशाओ मे नरक नही है। इन सातो पृथ्वियो मे कुछ नरक सख्यात योजन विस्तार वाले और कुछ असख्यात लाख योजन विस्तार वाले हैं। पाचवे भाग तो मे सख्यात योजन विस्तार वाले हैं और चार भाग असख्यात योजन विस्तार वाले हैं। इन्द्रक बिलो की गहराई प्रथम नरक मे एक कोश और आगे क्रमश. आधा-आधा कोश बढती हुई सातवें मे चार कोश हो जाती है। श्रेणीबद्ध की गहराई अपने इन्द्रक की गहराई से तिहाई और अधिक है। प्रकीर्णको की गहराई, श्रेणी और इन्द्रक दोनो की मिली हुई गहराई के बराबर है।

इन नरको मे नारकी जीव तीव्र अशुभ कर्मों के उदय से तथा विभगावधि से पूर्वकृत वैर के कारणो को जानकर निरन्तर एक दूसरे को तीव्र दुःख उत्पन्न करते रहते है। आपस मे मारना, काटना, छेदना, धानी मे पेलना आदि भयकर दुःख कारणो को जुटाते रहते हैं। यहा तीव्रतम उष्णवेदना और शीतवेदना रहती है। इन सातो पृथ्वियो मे नारकियो की आयु क्रमश एक, तीन, सात, दस, सत्रह, बाईस, और तेतीस सागर प्रमाण है। प्रथम पृथ्वी मे नारकियो की जघन्य आयु दस हजार वर्ष है, दूसरी पृथ्वी मे जघन्य आयु वही है जो प्रथम पृथ्वी मे उत्कृष्ट आयु है। उसी क्रम से सातवी पृथ्वी तक के नारकीय की जघन्य आयु समझी जा सकती है। अर्थात् पूर्व पृथ्वी के नारकियो की जो उत्कृष्ट आयु है वही उससे अगली पृथ्वी के नारकियो की जघन्य आयु जाननी चाहिए। पहली पृथ्वी मे तीस लाख नरक (नारकीयो के बिल) दूसरी मे पच्चीस लाख, तीसरी मे पन्द्रह लाख, चौथी मे दस लाख, पाचवी मे तीन लाख, छठी मे पाच कम एक लाख और सातवी मे केवल पाच ही हैं ॥4–5॥

(6-7)

प्रथम नरक मे शरीर की ऊँचाई सप्तधनुष तीन हाथ और छ अगुल है। उससे आगे की शर्कराप्रभा आदिक पृथ्वियो मे क्रमश उसका प्रमाण दुगना होता है। इस तरह सातवें नरक मे 5000 धनुष हो जाता है। असज्ञी प्रथम पृथ्वी तक,

सरीसृप द्वितीय तक, पक्षी तीसरी तक, सर्प चौथी तक, सिंह पांचवी तक, स्त्रियां छठवी तक और मत्स्य तथा मनुष्य सातवी पृथ्वी तक उत्पन्न होते हैं। नारकी न देवो मे उत्पन्न हो सकते हैं और न विकलत्रय मे हो सकते हैं। नारक जीव मरने के बाद नरक से निकलकर तिर्यग्योनि अथवा मनुष्य गति मे ही जन्म ग्रहण कर सकता है, अन्यत्र नहीं। नरक से निकलकर जो जीव मनुष्य पर्याय को धारण किया करते हैं, उनमे से कोई-कोई जीव तीर्थंकर भी हो सकते हैं। परन्तु आदि की चार भूमियो से निकले हुए जीव मनुष्य होकर मोक्ष को भी जा सकते हैं, पर बलदेव, वासुदेव चक्रवर्ती नही होते। आदि की पाच भूमियो के जीव मरने के अनन्तर मनुष्य होकर सयम को धारण कर सकते हैं। छह भूमियो के निकले हुए जीव मनुष्य होकर सयमासयम-देशव्रत को धारण कर सकते है, और सातवी भूमि तक निकले हुए जीव सम्यग्दर्शन को धारण कर सकते हैं। प्रथम भूमि मे चौबीस मुहूर्त तक नारको की उत्पत्ति नहीं होती, दूसरे मे सात दिन तक नही होती इसी तरह आगे क्रमश एक पक्ष, एक माह, दो माह, चार माह और छह माह का विधान है। सभी नारकी नपु सक होते हैं और अत्यन्त पीडा पाते हैं। ससार मे पाप के कारण यह दुर्गति होती है। उनके शरीर के खण्ड-खण्ड होते हैं, और उनके कोई सहनन नही होता ।।6–7।।

(8)

आदि के चार नरको मे उष्णवेदना है। पाचवे के दो लाख बिलो मे उष्णवेदना तथा शेष मे शीतवेदना है। छठवे और सातवें मे शीतवेदना ही है। अर्थात् 82 लाख नरक उष्ण हैं और दो लाख नरक शीत। उनके शरीर अशुभ नाम कर्म के उदय से हुंडक सस्थान वाले वीभत्स होते हैं। यद्यपि उनका शरीर वैक्रियक है फिर भी उसमे मल, मूत्र, पीब आदि सभी बीभत्स सामग्री रहती है। प्रथम और द्वितीय नरक मे कापोत लेश्या, तृतीय नरक मे ऊपर कापोत तथा नीचे नील, चौथे मे नील, पांचवें में ऊपर नील और नीचे कृष्ण और सातवें में परमकृष्ण द्रव्यलेश्या होती है। भावलेश्या तो छहो होती हैं और वे अन्तर्मुहूर्त में बदलती रहती हैं। क्षेत्र के कारण वहाँ के स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और परिणमन अत्यन्त दुःख के कारण होते हैं। मुर्मु र (उपलो की अग्नि) के समान अंगारवाली वहां की भूमि तपे लोहे के समान स्पर्श-युक्त पाषाणों एव छुरा के समान तीक्ष्ण बालु से सयुक्त तथा सुई के समान नुकीले

नवीन तृणों से व्याप्त है अत्यन्त दुर्गन्धित कीड़ो के समूह से व्याप्त तालाब हैं। सर्वत्र क्रूर प्राणी हैं जो परस्पर मारण क्रिया करते रहते हैं। जो खाते हैं वह विष समान हो जाता है। जो सूघते है वह नासिका को फोड़ देता है, जो भी स्पर्श करते हैं दु.ख का कारण बन जाता है, जो भी देखते हैं, वह चक्षु विनाशक हो जाता है। जो भी होता है,सभी दु ख का कारण बन जाता है। यह सक्षेप मे नारकियो के दु खो का वर्णन है ।।8।।

(9–10)

इस प्रकार नारकीय जीवो को अवर्णनीय शारीरिक वेदना होती है, घोर, ताम्र, भयानक दारुण दु:ख प्राप्त होता है, तरह-तरह की व्याधिया होती हैं। शक्ति, तलवार आदि अस्त्रो से शरीर के खण्ड-खण्ड कर दिये जाते हैं, वे पुन पुन पिण्ड बन जाते हैं। एक क्षण के लिए भी उन्हे सुख नही मिलता। कुअवधिज्ञान के कारण, स्वभाव से तथा विक्रिया से भी ये यातनाए उन्हे प्राप्त होती हैं। मैं राजा, चक्रवर्ती रहा हू, मैंने बड़े-बड़े राजाओ को पराजित किया है आदि प्रकार से मानसिक दु खो से ग्रसित रहते हैं, पूर्वभव के वैर के कारण परस्पर सग्राम करते हैं, अग्नि मे डाल देते हैं। इस तरह भयकर छेदन-भेदन होने पर भी नारकियो की अकाल मृत्यु नही होती। वे एक-दूसरे के शरीर को चूर्ण-चूर्ण कर देते हैं, तप्त तेल की कढाई मे डाल दते हैं, तीव्र क्षार जल के कुण्ड मे फेक देते है, तपे हुए लोहे को पिलाते है, पर कलत्र से सपर्क करने के फलस्वरूप जलते हुए लोहस्तम्भ से चिपका देते है। शीत और उष्ण वेदनाओ से भी वे सतप्त रहते हैं। इस प्रकार नारकी जीव आयु पर्यन्त हर क्षण तीव्रतम दु ख भोगते रहते हैं। इसका विशेष चिंतनकर धर्म की ओर मन लगाना चाहिए ।।9–10

(11-12)

इस प्रकार सक्षेप मे नारकियो का वर्णन किया। अब भवनवासी देवो की चर्चा करते है। वे भवनवासी देव दस प्रकार के होते हैं-असुर, नाग, विद्युत, सुपर्ण, अग्नि, वात, स्तनित, उदधि, द्वीप और दिक्कुमार। ये तालाब, पर्वत और वृक्षो के आश्रित होकर रहते हैं। इन सभी को 'कुमार' सज्ञा प्राप्त है इसलिए कि वे कुमारो के समान रूप, सौन्दर्य, परिधान आदि से सपन्न होते हैं। असुर कुमारों की एक सागर, नाग कुमारो की तीन पल्य, सुपर्ण कुमारो की ढाई पल्य।

द्वीप कुमारो की दो पल्य तथा शेष छह कुमारो की डेढ पल्य उत्कृष्ट स्थिति है। और दस हजार वर्ष जघन्य स्थिति है। उनमे असुर कुमारो की शरीर की ऊचाई पच्चीस धनुष है और शेष नौ के शरीर की ऊचाई दस धनुष। इन देवो के विभिन्न प्रकार की विक्रियाएँ हुआ करती हैं। वे भवप्रत्यय हैं। असुर कुमार घन शरीर के धारक सपूर्ण अगोपागो द्वारा सुन्दर कृष्ण वर्ण महाकाय और रत्नो से उत्कट मुकुट के द्वारा देदीप्यमान हुआ करते हैं। इनका चिन्ह चूडामणिरत्न है। नागकुमार शिर और मुखक भागों मे अत्यधिक श्याम वर्ण वाले और मृदु तथा ललित गति वाले हुआ करते है। इनके शिर पर सर्प का चिन्ह हुआ करता है। विद्युत्कुमार स्निग्ध प्रकाशशील उज्ज्वल शुक्लवर्ण के धारण करने वाले होते हैं। इनका चिन्ह वज्र है। सुवर्णकुमार ग्रीवा और वक्षस्थल मे अति सुन्दर श्याम किन्तु उज्ज्वल वर्ण के धारक हुआ करते हैं। इनका चिन्ह गरुड है अग्निकुमार और वातकुमार का वर्ण शुद्ध है, स्तनितकुमार और उदधिकुमार का वर्ण कृष्ण श्याम है, द्वीपकुमार उज्ज्वल वर्णी है तथा दिक्कुमार का वर्ण श्याम है। नागकुमारो के 84 लाख भवन हैं। सुवर्णकुमारो के 72 लाख भवन है। विभव धरणेन्द्र के समान हैं। विद्युत्कुमार अग्निकुमार स्तनित कुमार, उदधिकुमार द्वीपकुमार और दिक्कुमार प्रत्येक के 76 लाख भवन हैं। वातकुमारो के 96 लाख भवन हैं। उत्तराधिपति प्रभञ्जन के 96 लाख भवन है। इस तरह कुल मिलाकर सात करोड 72 लाख भवन है। इन प्रत्येक भवनो मे जिनबिंब प्रतिष्ठित है। यह भवन वासी देवो का सक्षिप्त वर्णन है।

(13)

व्यतर देवो के आठ भेद है— किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इनके भी भेद-प्रभेद होते है। इस जबूद्वीप से तिरछे असख्य द्वीप-समुद्रो के बाद नीचे खर पृथिवी भाग मे दक्षिणाधिपति किन्नरेन्द्र के असख्यात लाख नगर हैं। इसके चार हजार सामानिक, तीन परिषद्, सात अनीक, चार अग्रमहिषी, और सोलह हजार आत्मरक्ष हैं। ये अजनीक द्वीप में रहते हैं। किन्नरेन्द्र किंपुरुष का भी इतना ही परिवार है। ये वज्रधातकी द्वीप मे रहते हैं। महोरग सुवर्ण द्वीप मे, गधर्व मनुष्य लोक मे, यक्ष वज्र मे, राक्षस रजत द्वीप में, भूत हिंगुलक मे और पिशाच हरिदाल मे निवास करते हैं। व्यतरो के सामानिक आदि विभव परिवार एक जैसा है। भूमितल मे भी व्यन्तर रहते हैं द्वीप, पर्वत, समुद्र, देश, ग्राम, नगर तिगड्डा चौराहा, घर, गली जलाशय उद्यान, देवमन्दिर आदि मे सर्वत्र इनकी अवस्थिति है।

(14–15)

ज्योतिष्क देव पाँच प्रकार के हैं—सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र, और प्रकीर्णक तारागण। उनमे से जबूद्वीप मे दो सूर्य, लवणसमुद्र मे चार सूर्य, घातकीखण्ड मे बारह सूर्य, कालोदधि समुद्र मे ब्यालीस और पुष्कर द्वीप के मनुष्य क्षेत्र सम्बन्धी अर्ध भाग मे बहत्तर सूर्य हैं। इस प्रकार मनुष्य लोक मे कुल मिलाकर 132 सूर्य होते है। चन्द्रमाओ का विघान भी सूर्यविधि के समान ही समझना चाहिए। प्रत्येक चन्द्रमा का परिग्रह इस प्रकार है–28 नक्षत्र, 88 ग्रह और 66975 कोडाकोडी तारे। इनका अस्तित्व सभी द्वीप समुद्रो मे है। नक्षत्र विमानो का उत्कृष्ट विस्तार एक कोश है। और तारा विमानो का उत्कृष्ट विस्तार ½ गव्यूत है। राहु के विमान रजतमय शुक्र हैं एक गव्यूति लम्बे चौडे है। बृहस्पति के विमान सुवर्ण तथा मोती के समान कान्ति वाले और कुछ कम गव्यूति प्रमाण लम्बे चोडे हैं। बुध के विमान पीले और शनैश्चर के विमान लाल रग के हैं। मगल के विमान तप्त स्वर्ण के समान। बुध आदि के विमान आधे गव्यूत लम्बे चौड़े हैं। शुक्र आदि के विमान राहू के विमान बराबर लम्बे चौडे है। ज्योतिषियो की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक एक पल्य है और जघन्य स्थिति पल्य के आठवे भाग प्रमाण है। चन्द्र की उत्कृष्ट स्थिति एक लाख वर्ष अधिक एक पल्य, सूर्य की एक-एक हजार वर्ष अधिक एक पल्य, शुक्र की एक सौ वर्ष अधिक एक पल्य तथा वृहस्पति की पूर्ण एक पल्य है। शेष बुध आदि ग्रहो की और नक्षत्रो की आधे पल्य प्रमाण स्थिति है। तारागण की उत्कृष्ट स्थिति पल्य का चौथा भाग है। तारा और नक्षत्रो की जघन्य स्थिति पल्य के आठवें भाग है। सूर्य आदि की जघन्य स्थिति पल्य के चौथाई भाग प्रमाण है। ये ज्योतिषी देव मनुष्य लोक मे मेरु की प्रदक्षिणा करके नित्य भ्रमण करते रहते हैं।

(16)

सौधर्म, ऐशान आदि स्वर्ग, नवग्रैवेयक, विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्धि मे कल्पोपपन्न और कल्पातीत विमानवासियो का निवास है। सौधर्म, ऐशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लातव, महाशुक्र, सहस्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये बारह कल्प हैं। इन सौधर्म आदि कल्पो के विमानो मे वैमानिक देव रहते हैं। अच्युत कल्प के ऊपर नव ग्रैवेयक हैं जो कि ऊपर ऊपर अवस्थित हैं। ग्रैवेयको के ऊपर पांच महाविमान है जिनको अनुत्तर कहते हैं। उनके नाम हैं—विजय, वैजयत, जयत, अपराजित और सर्वार्थ सिद्धि। ग्रैवेयको के ऊपर और सर्वार्थ सिद्धि के नीचे नौ अनुदिश है। सौधर्म कल्प से लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यन्त सभी का अवस्थान क्रम से ऊपर ऊपर है। सौधर्म कल्प मे विमानो की सख्या 32 लाख है। ऐशान कल्प मे 28 लाख, सानत्कुमारकल्प मे 12 लाख, माहेन्द्र कल्प मे

8 लाख, ब्रह्मलोक मे 4 लाख लांतवकल्प मे 50 हजार, महाशुक्र मे 40 हजार सहस्रार मे 6 हजार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत कल्प मे 700, अधोग्रैवेयक मे 111, मध्यम ग्रैवेयक मे 107 और उपरिम ग्रैवेयक मे 100 विमान हैं। विजयादिक अनुत्तर विमान 5 ही हैं। इस तरह उर्ध्वलोक में वैमानिक देवो की समस्त विमानो की संख्या 8497023 है। सोलह स्वर्गों मे एक-एक इन्द्र है पर मध्य के आठ स्वर्गों में चार इन्द्र हैं। इसके बाद विमानों की ऊंचाई का क्रम निर्दिष्ट है। इनकी अवधिज्ञान की भी सीमा निर्दिष्ट है।

ग्रैवेयको मे से अधस्तन ग्रैवेयक मे असख्यात विस्तार वाले विमान 108 तथा सख्यात विस्तार वाले 3 (=111) हैं, मध्यम ग्रैवेयको मे 89 विमान असख्यात विस्तार वाले तथा 18 विमान सख्यात विस्तार वाले (= 107) हैं, उपरिम ग्रैवेयक मे 74 असख्यात विस्तार वाले और 17 संख्यात विस्तार वाले (=91) विमान कहे गये है। अनुदिशो मे 8 असख्यात विस्तार वाले विमान तथा 1 सख्यात विस्तार वाला (=9) हैं। उसी प्रकार से अनुत्तरो मे भी सख्यात विस्तार वाला 1 तथा असख्यात विस्तार वाले 4 (=5) विमान है। इस तरह 1699380 विमान सख्यात विस्तार वाले तथा 6797643 विमान असख्यात विस्तारवाले हैं। पूर्व दो कल्पो मे स्थित प्रासाद 600 योजन और आगे दो कल्पो मे 500 योजन ऊंचे है। ये प्रासाद ब्रह्म-ब्रह्मोतर मे 450, लान्तव कापिष्ठ मे 400, शुक्र-महाशुक्र मे 350, शतार-सहस्रार मे 300, आनतादि शेष चार मे 250, अधोग्रैवेयक मे 200, मध्यम ग्रैवेयक मे 150 और उपरिम ग्रैवेयक मे 100 योजन ऊचे हैं। यहां अनुदिशो मे स्थित वे प्रासाद 50 योजन और अनुत्तरो मे 25 योजन मात्र ऊचे हैं।

(17–18)

ऊपर-ऊपर के देवो का अवधिज्ञान अधिकाधिक है। सौधर्म और ईशान कल्प के देव अवधिज्ञान के विषय की अपेक्षा रत्नप्रभा पृथिवी तक को देख सकते हैं। तिर्यक्-पूर्वादि दिशाओ की तरफ असंख्यात लक्ष योजन तक देख सकते हैं। ऊपर ऊर्ध्व दिशा मे अपने विमान पर्यन्त ही देख सकते हैं। सनत्कुमार और महेन्द्र स्वर्ग के देव शर्करा पृथ्वी तक देख सकते हैं। विक्रिया ऋद्धि से सप्तम पृथ्वी तक की भी सीमा हो सकती है। ब्रह्मलोक और लान्तव विमान वाले देव बालुका प्रभा पर्यन्तशुक्र सहस्रार वाले पङ्कप्रभा पर्यन्त आनत प्राणत और आरण-अच्युत वाले धूम प्रभा पर्यन्त, अधस्तन ग्रैवेयक और मध्यम ग्रैवेयक वाले तम प्रभा पर्यन्त और उपरिम ग्रैवेयक वाले महातम प्रभा पर्यन्त तथा पांच अनुत्तर और नौ अनुदिश विमानो के देव समस्त लोक नाड़ी को देख सकते हैं।

अर्थात् प्रथम दो कल्पो के देव घर्मा पृथिवी तक, आगे के दो कल्पो के देव दूसरी पृथिवी तक, आगे के चार कल्पो के देव तीसरी पृथ्वी तक, शुक्र आदि चार कल्पो के देव चौथी पृथ्वी तक, आनत आदि चार कल्पो के देव पाचवी पृथ्वी तक, ग्रैवेयकवासी देव छठी पृथ्वी तक तथा आगे अनुदिश व अनुत्तरो मे रहने वाले देव सातवी पृथ्वी तक विक्रिया करते हैं। उक्त देवो के दर्शन व अवधिज्ञान का विषय प्रमाण विक्रिया के समान ही माना जाता है। अनुत्तर विमानवासी देव मूर्तिक कर्मों के अनतवे भाग को, कर्मयुक्त जीवो को तथा समस्त लोकनाली को भी देखते है। सौधर्म ऐशान कल्प तक 7 दिन, सानत्कुमार और माहेन्द्र एक पक्ष (15 दिन), ब्रह्म से कापिष्ठ तक एक मास, शुक्र से लेकर सहस्रार तक दो मास, आनत से अच्युत कल्प तक चार मास तथा ग्रैवेयक आदि शेष विमानो मे आगमो के अनुसार छह मास अन्तर जन्म का और उतना ही मरण का भी अन्तर जानना चाहिए। इसके विषय मे मतान्तर भी है जिसे लोकविभाग (10, 298-302) मे देखा जा सकता है। प्रथम दो कल्पो के देव सात हाथ ऊचे आगे के दो कल्पो के देव छह हाथ ऊचे, ब्रह्मा और लातव कल्पो के देव पाच हाथ ऊचे, शुक्र और महस्रार कल्पो के देव चार हाथ ऊचे, शेप आनतादि चार कल्पो के देव तीन हाथ ऊचे, ग्रैवेयको के दो हाथ ऊचे, अनुत्तर व अनुदिशो के देव डेढ हाथ ऊचे, तथा सर्वार्थसिद्धि के देव एक हाथ प्रमाण ऊचे होते है।

असुर कुमारो की 1 सागर, नाग कुमारो की 3 पल्य, सुपर्ण कुमारो की $2\frac{1}{2}$ पल्य, द्वीप कुमारो की 2 पल्य तथा शेष छह कुमारो की $1\frac{1}{2}$ पल्य उत्कृष्ट स्थिति है। सौधर्म ऐशान स्वर्ग मे कुछ अधिक 2 सागर, सानत्कुमार-माहेन्द्र मे 7 सागर, ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर मे 10 सागर लातव-कापिष्ठ मे 14 सागर, शुक्र-महाशुक्र मे 16 सागर, शतार-सहस्रार मे 18 सागर आनत-प्राणत मे 20 सागर, आरण-अच्युत मे 22 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। अधो ग्रैवेयको मे क्रमश 23,24,25, मध्यम ग्रैवेयको मे क्रमश 26,27,28 और उपरि ग्रैवेयको मे 29,30 और 31 सागर उत्कृष्ट स्थिति है। अनुदिश विमानो मे 32 तथा विजयादि और सर्वार्थ सिद्धि मे 33 सागर हैं। सौधर्म और ईशान स्वर्ग की जघन्य स्थिति एक पल्य है। इन दो स्वर्गों तथा आगे के स्वर्गों की जो उत्कृष्ट स्थिति है वही उनके आगे के स्वर्गों की जघन्य स्थिति हो जाती है। ईशान स्वर्ग तक के देव सक्लिष्ट कर्म वाले होने से मनुष्यो की तरह कायप्रविचारी (शरीर से मैथुन करने वाले) होते है। सानत्कुमार- माहेन्द्र मे परस्पर अगस्पर्श करने से, चतुर्थ से आठवें स्वर्ग तक सुदर रूप देखकर, नौ से 12 वे स्वर्ग तक मधुर सगीत श्रवण, मृदु हास्य, भूषणो की झकार आदि के शब्दो को सुनने से तथा तेरहवे से सोलहवें स्वर्ग तक के देव-देविया

मन से प्रविचार करते हैं। कल्पातीत-ग्रैवेयकादि वासी देव प्रविचार से रहित हैं। उनके कामवेदना होती ही नहीं है।

(19)

स्वयंभूरमण पर्यन्त असख्यात द्वीप समुद्र तिर्यक्, समभूमि पर निरछे व्यवस्थित हैं। अत इनको तिर्यक्लोक कहते हैं। अति विशाल महान् जम्बू वृक्ष का आधार होने से यह द्वीप जबूद्वीप कहलाता है। वह एक लाख योजन विस्तृत है और सभी द्वीप के बीच स्थित है।इसके बीच नाभि की तरह गोलाकार सुमेरु पर्वत है। इसके दक्षिण मे भरत क्षेत्र और उत्तर मे ऐरावत क्षेत्र अवस्थित है। भरत क्षेत्र का विस्तार $526\frac{6}{19}$ योजन है। इसके बाद विदेह क्षेत्र पर्यन्त के पर्वत और क्षेत्र क्रमश दूने-दूने विस्तार वाले हैं। अर्थात् हिमवान् का विस्तार $1052\frac{12}{19}$ योजन, हैमवत का $2005\frac{5}{19}$ योजन, महाहिमवान् का $4010\frac{10}{19}$ याजन, हरिवर्षका $8421\frac{1}{19}$ योजन, निषध का $1684\frac{2}{19}$ योजन और विदेह का $33684\frac{4}{19}$ योजन है। ऐरावत आदि नील पर्वत पर्यन्त क्षेत्र-पर्वत भरत आदि के समान विस्तार वाले हैं। पूर्व और पश्चिम लवण समुद्र तक लम्बे हिमवन्, महाहिमवन् निषध, नील, और शिखरी ये छ पर्वत हैं। इन पर्वतो के कारण भरत, आदि क्षेत्रो का विभाग होता है अत ये वर्षधर पर्वत कहे जाते हैं ॥19॥

(20)

हिमगिरि आदि पर्वतो पर पद्म, महापद्म आदि छह सरोवर हैं। प्रथम सरोवर पूर्व-पश्चिम एक हजार योजन लम्बा और उत्तर-दक्षिण पाच सौ योजन चौडा है। उसकी गहराई दस योजन है। इसके मध्य मे एक योजन का कमल है। इसके पत्ते एक-एक कोस के और कर्णिका दो-दो कोस विस्तृत है। आगे के सरोवरो और कमलो का विस्तार दूना-दूना है। इनमे श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि और लक्ष्मी नामक देवियां सामानिक और पारिषत्क जाति के देवो के साथ रहती हैं। इनकी आयु एक पल्य की है। हिमवान् हेममय चीन पट्ट वर्ण का है। महाहिमवान् अर्जुनमय शुक्ल वर्ण है, निषध तपनीयमय मध्यान्ह के सूर्य के समान वर्णवाला है। नील वैडूर्यमयी मोर के कठ के समान वर्ण का है। रुक्मी रजतमय शुक्ल वर्ण वाला है। शिखरी हेममय चीन पट्ट वर्ण का है। उपर्युक्त क्षेत्रो के मध्य मे गगा, सिन्धु आदि चौदह नदियां हैं। इसके पूर्व विदेह और अपर विदेह मे सोलह-सोलह क्षेत्र हैं। भरत क्षेत्र का विस्तार $526\frac{6}{19}$ योजन हैं। धातकी खण्ड मे दो मेरु पर्वत हैं। पुष्करार्ध मे भी दो मेरु हैं। इस तरह मनुष्योत्तर के पहले चौंतीस क्षेत्र हैं। पांच मेरु है ढाई द्वीप हैं। यहा सदैव भोगभूमि रहा करती है।

(21)

जम्बूद्वीप की अपेक्षा दुगना विस्तार वाला लवण समुद्र इस द्वीप को घेर कर चक्र मे नेमि के समान स्थित है। उस समुद्र के मध्य भाग मे पूर्व दिशाओ के क्रम से चार पाताल, विदिशाओ के क्रम से चार मध्यम पाताल और दोनो के मध्य आठ अन्तर दिशाओ मे एक हजार जघन्य पाताल स्थित हैं। म्लेच्छ दो प्रकार के हैं— अन्तरद्वीपज और कर्मभूमिज। लवण समुद्र और कालोदधि समुद्र के मिलाकर 96 अन्तरद्वीप माने हैं। अन्यत्र लवण समुद्र की आठो दिशाओ मे आठ और उनके अन्तराल मे आठ, हिमवान् और शिखरी तथा दोनो विजयार्धों के अन्तराल मे आठ, इस तरह चौबीस अन्तरद्वीप हैं। पूर्व दिशा मे एक जाघ वाले, पश्चिम मे पूंछ वाले उत्तर मे गूंगे, दक्षिण मे सीग वाले प्राणी हैं। विदिशाओ मे खरगोश के कान सरीखे कान वाले, पुडी के समान कान वाले, बहुत चौडे कान वाले और लम्बकर्ण मनुष्य हैं। अन्तराल मे अश्व, सिह, कुत्ता, सूअर, व्याघ्र, उल्लू और बन्दर के मुख जैसे मुख वाले प्राणी हैं। ये सब प्राणी अन्तर्द्वीपज म्लेच्छ हैं और पल्योपम आयु वाले हैं।

सामान्यत काल दो प्रकार के है—एक अपसर्पिणी और दूसरा उत्सर्पिणी। इन दोनो को कल्पकाल कहा जाता है। दोनो कालो के छह-छह विभाग हैं। जिनका अलग-अलग प्रमाण है। प्रथम काल के मनुष्यो का वर्ण सूर्य के समान, द्वितीय काल के मनुष्यो का वर्ण चन्द्र के समान तथा तृतीय काल के मनुष्यो का वर्ण प्रियगु पुष्प के समान होता है। इन कालो मे मनुष्यो की आयु का प्रमाण यथाक्रम से तीन पल्य, दो पल्य और एक पल्य होता है। भरत और ऐरावत के सिवाय दूसरे क्षेत्रो में काल की प्रवृति अवस्थित है। यथा—कुरुक्षेत्र मे (देवकुरु और उत्तरकुरु मे) सदा सुषमा-सुषमा काल ही अवस्थित रहता है। यह उत्तम भोग भूमि है। हरि और रम्यक क्षेत्र मे सुषमा काल की परिस्थिति हमेशा रहा करती है। यह मध्यम भोगभूमि है। हैमवत और हैरण्यवत क्षेत्र मे सदा सुषम-दुषमा काल की प्रवृति रहती है। यह जघन्य भोगभूमि है। यहा मनुष्य पुण्य के प्रभाव से ही उत्पन्न होते हैं। उक्त तीनो कालो मे युगल रूप से ही उत्पन्न होकर कल्पवृक्षो से आजीविका करते हैं अर्थात् उन्हे समस्त भोगोपभोग की सामग्री कल्पवृक्षो से ही प्राप्त होती है। इन तीनों कालों मे दश प्रकार के कल्प वृक्ष होते हैं पानाग, तुर्यांग, भूषणांग, वस्त्राग, भोजनांग, आलयाग, दीपाग, भाजनाग, मालाग और ज्योतिरग। धीरे-धीरे यह भोगभूमि

अवस्था समाप्त हुई और कर्मभूमि का प्रारम्भ हुआ। प्रथम तीर्थंकर आदिनाथ ने समुचित व्यवस्था दी। त्रेसठ शलाका पुरुष कर्मभूमियों मे ही उत्पन्न हुए। चतुर्थ काल के प्रारभ मे शरीर की ऊचाई पाच सौ धनुष प्रमाण होती है। प्रजाजन धर्मात्मा और पापिष्ठ दोनो प्रकार के होते हैं। क्रमश बुद्धि व आयु आदि गुणो के हीयमान होने पर चतुर्थ काल मे बाद पचम काल उपस्थित होता है। उसके प्रारभ मे शरीर की ऊचाई सात हाथ और आयु 120 वर्ष प्रमाण होती है। लोग प्राय: पापिष्ठ होते हैं। पचम काल के अन्त मे तथा छठे काल के आदि मे आयु बीस वर्ष से अधिक तथा मनुष्यो के शरीर दो हाथ ऊचे एव धूम के समान श्याम वर्ण होकर कुरूप होते हैं। घनघोर मिथ्यात्वी होते हैं। चतुर्थ, पचम और षष्ठ कालो का प्रमाण एक कोडा-कोडी सागरोपम है।

(23)

स्थावर जीव पाच प्रकार के होते हैं—पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और वनस्पति कायिक। पृथ्वी कायिक जीव सर्वत्र पाये जाते हैं। कृष्ण, पीत, हरित, श्वेत और रक्त ये पाच वर्ण भेद कायिक जीवो के हैं। इनका आकार मसूर के समान होता है और उत्कृष्ट आयु बाईस हजार वर्ष प्रमाण है। पृथ्वी, शर्करा, बालुका, मृत्तिका और उपल आदि के भेद से भी अनेक प्रकार के हैं। जलकायिक जीव दर्भाकार के होते हैं। वे हिम, अवश्याय आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। उनकी उत्कृष्ट आयु सात हजार वर्ष की है। अग्निकायिक जीव सूचिकाग्राकार होते हैं। वे कुलिश, अग्नि, विद्युत, सूर्य, सूर्यकान्तमणि, अगार, स्फुलिंग पक्ति जैसे प्रमुख भेद वाले होते हैं। उनका तेज विस्फुरायमान होता है। इनकी उत्कृष्ट आयु केवल तीन दिन की होती है। वायुकायिक जीव ध्वजाकार होते हैं। वात वलय के आधार पर वे रहते है। घनवात, तनुवात, उत्कलिका, मडलि इत्यादि भेद वायुकायिक जीवो के माने गये हैं। इनके प्रतिघात से शब्द ध्वनित होता है। दिशा भेद से भी ये अनेक प्रकार के होते है। इनकी उत्कृष्ट आयु तीन हजार वर्ष की है। वनस्पतिकायिक जीव शैवल, मलक, आद्रक, पणक, वृक्ष, गुच्छ, गुल्म, लता आदि के भेद से अनेक प्रकार के हैं। इनकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है। इन्हे चार और पाच (वृक्ष, विटपि, गुल्म, बल्ली और तृण) भागो मे भी विभाजित किया जाता है। इनकी उत्कृष्ट आयु दश हजार वर्ष की है। इन एकेन्द्रिय जीवो की उत्कृष्ट अवगाहना का प्रमाण कुछ अधिक हजार योजन है ॥23॥

(24)

यह स्थावर जीवो का वर्णन हुआ । अजीव द्रव्य पांच प्रकार का है—धर्म, अधर्म, आकाश, काल और पुद्गल । धम द्रव्य अमूर्तिक नित्य है, अखड है । यह जीवो और पुद्गलो के चलने मे सहायक है । यह सारे लोकाकाश मे व्याप्त है । असख्य प्रदेशी है । पुद्गल आदि द्रव्यो की स्थिति मे जो कारण है वह अधर्म द्रव्य है । वह सारे लोकाकाश मे व्याप्त है । अमूर्तिक है, नित्य है, असख्यप्रदेशी है । पुद्गल के परिणमन मे जो कारण है वह काल है । परिणमन कराना उसका उपकार है जिसके निमित्त मे दूसरो के परिणमन कराने मे प्रवृत्त होता है । व्यवहारत वह तीन प्रकार का है । पर निश्चयत वह निश्चल और अभेद्य है । पुद्गल और जीव द्रव्यो को अवगाह देना आकाश का उपकार है । यह अनन्तप्रदेशी है । जिसमे रूप, रस, गध और स्पर्श हो उसे पुद्गल कहते हैं । वह अणु और स्कन्ध के भेद से दो प्रकार का है । स्थूल और सूक्ष्म आदि भेदो की दृष्टि से वह पुद्गल पृथ्वी आदि के रूप मे या छाया आतप आदि के रूप मे नाना प्रकार से विभक्त हो जाता है । शरीर इन्द्रिय और श्वासोच्छवास आदि के रूप मे यह पुद्गल सभी प्राणियो के उपकार मे लगा हुआ है । अरण नेत्रेन्द्रिय को छोडकर शेष चार इन्द्रियो का विषय है । पुद्गल द्रव्य सख्यात, असख्यात और अनन्त प्रदेश वाला है । परमाणु अप्रदेशी है । उसमे आदि-मध्य भाग नही होता है । ये सब पुद्गल अपने गुणो से निश्चल है ।

(25)

कर्मों के प्रवेश द्वार को आश्रव कहते है । उसके दो भेद पुण्यास्रव और पापास्रव । मन, वचन, कायकी चचलता (योग) से आश्रव होता है । शुभयोग पुण्याश्रव का तथा अशुभ योग पापाश्रव का कारण है । सकषाय जीवो के सापरायिक और अकषाय जीवो के ईर्यापथ आश्रव होते हैं । इसी तरह के और भी भेद हैं । सकषाय होने के कारण जीव का कर्म योग्य पुद्गलो से जो सम्बध होता है उसे बन्ध कहते हैं । यह बन्ध चार प्रकार का है- प्रकृतिबध, स्थितिबन्ध, अनुभागबन्ध और प्रदेशबन्ध है । आश्रव के निरोध को संवर कहते हैं । आने वाले कर्मों का जिसके द्वारा निरोध हो उसे सवर कहते है । पहले बधे हुए कर्मों का अशत: क्षरण होना निर्जरा का लक्षण है । सकल कर्मों का क्षय हो जाना मोक्ष है जो परिणामी नित्य भव्य जीव के ही सभव है । ऐसा केवलज्ञानी ने कहा है । सर्वज्ञ चन्द्रप्रभ ने इस

प्रकार भव्य जीवो के प्रतिबोधित किया और उनके अज्ञान अधकार को नष्ट किया। उनकी सभा मे तेरानवें गणधर थे जिन्होने त्रिभुवन के सदेहो को दूर किया। दो हजार तीक्ष्ण बुद्धिवाले पूर्वधारी थे। दो लाख चार सौ उपाध्याय और आठ हजार तीव्र बुद्धिवाले अवधिज्ञानी थे। दस हजार निर्मल आत्मा वाले केवली तथा चौदह हजार विक्रिया ऋद्धि धारी साधु थे आठ हजार तेजस्वी मन पर्ययज्ञानी थे और सात हजार छह सौ वादी थे। एक लाख अस्सी हजार वरुणा आदि आर्यिकाएँ थी तीन लाख सम्यग्दृष्टि और पांच लाख व्रत आदि से पवित्र श्राविकाएँ थी। असख चारो प्रकार के देवता थे। इस प्रकार चतुर्विध सघ के साथ बिहार करते हुए ससारी जीवो के पाप मलो को धोया और ज्ञान किरणों का विकास किया।

(26)

आयुच्छेद जानकर चन्द्रप्रभ भगवान ने एक मास पर्यन्त बिहार का त्याग किया और और सम्मेदाचल (शिखर जी) के शिखर पर मुनिसघ के साथ प्रतिमायोग धारण किया। फिर भाद्रपद शुकला सप्तमी को शुक्लध्यान के द्वारा समस्त पापो को नष्ट कर सारी बाधाओ से रहित, दश लाख पूर्व प्रमाण आयु के समाप्त होते ही अष्टकर्मों का विध्वसकर मुक्ति प्राप्त की। उन्होने तीर्थ की स्थापना कर अपार जन कल्याण किया।

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ एक ही समय मे सकल पदार्थों को जानते थे, उनकी द्रव्य-पर्यायो को सूक्ष्मता पूर्वक जानते-देखते थे। देखने, सुनने, स्वाद लेने, स्पर्श करने, सू घने आदि जैसी कियाए नेत्र, श्रोत्र, रसना स्पर्श, घ्राण जैसी इन्द्रियो के बिना ही करते थे। भूख, प्यास, निद्रा पलकक्रिया आदि से मुक्त थे, रति, अरति आदि भावो से दूर थे दर्शन और ज्ञान-चरित्र से युक्त थे। ज्ञान ही उनका देह था, ज्ञान ही चेतना थी ज्ञान ही ज्ञेय था, ज्ञान ही भोजन था, ज्ञान ही स्वभाव था, ज्ञान ही आत्मा थी, ज्ञान ही सब कुछ था। ज्ञान मे ही सकल द्रव्य स्वभावत झलकते थे। वे दश अतिशय आदि से सुशोभित थे।

(28)

तीर्थंकर चन्द्रप्रभ का मोक्ष हो जाने पर हर्ष और शोक से युक्त होकर लोगो ने सपरिवार विस्मित रसासिक्त होकर उनकी पूजा की। तदनन्तर अगुरुचन्दन, घनसार (कपूर) आदि इकट्ठा किया। जलध कुमार ने प्रणाम किया, सुरति गधो से आकाश सुगन्धित हो गया, सुरगण नृत्य गायन करते हुए शोकमग्न हो गये। चतुर्विध सघ ने

मिलकर तीर्थंकर के निर्वाण की प्रक्रिया पूरी की जय जयकार किया, अनाथ हो जाने का उन्हे आभास हुआ। परमेश्वर शिव सुख—परमधाम पाकर ससार के बधन से सदैव के लिए मुक्त हो गये अत. वे परम मगलकारी हैं और वन्दनीय हैं इत्यादि प्रकार से सुरो ने जिनस्तुति की पचम कल्याण (मोक्ष कल्याण) मनाया और अगरू चन्दन से अतिम सस्कार कर अपने-अपने स्थान चले गये।

(29)

ग्रन्थ शुद्ध अशुद्ध सार असार अनेक प्रकार होते है। जिनवाणी उन सभी को स्वीकार कर लेती है। मेरा ग्रन्थ भी ऐसा ही है। इस ग्रन्थ पर मुझे कोई अभिमान नही हैं। परमेश्वर सर्वज्ञ हैं। सारवाली बात तो उन्ही के साथ जुड सकती है। कषाय को छोडने वाले ही मुनि और पण्डित होते है। गुर्जर देश मे एक उम्मत्त नामक ग्राम है जहा दोण नामक एक जिनधर्मी भव्य बधु रहता है उसका ज्येष्ठ पुत्र बहुदेव, बहुदेव का लघुपुत्र श्रीकुमार श्रीकुमार का पुत्र सिहपाल था जो जिनपूजा, दानादि गुणो से मण्डित था। उसी सिद्धपाल के अनुरोध से इस ग्रन्थ की रचना हुई है। जब तक चद्र और सूर्य है, सागर, कुलपर्वत और भूवलय हैं तब तक यह ग्रन्थ प्रकाशित रहेगा।

महत्वपूर्ण शब्द-सूची

अ–अं

अकलक, 1, 1
अच्छ=निर्मल, 6-8, 3-2
अच्छरिय=आश्चर्य, 9-3
अज्जखड=*आर्यखण्ड*, 4-20
अजितजउ=अजितजय, 3-10
अजियसेण=अजितसेन, 3-11, 4-10
अज्जु=आज, 5-14
अणिच्च भावना=अनित्य भावना, 9-9
अणगु = अनग, 4-10
अद्धु=आधा, 10-7
अमिय=अमृत, 1-11, 3-1
अरिंजय=देश का नाम, 4-5
अलका=नगरी का नाम, 3-10
असरणु=अशरण भावना, 9-8
असुइ=अशुचिभावना, 9-12
अहिणव=अभिनव, 8-11
आलसु=आलस्य, 2-8
आसव = मद्य 3-10; आश्रव 9-13
आसीविसु=सर्प, 6-16
इक्कु=एकत्व भावना, 9-11
उअरहु = सर्प, 8-9
उग्गिण्ण=*उद्गीर्ण*, 9-2
उत्तरगुण=उत्तरगुण, 9 16
उद्धउ=उद्धत नामक दूत, 4-11
उप्परि=ऊपर, 1-7
उप्पाडि=उखाडकर, 5-15
उम्मत्तगाम=उन्मत्तग्राम, 11-29
उववण=उपवन, 5-3
एरावउ=एरावत, 10-14
एरिसु=इस प्रकार, 3-1
एयारह=ग्यारह, 10-17
अगुट्ठ = अगूठा, 8-23
अजणगिरि = पर्वत नाम, 4-2, 5-10
अतेउरु=अन्त पुर, 2-1, 2-19, 5-4
अवय=आम्र, 2-14

क

कइरव=कुमुद, 5-7
कच्छवि=कोई, 6-1
कच्छूरी=कस्तूरी, 9-13
कज्जल=काजल, 2-11, 5-11
कद्दम=कर्दम, 1-12
कणयकु भ = कनककुभ, 9-4
कणयमाल=कनकमाला, 1-10
कणयरयण=स्वर्ण रत्न, 5-10

कप्परुक्ख=कल्पवृक्ष, 2-3, 7-5
कम्मपासु=कर्मपाश, 2-3, 4-21
कम्मगठि=कर्मग्रन्थि, 9-15
कल्लाण=कल्याण, 7-6
कलत्त=कलत्र, 1-14, 3-2
कसाय=कषाय, 4-20
कालायरु=कालागरु, 1-8, 11-27
कालिंदी=यमुना, 7-3
काहल=कोयल, 5-9
कहिवि=किसी तरह, 2-12
कित्ति=कीर्ति, 3-12
किण्हलेस=कृष्णलेश्या, 6-18
किवाण=कृपाण, 4-6
किसाणु=कृश, 6-21
कुक्खि=कुक्षि, 2-18
कुम्मपुट्ठ=कर्मपृष्ठ, 5-10
कुवि=कोई भी, 5-4
केयारपालि=खेत का रक्षक, 1-5
केवलणाण=केवल ज्ञान, 10-7, 11-23
कूटलेख=कूटलेख, 2-16
कोवीण=कोपीन, 4-10
कोसल=कौशल प्रदेश, 3-10
कोइल=कोयल, 2-14
कोव=कोप, 6-18
कचुअ=कचुक, 1-10
कत=काता, 1-10
कुदकुद = आचार्यनाम, 1-1

ख

खणि=क्षणभर, 1-13
खत्तिधम्म=क्षत्रियधर्म, 3-7
खयरोय=क्षयरोग, 2-5
खल्ली=टाटि, 3-4
खाइय=खाई, 2-8
खिज्जइ=खीभता है, 6-18
खीरोवहि = क्षीरोदधि, 7-12, 8-23
खुहियउ=क्षुब्ध, 6-13
खोणी = पृथ्वी, 6-21
खभ = खभा, 1-15

ग

गब्भभर=गर्भभार, 1-10
गहवइ=गृहपति, 1-5
गउण=गगन, 1-8
गणहर=गणधर, 1-1, 11-1, 11-25
गयणयल=गगनतल, 5-7
गल्ल=गला, 2-11
गहचक्कु=ग्रहचक्र, 6-3
गुज्जरदेश=गुर्जरदेश, 11-29
गुत्तकम्म=गुप्तकर्म, 5-13
गुत्तभेउ=गुप्तभेद, 5-4
गुणपहु=गुणप्रभ, 5-12
गुणव्वय=गुणव्रत, 2-17
गुणसेढि=गुणश्रेणी, 3-14; 5-13
गधोवय = गधोदक, 8-10; 9-4; 10-4

घ

घर=गृह, 3-1
घाइकम्म=घातिकर्म, 4-21

च

चउगइ=चतुर्गति, 4-20
चउदहरयण=14 रत्न, 4-16
चउरगु सेण्णु=चतुरगिणी सेना, 4-6
चक्कवट्टि=चक्रवर्ती, 3-16, 11-9
चक्कवाउ=चक्रवात, 8-14
चक्काउह=चक्रायुध, 4-15
चम्मचक्खु=चर्मचक्षु, 1-14
चडिया=चिडिया, 4-7

चित्त=चैत्यवृक्ष, 10-12
चोईय=चोई, 5-5
चोरकम्मु=चौर्यकर्म, 2-4
चदउरी=चन्दपुरी नगरी, 7-2
चदकति=चन्द्रकान्ति, 1-6
चदप्पहसामि=चन्द्रप्रभस्वामी, 1-1
चदरोइ=चडरुचि, 1-13
चडु = गेंद, 6-2

छेयालीसदोस=46 दोष, 10-2

छ-ज

जइ=यदि,
जयकु जरु=हाथी का नाम, 5-10
जयवम्मा=जयवर्मा, 4-5
जयसिरि=जयश्री, 6-17
जयसिरिकता=जयश्रीकाता, 4-5
जयसेणु=जयसेन, 4-10
जलवुव्व=जलवुद्वुद, 9-8
जसकित्ति = यश कीर्ति, 1-1
जलकेलि = जलक्रीडा, 5-6
जलहि=जलधि, 5-11
जसनिहाणु=यशनिधान, 1-13
जहि तहि=जहाँ-तहाँ, 1-14
जारिस=जिस प्रकार, 4-17
जिट्ठमास=ज्येष्ठ मास, 4-15

जिणचरिउ=जिण चरित, 1-13
जिणभत्ति=जिन भक्ति, 1-3
जिणसेण=जिनसेन आचार्य, 1-1
जीउ=जीव, 4-20, 11-1
जीवरक्ख=जीवरक्षा, 2-4
जीवसमास=जीवसमास, 5-12
जुण्हसरिस=ज्योत्स्ना सदृश, 6-8
जुवराय=युवराज, 2-19; 3-12, 6-3
जोग पण्णारस=पन्द्रह योग, 4-20
जोयण=योजन, 8-17
जगम=सजीव, 4-15
जभाइ=जभाई, 2-18
जबुदीउ=जबुद्वीप, 1-4

ड

डिंभ=बालक, 2-12

ण

ण्हाणु=स्नान, 7-12
णउरि=अनन्तर, ,25
णरय भूमि=नरक भूमि, 11-4
णरवइ, णहवइ=नरपति, 1-2; 1-12

णवकोडि=नवकोटि, 102
णहपहु=नभपथ, 8-11
णायरजण=नागरजन, 2-2
णायवेलि=नागवल्लि, 2-7

णिक्कटउ = निष्कटक, 6-4
णिज्जरु = निर्जरा, 9-15
णिच्चल = निश्चल, 5-3
णिट्ठीवण = थूक, 3-2
णिरु = नितराम, 32
णिरजण = निरजन, 8-21

तवभूसणु = मुनि नाम, 3-15
तस = त्रस, 11-2
ताण = शिविका, 9-23
तारादेवी = नाम, 1-1

थक्कु = थकना, 4-5
थण = स्तन, 1-11

दगडय = पत्थर, 6-19
दप्पगठि = दर्पग्रथि, 7-7
दालिद्द = दारिद्रय, 9-5
दिणयरु = दिनकर 6-12
दिसिपाल = दिक्पाल, 10-16
दुज्जणु = दुर्जन, 1-3
दुद्धरु = दुर्धर, 3-7

धम्म = धर्म, 1-11, 9-17-18
धम्मचक्क = धर्मचक्र, 10-13-15
धम्मझाण = धर्म ध्यान, 1,2-3, 2-18
धम्मदेस = धर्मदर्शना, 2-3

पउमनाभ = पद्मनाभ, 1-11, 1-15
पक्खाल = प्रक्षाल, 5-5
पच्चक्खुणाण = प्रत्यक्ष ज्ञान, 2-7
पडिचद = प्रतिचन्द, 1-7
पडिबोहणु = प्रतिबोधन, 8-2
परक्कमु = पराक्रम, 3-8, 4-16

णिहाणु = निधान, 2-13
णीलुप्पल = नीलोत्पल, 4-9
णेउर = नूपुर, 8-19
णेसप्पु = ,4-17
णदण = पुत्र, 2-13, वन 8-23
णदीसरि = नन्दीश्वरद्वीप, 2-18

त

तित्थयर = तीर्थंकर, 9-18
तिल्लु = लोहा, 6-7
तेरहविहुचरित्त = तेरह प्रकार का चरित्र, 3-9

थ

थेरी = वृद्धा, 3-11
थोडइ = थाडा, 8-23

द

दुल्लहु = दुर्लभ, 8-11
दुह = दु ख, 1-15
देउकुमरसिंह = देवकुमारसिंह, 1-1
देवणदि = देवनन्दि आचार्य, 1-1
दोहल, दोहलय = दोहद, 2-18, 8-2
दढाउह = दढायुध, 4-27
दतधवणु = दतधावन, 10-1

ध

धम्मलद्धि = धर्मलब्धि, 9-4
धरणीधरउ = धरणीधर, 4-10
धादय = धातृ खण्ड द्वीप, 3-10
धीवरि = ढीमर, 5-5

प

परमप्पय = परमात्मपद, 8-21
परदारगमणु = परदारगमन, 2-5
परवाइ = परवादी, 1-1
परमिट्ठी, परमेष्ठि = परमेष्ठी, 4-19, 5-12
परमेसरु = परमेश्वर, 9-6, 11, 9-6

परियणु = परिजन, 3-11
परीसह = परीषह, 10-6
पिंगलु = पिंगल वर्ण,
परुसा = परुषा नामक अटवी, 4-1
पल्लक = पलग, 5-14
पलयमेहु = प्रलयमेघ, 6-2
पविचारउ = प्रविचार, 11-18
पाइयकव्व = प्राकृत काव्य, 1-1
पाणायाम = प्राणायाम, 11-11
पायच्छित्त = प्रायश्चित्त, 5-16
परिगहपमाणु = परिग्रह परिमाण, 2-5
पियधम्मु = ब्रह्मचारी का नाम, 4-10
पिसुणजणु = चुगलखोर, 1-3
पिहुत्थणु = पीनस्तन, 7-8
पुक्खरद्ध = पुष्करार्ध, 2-7
पुट्ठ = पृष्ठ, 3-1
पुप्फयत = पुष्पदत, 1-1, 7-10
पुखरि = पुष्कर, 2-9
पुव्वदेसु = पूर्व देश, 7-1
पुव्वभवतर = पूर्व भवान्तर, 2-7, 6-1
पुव्वविदेह = पूर्व विदेह, 11-20
पुहवी = पृथ्वी, 2-13
पुहवीपालु = पृथ्वीपाल, 6-13
पुच्छि = पूछ, 6-2
पोमराय = पद्मराज, 7-3, 10-9
पोमह = पुष्पनाली, 11-3
पोसहु = प्रोषध, 2-6
पोरगण = पौरांगण, 3-9
पचमहव्वय = पच महाव्रत, 5-12, 5-12, 10-1
पचयठाण = पचम स्थान, 5-12
पचाचार = पाचविध, आचार 5-12
पचाणुव्वय = पचाणुव्रत, 5-12
पचिंदियसुह = पचेन्द्रियसुख, 1-11
पडुयवण = पाण्डुकवन, 8-15

फ

फुडु, फुट्टी = स्फुट, 6-7, 3-4
फेणु = जल फेन, 9-8

ब

बारहवय = बारह व्रत, 2-16
बारह भावना, 9 6-12

भ

भरह = भारतवर्ष,
भल्ल = भाला
भुवगु = भुजगु, 6-9
भोयोपभोय = भोगोपभोग, 2-6

म

मज्जारु = मार्जार, 3-9
मणिभित्ति = मणि दीवाल, 1-7
मणुय = मनुज, 5-11
मणोरह = मनोरथ, 2-19, 3 13, 6-8
मउणबाण = मदनबाण, 5-4
मसिलिपण = स्याही का लेप, 1-6
महासेउ = महसेन राजा, 7-4
महुपाण = मधुपान, 2-2
महिंद = महेन्द्र, 4-5
मागहवाणि = प्राकृत भाषा, 11-1
माण = मान, 6-19
माणखभ = मानस्तम्भ, 10-10
माया = माया, 6-20
मासूलि = नकुल, 8-5
मिच्छह = मिथ्यात्व, 5-12, 9-14, 8-21

मिसि=वहाना, 5-5
मुक्कु=मुक्का, 4-3
मुक्खु=मोक्ष, 1-15
मुग्गार=मुद्‌गर, 4-2
मुच्छा=मूर्छा, 3-13
मुत्ताहलु=मुक्ताफल, 1-2, 6-11
मुणिंदु = मुनीन्द्र, 2-4
मुहचंद=मुखचंद्र, 2-8
मु डु=शिर, 6-15
मूलगुण=मूलगुण, 2-6
मेयणि, मेइणि=मेदिनी, 1-16, 4-8
मेरु=सुमेरु पर्वत, 8-22
मोक्ख मग्गु=मोक्ष मार्ग, 2-3
मगलवइ = मगलावती देश, 1-5

र

रक्खवालु=रक्षपाल, 9-7
रज्ज=राज्य, 1-15
रत्तुप्पलु=रक्तोत्पल, 2-11
रयपडलुम्र=रजयटल, 8-15
रयण = रत्न, 1-15
रवि=सूर्य नामक कृषक, 4-4
रविपुर=नगर नाम, 4-10
रायकण्ण=राजकर्ण, 2-19
रिउ=रिपु, 1-10
रुद्दकोडि=रूद्रकोटि, 1-1
रुहिर=रुधिर, 5-10

ल

लक्खण=लक्षण, 1 11
लक्खणादेवी=लक्ष्मणा देवी, 7-7
लोयणु = लोचन, 5-10
लोयत्तउ = त्रिलोक, 5-13
लोहु=रक्त, 6-21

व

वइयाविच्च=वैय्यावृत्ति, 6-24
वग्घ=व्याघ्र, 8-6
वणमाला=वनमाला, 5-4
वणवालु=वनपाल, 2-1
वय= व्रत, 1-5
वसहु=वृषभ, 8-9
वसतमासु = वसतकाल, 2-16, 5-3
वायलु=सर्प, 4-15
विउलपुरु=विपुलपुर, 4-5
विच्छर=विस्तर, 3-1
विजयजत्त = विजय यात्रा,
विज्जाहर = विद्याधर, 4-12, 8-7
विज्जुलरयणु=विद्युत् रत्न, 4-16
वित्थरेण = विस्तार से, 8-15
वितर = व्यतरदेव, 11-13
विम्यिह, विम्हिउ=विस्मित, 4-4
विभियरस = विस्मयरस, 11-28
विसूरियउ=विषाद किया, 8-10
वेउव्वण=वैक्रियक देव, 7-17
वेरग्ग = वैराग्य, 3-1, 1-14

स

सग्गु=स्वर्ग, 9-6
सज्झाय=स्वाध्याय, 5-12
सत्तगरज्जु=सप्तागराज्य, 9-6
सत्ततत्त=सप्त तत्त्व, 11-1
सत्तभगि=सप्तभगि, 8-21
सच्छ=स्वच्छ, 5-12
सावयवय=श्रावक व्रत, 5-16
सिक्खावय=शिक्षा व्रत, 2-17, 2-6
सिद्धपाल=राजा का नाम, 1-1
सिद्धसेण = आचार्य का नाम, 1-1

सम्मत्त दोस=सम्यक्त्व दोष, 2-6
सद्दागम=शब्दागम, 9-1
समचउरसु सठाण=समचतुष्क सस्थान, 8-3
समवसरणि=समवशरण, 4-18, 10-9-10, 11-26
समिदि=समिति, 10-6
सर=अष्टापद, 8-9
सरपति=बाण पक्ति, 4-13
सरिच्छ=सदृश, 4-19, 4-12
सल्लेहण=सल्लेखना, 2-6
ससि=शशि नामक कृषक, 4-4
ससिरुइ=शशिरुचिदेव, 9-6
ससिपह=शशिप्रभ, 4-5
सहाउ = स्वभाव, 5-13
सज्जणगुण=सज्जनगुण, 1-2
समतभद्द=आचार्य नाम, 1-1
सरसइ, सरस्सई=सरस्वती, 1-1, 2-1, 1-9
सत्तगुरज्ज=राज्य के सात अग, 1-6
सद्द सण मेरु=सुदर्शन मेरु, 1-4
सायारधम्म = सागारधर्म, 2-8, 2-4, 2-18, 2-16
सरिसु=सदृश, 1-7
साधुधम्मु=साधुधर्म, 7-15
साणु=श्वान (कुत्ता), 3-4
सामि=स्वामी, 6-4
सीवर=सीकर, 5-6
सूयार=सुप्पर 4-15
सेसवि=सहस्राक्षि इन्द्र, 8-11
सोमदत्तु=सोमदत्त, 10-4
सोय=थोक,

हउ = मैं, 3-5
हक्कमित्ति=हकाल मात्र से,

सिरिकुक्खि=श्री कुक्षि ,2-15
सिरिकत=श्रीकात, 2-16, 2-10
सिरिधम्मु=श्रीधर्म, 2-19
सिरिदेवी=श्रीदेवी, 7-11
सिरियह=श्रीप्रभ, 3-6
सिरिपुर=श्रीपुर, 4-4
सिरिधम्मराउ – श्रीधर्म, 3-6
सिरिहरु = श्रीधर मुनि, 2-1, 1-16, 6-22
सिरि सिरिपुर=श्री श्रीपुर, 2-8
सिरिसेण=श्रीषेण, 3-1, 2-9
सिसिराणिला=शिशिरानल, 5-8
सिरिफल=श्रीफल, 1-10
सिवपिण्डि=शिव पिण्डि, 1-1
सिवरस=शिवरस, 11-27
सिगारु=शृ गार, 1-14
सुरवइ=सरस्वती,
सुअधि=सुगन्धि देश, 2-7
सुक्कलेस=शुक्ललेश्या, 6-26
सुक्खु=शुक्ल,
सुधम्म मुणिणा=सुधर्म मुनि,
सुण=श्वान कुत्ता,
सुणदा=सुनदा, 2-15
सुरडियवण=सुरभित, वन 2-1
सुवण्णणाह=स्वर्णनाभ, 6-22
सुहड=सुभट, 6-15
सुहकित्ति=शुभकीर्ति, 3-15
सोहग्ग=सौभाग्य,
सगर=युद्ध, 4-5
सजमबारह = सयम बाहर,
सठवियउ=आच्छादित, 8-11
ससार=लोक 1-13-14, 9-10

ह

हिरण्णु=हिरण्य देव, 4-4
हुवडकुल=कुल नाम, 1-1

प्रस्तावनागत शब्द-सूची

अपभ्रंश विशेषताएँ, 37-48
अलकार, 34
आल्हादपुर, 11
उम्मत्तगाम, 13
कथा भाग की तुलना, 28
कथावस्तु, 14
कारक रूप, 43-44
क्रियारूप, 45
कृदन्त, 45
ग्रन्थकार परिचय, 12
चद्रप्रभ चरित पर निर्मित साहित्य, 2
छन्दयोजना, 35
जैन चरित काव्य परम्परा एव
    विशेषताएँ, 1
तद्धित प्रत्यय, 45
दक्षिणी अपभ्रंश की सामान्य
    विशेषताए, 45
धार्मिक-सामाजिक सदर्भ, 36

प्रति परिचय, 3
पश्चिमी अपभ्रंश की सामान्य
    विशेषताएँ, 46
पाठ सपादन पद्धति, 11
पूर्ववर्ती और समकालीन कवि, 14
पूर्वी अपभ्रंश की सामान्य विशेषताए,
    46
भाषा और व्याकरण, 36-48
महाकाव्यत्व, 32
यश कीर्ति, 12
रस, 35
राणा सग्राम, 6
रामचन्द्र, 6
विशेषण और अव्यय, 44
वोहीथ, 9
स्वर-व्यजन, 32-43
सर्वनाम, 44
सिद्धपाल, 5
सूर्यमल, 9
सूरीताण, 9
सप्तभव, 34
सख्यावाचक शब्द, 44